एक छोटा सा BREAK !!!

A Treasure of short stories

युगप्रधानाचार्यसम प.पू. पंन्यास प्रवर
श्री चंद्रशेखर विजयजी म.सा.

* समर्पण *

इन सब (कथाओं से) लाभ हो...
खूब फायदा हो....

* वह तत्त्वजिज्ञासुवर्ग को...जो एक छोटी सी कथा को लेकर भी अपने जीवन के, विश्व संचालन के, सनातन प्रचलन के अबाधित सत्यों, अविचलित तथ्यों, अविदित रहस्यों को पाने में समर्थ होते है।

* वह विनोदप्रियजन वर्ग को...जो कक्षा-वांचन के माध्यम से अपने **free** समय को सदुपयोग में लेना सोचते है; और भी ऐसे सात्त्विक वृति के रस पोषण के लिए **spare time** निकालकर भी मन की प्रसन्नता को बनाए रखना सही समझते है।

* वह शिशुवत्सलहितेच्छु वर्ग को...जो अपनी जिम्मेदारी समझकर नियमित दौर पर अपने बच्चों को, पोतों को वैविध्यपूर्ण कहानियाँ सुनाने की ठान लेना जरुरी समझते है और अतःएव रोज-बेरोज नये नये प्रसंगो को बच्चो के आगे रखकर संस्कार सिंचन को महत्वपूर्ण कार्य करना चाहते है।

* वह स्वव्यक्तित्व विकासलक्षी विद्यार्थीवर्ग...जो हमेशा अलग अलग तरह के साहित्य पढना पसंद करके, घटना-वर्णन को लेकर अच्छे-अच्छे गुण मूल्य को अपने जीवन में उतारने के लिए जागृत रहना आवश्यक मानते है।

दिखने में छोटी लगे, घाव करे गंभीर

उक्त को सार्थक करे ऐसी जीवन परिवर्तक
और आदर्श छोटी-छोटी कथाएँ का रसथाल
यानि

* लेखक *

युगप्रधानाचार्यसम प.पू.पंन्यास प्रवर
श्री चंद्रशेखर विजयजी महाराजा

* प्रकाशक *

कमल प्रकाशन ट्रस्ट

102-ए, चंदनबाला कोम्प्लेक्स, आनंद नगर पोस्ट ऑफिस के सामने, भठ्ठा, पालडी, अहमदावाद-7.

* लेखक *
युगप्रधान आचार्य सम प.पू.पंन्यास श्री चंद्रशेखरविजयजी महाराज साहेब

* अनुवादक *
डॉ. रजनीकान्त शान्तिलाल शाह, (M.A, Ph.D)
करजण

* सहयोग *
श्री पवनभाई बैद, (C.S) सुरत

* आवृत्ति *
हिंदी आवृत्ति : 1000
गुजराती आवृत्ति में 28000 नकल छप चुकी है ।
मूल्य : 70/-

* प्राप्ति स्थल *

कमल प्रकाशन ट्रस्ट
102–ए, चंदनबाला कोम्पलेक्स,
आनंद नगर पोस्ट ऑफिस के सामने, भट्ठा,
पालडी, अहमदावाद–7.

नरेश भाई
373, मिंट स्ट्रीट, राजेन्द्र काम्पलेक्स
(महाशक्ति होटल के पास) चेन्नई–79
फोन: 9841067888

* मुद्रक *
DESIGN & PRINTED BY
Firsst Look
IMPRESSION GUARANTEED....
9597511135

कहाँ क्या पढेंगे ?

क्रमांक	कहानी का शीर्षक	पृष्ठांक
1.	अनुभवज्ञान से वायर निकल गया ।	09
2.	भारत ने जगत को अनेक संत दिये हैं ।	10
3.	यदि देव को भी इन्सान झूका सकता है तो....	10
4.	जब नया इतिहास रचा जाता है ।	12
5.	मात्र श्रद्धापूर्ण नवकार जप की ताकत	15
6.	धर्मी –सुख से अलीन + दु:ख से अदीन	17
7.	बडों की आशातना (मर्यादालोप) का फल	19
8.	क्या ईश्वर है ?	19
9.	भगवान की ही जय बुलायें	20
10.	कुमारपाल के बेटे की कैसी प्रभुभक्ति	20
11.	हम किसके साथ मनुष्य ? या भगवान के साथ ?	21
12.	ईश्वर और मनुष्य के बीच क्या अंतर ?	22
13.	केदारा गिरवी रखा	22
14.	क्या संगति से ही रंग चढता है ?	23
15.	जिसका मन नही वही शिष्य	23
16.	मणि से भी बढिया मन	24
17.	कौन महान ! पारस या मन?	25
18.	जहाँ देह का होश नही वहाँ ही सच्चा ध्यान :सच्ची समाधि	26
19.	तीर्थरक्षा हेतु बारोटों का बलिदान	27
20.	दहेज में बहन ने मांगा मंदिर !	28

क्रमांक	कहानी का शीर्षक	पृष्ठांक
21.	लुणिग की कैसी प्रभुभक्ति !	30
22.	प्रार्थना की शक्ति	31
23.	कौन कब क्या बनेगा ? क्या पता ?	32
24.	प्रभुभक्त ही गुणों का भण्डार	33
25.	"श्याम ! तेरे राज में देर है देर "	35
26.	राखी को पति कितने प्रिय ?	39
27.	थैलेवाले सेठ की प्रभुभक्ति	42
28.	"लेकिन भगवान को तुम पर विश्वास है ।"	45
29.	संकल्प दृढ हो तो फलता ही है	46
30.	पगला प्रभुभक्त	47
31.	तानसेन से भी बढकर गुरु हरिदास	47
32.	भजन से माँ का हृदय परिवर्तन	50
33.	परमात्माभक्ति का तात्कालिक चमत्कार	52
34.	भगवान मिल गये अब और क्या चाहिए ?	55
35.	नरसिंह मेहता ने कुलोच्छेद मांगा	56
36.	नाम की महिमा	57
37.	राम की सौगन्ध से मेरी आबरू बच गई ।	58
38.	सच्चे दिल से किये गये तप-जप फलते ही हैं ।	59
39.	राम के मिल जाने के बाद और क्या चाहिए ?	60
40.	प्रभु ! पधारो ,मन मंदिर में	61
41.	कर्ण और अर्जुन-एक हारा :एक जीता	62
42.	जो दास बन सकता है,वही वीर हो सकता है	63

क्रमांक	कहानी का शीर्षक	पृष्ठांक
43.	घर दहेरासर (गृह चैत्यालय) तो अनिवार्य है	64
44.	एकाग्रता तो ऐसी होनी चाहिए	65
45.	मीरा को गिरधर के बिना कुछ भी स्वीकार्य नही	66
46.	प्रभुभक्त कवि भूषण (भूखण)	67
47.	भक्त सूरदास	68
48.	प्रभुभक्त का पुण्य तो वृद्धिमान ही होता रहता है	69
49.	पण्डित ओमकारनाथ का संगीत और मुसोलिनी	70
50.	प्रभुभक्त मीरा	72
51.	जिन पडिमा (प्रतिमा) जिन सरिखी	76
52.	दिल अटको तोहरे चरणकमल में	77
53.	रावण की महानता (अजैन रामायण प्रसंग)	78
54.	भगवान शरणागत की रक्षा करते हैं	79
55.	मुझे तो कृष्ण ही चाहिए	80
56.	भगवान के अस्तित्व मात्र से निर्भीकता	81
57.	प्रभुदास की प्रभुश्रद्धा	82
58.	रामभक्त हनुमान	83
59.	प्रभुकृपा की ताकत	84
60.	आपका कान्हा तो बहुत सयाना है	85
61.	वज्रस्वामीजी	86
62.	पापभीरू पण्डित चोर	92
63.	अच्छा,बुरा कुछ है ही नहीं:सुबुद्धि मंत्री	95

क्रमांक	कहानी का शीर्षक	पृष्ठांक
64.	मात्र विचारों के पाप से अविरत बरबाद हो रहा रूपसेन	98
65.	अविलंब आनेवाले देव आजकल क्यों नहीं आ रहे?	100
66.	बुद्धि से काम करे वह बनिय	103
67.	सात्विक सेठ सुदर्शन	106
68.	महाकवि माघ	111
69.	भोगादि चार योग	116
70.	कामलक्ष्मी	120
71.	महाज्ञानी स्कंदक को क्रोध ने मारा	124
72.	हिंसक व्यवसाय का करूण अंजाम	125
73.	गर्भपात ! कैसी शयतानियत!	126
74.	बड़ों का बड़प्पन	127
75.	सिकंदर माँ से ही नहीं मिल सका	128
76.	स्वधर्मपालन के वक़्त शत्रु कौन!	129
77.	तुलसी ! हाय गरीब की'	130
78.	हत्या ने मचाया कहर	131
79.	वनस्पति भी शत्रु–मित्र को पहचानती है	132
80.	कभी कभार तो साधु को भी नीचे उतरना पड़ता है	133
81.	ईर्षालु कुम्हार	134

क्रमांक	कहानी का शीर्षक	पृष्ठांक
82.	दो बहनो की बलिदान –गाथा।	136
83.	गुणसेन और अग्निशर्मा	138
84.	वल्कल चिरी	141
85.	क्यवन्न सेठ का सौभाग्य हो	144
86.	मुनिवर ढंढण का प्रचण्ड सत्व	146
87.	मात्र तीन ही शब्दों में परिवर्तन	148
88.	मरकर कहाँ जाना है ,वह हमारे ही हाथ में है	150
89.	ईलाची ! तुम कहाँ से कहाँ ?''	151
90.	पितृमोह वश अरनिक बरबाद !	154
91.	चक्रवर्ती सनतकुमार	156
92.	कीर्तिधर और सुकोशल मुनि	158
93.	विष्णुकुमार मुनि का आवश्यक क्रोध	161
94.	शान्तुमंत्री की सुधार की रीति	163
95.	खानेवाला उपवासी !	165
96.	वह मैं ही हूँ	167
97.	बेचारे दासकाका !	170
98.	राजकुमार अनंग	173
99.	अन्निकापुत्र आचार्य	180

क्रमांक	कहानी का शीर्षक	पृष्ठांक
100.	जीवानंद वैद्य की अपार करुणा	183
101.	संगठन के लिये पीछे हठ	186
102.	कभी भी गुरूद्रोह नही करना ।	188
103.	बडे लोगों की सहिष्णुता	191
104.	मित्र के लिए कैसा त्याग किया !	194
105.	तोतारटंत ज्ञान किस काम का ?	195

1. अनुभवज्ञान से वायर निकल गया।

किसी शहर में महाकाय फैक्टरी थी।

उसमें लगभग सातसौ लोग काम करते थे।

एकबार छोटी सी बात का बतंगड हो गया।

फैक्टरी में रबड का एक टेढामेढा पाइप था। उसमें रबड का एक पतला सा वायर डालकर दूसरे छोर से बाहर लाना था। काफी मेहनत की गई पर टेढेमेढे पाइप से वायर आगे बढने का नाम ही न ले। वह अंदर मुड जाता था।

अनेक बडे इन्जीनियर आये। सारे विफल हुए पर इतनी सी बात को लेकर शर्मिंदगी भी अनुभव करने लगे।

बहत्तर घण्टे निकल गये।

ऐसे में एक गँवार आदमी वहाँ गया। देखने में भिखमंगे जैसा और अंगुठाटेक।

अनेक लोगों की भीड के बीच जा खडा हो गया। परेशानी की जड उसकी समझ में आ गई।

उसने कहा,"अभी तत्काल में वायर को बाहर निकाल देता हूँ पर एकसौ रूपया चार्ज लगेगा।"

मालिक ने स्वीकृति दी और वह एक बहुत छोटी सी चूहिया पकड लाया। उसकी पूँछ से वायर बांधा और चूहिया को रबड के पाइप में ढकेल दिया।

वह घबडाकर आगे ही आगे दौडकर दूसरे छोर से बाहर निकल गई। उसी के साथ वायर भी बाहर आ गया!

कैसा अद्‌भुत अनुभवज्ञान !

2. भारत ने जगत को अनेक संत दिये हैं।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर शिकागो गये थे। अंग्रेज ईश्वर के अस्तित्व को लेकर बहुत शंकाशील थे। यह बात ठाकुर के मन को बहुत पीडा देती थी। मौका देखकर शिकागो यूनिवर्सिटी के एक प्रवचन में उन्होंने उस शंका के खिलाफ अपना प्रकोप व्यक्त कर ही दिया।

उन्होंने उपस्थित अंग्रेजों से कहा,"आप लोगों को अपनी प्रयोगशाला में ईश्वर मिला नही तो क्या आप ऐसा कहने की मूर्खता कर सकते हैं कि संसार में कहीं ईश्वर नहीं है ?"

मैं आपसे पूछता हूँ कि,"इस प्रवचन हॉल का एक भी आदमी पांच लिटर दूध पीने का सामर्थ्य न रखता हो और हमारे हिन्दुस्तान के गाँव का अहीर एकसाथ आठ लिटर दूध पी जाता है,ऐसी बात को क्या आप मजाक में लेने का साहस क्या कर सकेंगे ?"

मेहरबानो ! अध्यात्मविद्या के विषय में आपने अपनी समझ विकसीत ही नही की है फिरभी आप उस विषय के गहन पदार्थ का मजाक तक कर लेते हो। यह आपकी सभ्यता नही है।

याद रखियेगा कि आपने जगत को वैज्ञानिक दिये हैं पर हमारे भारत ने जगत को संत दिये हैं !

3. यदि देव को भी इन्साफ झूका सकता है तो....

(यह एक ऐसा प्रसंग है,जिसमें मानवीय ताकतें दैवी ताकतों को भी झूकने के लिए विवश करती है। यदि बडे खूंखार देवतत्वों को भी मानव झूका सकता है तो सत्ता या संपत्ति के नशे में चकचूर हुए मानव को आज का मानव क्यों नही झूका सकता ?)

जावडशा अर्थात् ? अपने समय के अति अमीर और उत्तम कोटि के धर्मीजन।

लक्ष्मी और धर्मश्री ने मानो घर में होड लगा रखी थी।

एकबार जावडशा ने तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय के जिनालय आदि की जर्जरित दशा देखी। अपने

जीते जी अपने ही परमात्मा के मंदिर जर्जर हो रहे हैं ! अपनी बेदरकारी पर उन्होंने घिन्न अनुभव की।

इस विषय की गहराई में जाने पर ज्ञात हुआ कि शत्रुंजयतीर्थ का अधिष्ठायक देव मिथ्यादृष्टि होने के कारण उसने ही तीर्थ की दुर्दशा की थी।

उस समय के युगप्रधान आचार्य श्री वज्रस्वामीजी इस बात से वाकिफ थे और दुःखी भी थे...परंतु संपत्ति के भौतिक बल का सहारा न मिले तब तक ये महात्मा स्वयं कुछ कर नहीं सकते थे।

एक दिन अध्यात्म और संपत्ति दोनों का मिलन हो ही गया।

जावडशा और वज्रस्वामी शत्रुंजय के उद्धार के लिए कटिबद्ध हुए।

मंदिरों पर छेनियाँ चलने लगी। पहाड पर ही नूतन प्रतिमाओं का निर्माण होने लगा। बरसों की जहमत से प्रतिमाएँ तैयार हुई। कल मंदिर में प्रतिमाओं का प्रवेश कराने का विधि-विधान होना है।

पर...यह क्या ? सुबह वेला में जहाँ जावडशा तलहटी से पहाड पर चढने के लिए पाँव धरते हैं, वहाँ सारी प्रतिमाएँ अपने ही पैर के आगे खण्डितावस्था में पडी हुई दिखाई दी।

क्षणभर के लिए तो जावडशा को भारी सदमा पहुँचा। दुष्ट देव की शरारत को वे समझ गये।

तनिक भी हिम्मत हारे बिना नये सिरे से पहाड पर प्रतिमा निर्माण का काम प्रारम्भ करवाया।

पुनः वही दशा...पुनः नवनिर्माण...पुनः खण्ड खण्ड में विभाजित ...बीस बीस वर्ष तक ऐसा चलता रहा। जावडशा का माथा श्वेतकेशी हो गया। मुँह पर आयी झुर्रियों की खिडकियों से बुढापा स्पष्ट नजर आने लगा।

इस जईफ आदमी ने इक्कीसवीं बार पुरुषार्थ प्रारंभ किया। प्रतिमाएँ तैयार होते ही उस दंपति ने सारी प्रतिमाओं को रथारुढ किया। रथ के दोनों पहियों के बीच यह दंपति सो गया। दुष्ट देव को आह्वान करके बताया कि "अब तो हम पर रथ के पहिये चलाकर ही इन प्रतिमाओं से भरे रथ को आगे बढाना।"

और ...देव ने हार स्वीकार कर ली। वह बत्तीश लक्षणवाले का बलि लेने तक की क्रूरता भी

बरत नही सका।

श्री वज्रस्वामी के वरद् हस्त सारा कार्य निर्विघ्न खुशी खुशी संपन्न हो गया। अतिमंगलकारी प्रतिष्ठा भी हुई। उस दिन जावडशा और उनकी धर्मपत्नी ध्वजारोहण के लिए शिखर पर चढे। दोनों के हृदय में कार्यसिद्धि का हर्षावेश उमड रहा था। ध्वजारोहण होते ही हर्षावेग का अतिरेक हुआ और शिखर पर ही दंपति की हृदयगति रूक गई और वे अनंत की यात्रा पर चल पडे।

सर्वत्र शोक छा गया। सबसे ज्यादा मानसिक चोट और उत्तेजना तो जावडशा के ज्येष्ठ पुत्र के अंतर में व्याप्त हुई थी।

उसने कल्पना की कि "मुहूर्त अशुभ होने के कारण ही यह अमंगल घटित हुआ है। यह वज्रस्वामी की ही भूल है।"

गुरुदेव के द्वारा बहुत समझाये जाने पर भी पुत्र के मन को समाधान नही हुआ कि वहाँ यकायक आकाश से देव-देवी का युगल ने शत्रुंजय तीर्थ में अवरोहण किया।

वही थे ,जावडशा और उनकी पत्नी मरण के बाद देव-देवी हुए थे।

उन्होंने अपने पुत्र से कहा,"वत्स ! ऐसा खेद मत करो। हम तो मरकर अमर (देव) हुए हैं। अब शासन सेवा ज्यादा करेंगे।"

इन शब्दों ने पुत्र को आश्वस्त कर दिया।

4. जब नया इतिहास रचा जाता है

(हमारा अतीत तो भव्य था ही। इसीलिए तो वह इतिहास स्वर्णाक्षरों में लिखा गया है। मात्र इतिहास पढ लेने से काम नहीं चलता। उसके पठन से प्रेरणा ग्रहण करके नये इतिहास का भी सृजन होना चाहिए। पूर्व के समय के आदर्शों से मण्डित जीवंत प्रतीक भले ही आज के कराल युग में न फले पर उसके "मीनी" स्वरूप तो प्रकट होने ही चाहिए,अन्यथा नये तेल के अभाव में झिलमिलाते हुए

दीपक को बूझना ही है। पुराने तेल से दीपक की लौ कितनी झिलमिलायेगी भला?

यहाँ पच्चीस वर्ष पूर्व मुम्बई में घटी एकदम सच्ची घटना नाम बदलकर दी गई है। उस संस्कारी बालक ने स्वयं के साथ जिंदादिली का खेल खेलकर सचमुच कमाल कर दिया है।)

जैन धर्म में जन्मे उस बालक की अवस्था नौ वर्ष की थी। उसका नाम रमेश था। उम्र से वह बालक था पर धर्मसंस्कारों से वह बालक नही था , वह बहुत बडा था। उसके मातापिता ने संतान के जीवन रूपी खेत में संस्कारों की अद्‌भुत खेती की थी।

नौ वर्ष की अवस्था को प्राप्त होते होते तो उसके धर्म-संस्कार सर्वथा परिपक्व हो गये थे। वह पाप और पुण्य की परिभाषाएँ समझ चुका था। उसने आत्मा और परमात्मा के तत्वों को आत्मसात कर लिया था तथा मृत्यु के तत्वज्ञान को उसने समझ लिया था। अरे ! पापभीरुता और राह चलते पुण्योपार्जन कर लेने की उसकी तडप सर्वथा निराली थी।

लेकिन कर्म का गणित सर्वथा अकल रहा है। नौ वर्ष की अवस्था में तो मौत से भिडन्त हो गई और उसका प्राणपखेरू अनंत का यात्री हो गया।

बात कुछ ऐसी हुई कि एक दिन घर में खेलते खेलते उसे कुछ लग गया। रमेश उससे बेपरवाह रहा। उसे धनुक रोग हो गया। शरीर अकडने लगा। माँ-बाप चिन्तित हो गये। फौरन डॉक्टर को बुलाया गया। डॉक्टर ने स्थिति की गम्भीरता का अनुमान करके बच्चे को तुरंत अस्पताल में भर्ती करा दिया पर बाजी हाथ से निकल छूट गई थी।

४-६ घंटों में अनेक इलाज हुए पर सारे इलाज नाकाम रहे ! जिसकी टूटी उसकी बुटी नही!

शरीर तो जोर जोर से अकडने लगा। बाद में तो सारा शरीर दुहरा होकर पलंग पर ऊछल-पटक करने लगा। प्रत्येक पटक पर रमेश के मुँह से "नमो अरिहंताणं। नमो सिद्धाणं" का ही उच्चारण होता रहा था।

डॉक्टरों ने मातापिता को आगाह कर दिया था। कल्याणकारी प्रिय पुत्र की अंतिम वेला को सँवार लेने के लिए अब माता पिता ने नवकार मंत्र का जाप,"चत्तारि मंगलं" का पाठ,पुण्य-प्रकाश का स्तवन आदि शुरू कर दिया था। दूसरी ओर रोग की भयावहता और बढ गई। ऊछलने के कारण बेटे

को मार न लगे इसलिए कमरे में चारों तरफ बर्फ की तख्तियाँ बीछा दी गई। बाद में हद हो गई। बच्चे का ऊछलना-गिरकर–पडना माँ-बाप के लिए असह्य हो गया। नवकार मंत्र श्रवण के बदले प्राणातिप्रिय बच्चे की यह भयानक हालत देखकर माता-पिता के धैर्य का बांध छूट गया। आघातवश माँ बेहोश हो गई पर ऐसे हालात में भी रमेश जोर जोर से नमो अरिहंताणं बोलता रहता था।

उस समय उसके चाचा आये। रमेश ने कहा,"चाचा मुझे नवकार मंत्र सुनाइए। बा-बापुजी को बाहर ले जाइए। मुझे तो नवकार ही चाहिए।"

बहुत साहस जोडकर चाचा ने नवकार मंत्र सुनाना शुरू किया , पर अफसोस ! आधा घंटा खत्म होते होते तो रस्से से मुश्केटाट बंधे हुए रमेश ने कहा, "काका ! अब मुझे कान से सुनाई नही देता। आप ऊँची आवाज में बोलिये !;

चाचा जोर जोर से नवकार सुनाने लगे तब नर्स ने कहा,"अस्पताल में इस प्रकार ऊँची आवाज में मत बोलिये।,बोलना बंद कीजिए !"

चाचा ने गुस्से में आकर नर्स को थप्पड मारकर भगा दिया। रमेश ने सारी श्रवण शक्ति को गँवा दिया। चाचा को यह बताकर कहा कि "अब मैं ही बोलूंगा " और ...रमेश असह्य वेदनाओं के बीच परमात्मा को हाथ जोड जोडकर वंदना अर्पित करता रहा। और ताल स्वरों में बोलता चला-नमो अरिहंताणं,नमो सिद्धाणं,नमो आयरियाणं....।

और आखिरकार वह काल-क्षण आ ही गया। रमेश की वाचा बंद हो गई। उसकी आँखें फटने लगी।

पर तब भी रमेश अपनी उंगली के पोरों पर नवकार स्मरण कर रहा था। चाचा ने उसके मातापिता को बुला लिया। सिसकियाँ भर भरकर रो रही माता से चाचा ने कहा,"पुत्र के ऐसे मंगलमय अवसान पर कहीं रोया जाता है ! देखो तो,वह मन ही मन नवकार मंत्र का जाप कर रहा है। उसकी उंगली अब भी पोरों पर चल रही है।"

यह बात करते करते तो रमेश के प्राण अनंत के प्रवासी हो गये। धन्य रमेश ! धन्य माता पिता ! धन्य धर्मसंस्कार।

5. मात्र श्रद्धापूर्ण नवकार जप की ताकत

(जिसे जप से अधिक जप के पदों की समझ नही है,पर श्रद्धा जोरदार है ,ऐसे एक व्यक्ति के जप की ताकत इस सत्य घटना में आपको दिखाई देगी। घटना को पढ लेने के बाद जप विषयक आपकी श्रद्धा भी सुदृढ हो जायेगी।)

एक जैन बंधु थे। जैनों के सर्वश्रेष्ठ मंत्र नवकार के वे आराधक थे। रोज १०८ बार नवकार मंत्र का वे जाप करते थे।

मंत्र के अर्थ या उसके रहस्य की गहराई में वे कभी उतरे नही थे परंतु अत्यंत श्रद्धा एवम् सद्भाव के साथ,रोज प्रातः शुद्ध वस्त्र धारणकर ,बिना झूके बैठकर आँखें मींचकर आप यह १०८ मंत्र-जप अखण्डित रूप से गिनते थे।

उनकी इच्छा अवश्य थी कि उन्हें इस मंत्रशक्ति का कोई प्रभाव अवश्य देखने को मिले।

एक दिन उनके पास शक्ति के उपासक भाई गये। बातचीत के दरमियान मंत्रशक्ति की बात चली। उपासक ने कहा : "आपको मंत्रशक्ति का प्रभाव यदि अनुभव करना हो तो मेरे साथ आओ। शक्तिदेवी के मंदिर में टोनहाया (ओझा) के पास मैं आपको ले चलूँ।"

जैनभाई चलने को तैयार हुए। एक दिन वे टोनहाया के पास दोनों पहुँच गये।

शक्ति के उपासक ने टोनहाया से कहा कि ,"ये मेरे जैन मित्र हैं। उनके शरीर में माताजी प्रविष्ठ कराकर शक्ति-तत्व का चमत्कार दिखायें। ऐसा मैं चाहता हूँ।"

यह बात सुनकर टोनहाया धीमे धीमे आवेश में आकर सिर हिलाने लगा। कुछ क्षणों में उसके शरीर में कोई प्रविष्ठ हुआ हो ऐसा अहसास हुआ।

जोर जोर से सिर हिला रहा टोनहाया जैनभाई के चारोंओर घेरे में घूमने लगा। एकबार,दूसरी बार,तीसरी बार...हरबार अपना पैर ठोंककर पुनः अपने स्थान पर आ जाने लगा। उसके मुख पर किसी प्रकार की निराशा या लाचारी स्पष्ट होती जा रही थी।

जैनभाई तो अविरत अपना इष्ट मंत्र गिन रहे थे।

उपासक ने टोनहाया कीओर देखते हुए पूछा :"ओ माताजी !आप इस जैनभाई को चमत्कार दिखाने का प्रयत्न कीजिए।"

टोनहाया के मुख से शक्तिमाता ने कहा,"मुझसे उसके शरीर में प्रवेश हुआ नही जा रहा है। मैंने बहुत मेहनत की लेकिन मुझे निष्फलता मिली है क्योंकि उस भाई के चारोंओर उसके इष्टमंत्र के श्रद्धापूर्ण जप का ऐसा तो अभेद्य वातावरण निर्मित हुआ है कि उसे भेदकर उसकी देह में मैं प्रवेश नही कर पा रही।"

उपासक ने कहा कि "आप कुछ भी कीजिए। आपको उसे चमत्कार दिखाना ही पडेगा।"

माताजी ने कहा,"यदि वह जैनभाई इतना ही कहे कि आज से मैं अपने इष्ट मंत्र का जप और उसके प्रति श्रद्धा दोनों का मैं सम्पूर्णरूप से त्याग कर रहा हूँ तो मैं फौरन उसकी देह में प्रवेश कर सकूंगी। अन्यथा ऐसा कर पाना मेरे लिए असम्भव है।"

यह सुनकर अजैन भाई तो बहुत हताश हो गये। जैन बंधु तो अत्यंत आनंदित होकर वहाँ से ऊठ खडे हो गये।

घर पहुँचने के बाद वह जैनबंधु बहुत रोये। उनके अंतर में एक ही विचार मंडराता रहता था कि,"जिसकी प्रचण्ड ताकत के चलते शक्तिमाता को भी निष्फलता मिली, उस नवकार मंत्र के प्रति मेरी भक्ति कितनी है ?"

ऐसी अद्‌भुत चीज मुझे मिली होने पर भी मैं कितना अभागा कि आज दिन तक उसकी प्रचण्ड शक्ति को मैं कभी समझ नही पाया। मात्र श्रद्धापूर्वक गिने जानेवाले इस मंत्र का यदि मैंने पूर्ण सद्‌भाव,समझ और विधिपूर्वक गिना होता तो मेरा कितना कल्याण हो जाता !"

तब से वह जैनबंधु मंत्राधिराज श्रीनवकार के अठंग उपासक हो गये।

मात्र श्रद्धा के साथ गिने जाते द्रव्य-नवकार की भी कितनी प्रचण्ड ताकत ! तो भाव नवकार की शक्ति तो कितनी होंगी ?"

6. धर्मी - सुख से अलीन + दुःख से अदीन

पुण्य के प्रभाव से एक दिन फूटपाथ पर सोनेवाला आदमी लक्षाधिपति सेठ हो गया। उसका नाम धवल था। धर्म के प्रति उसकी अविचल श्रद्धा थी। उसमें भी परमात्मा की भक्ति तो बस,उसकी साँस और प्राण। आँख मूंदकर वह धर्म मार्ग पर सम्पत्ति का उपयोग करता था।

जिनेश्वरदादा की पूजा की उत्तमोत्तम सामग्री वह खरीद लाता था। उसके लिए वह मुँहमांगा दाम देता था। पुष्पों की खरीदी करते समय वह मालिन से भी भावताल करता नही था। अंजुरी भरकर वह पैसे देते हुए झिझकता नही था। इसमें तो वह मालिन पैसेवाली हो गई। उसने अपने लिए घर बना लिया।

इस तरफ बडे होकर पिता की दुकान सम्भाल रहे चार बेटों को पिता की यह उदारता सुहाती नही थी। चारों पुत्रों ने मिलकर पिता से आग्रह किया कि वे ऐसा खर्च करना बंद कर दें।

धवल सेठ ने बेटों को यह बात समझाने का बहुत प्रयत्न किया कि जो कुछ है वह धर्म के चलते है .हमारे व्यावसायिक पुरुषार्थ के कारण नही है पर बेटों ने उसकी एक न मानी। वृद्ध हुए पिता की उदारता को नियंत्रित करने की बात को पकडे रखा। आखिरकार ऐसे नियंत्रण के साथ घर में रहना उचित न लगने पर वृद्ध पिता ने गृहत्याग किया।

कल का सेठ आज भिखारी हुआ ! बेटों के मन में यह आशा थी कि पिताजी आज कल में वापस लौट आयेंगे पर वह आशा व्यर्थ सिद्ध हुई।

बहुत सधे हुए धवल ने मिर्ची बेचना शुरू किया। बुढापे की उस जिंदगी में कंधे पर मिर्च का बडा थैला धरकर "मिर्च ले लो,मिर्च...पुकारता हुआ विक्रय के लिए निकलता था। चार-छह घण्टे नगर में फेरी लगाता और दो आना(आज के हिसाब से १२ पैसा) मुनाफा कमाता था। उसमें से एक आने का खाना खाता था और एक आने के फूल मालिन से क्रय करके जिनपूजा करता था।

सेठ के मुख की रौनक अब और बढ गई थी। लम्बे-चौडे और हजारों के लेन-देन के व्यवसाय और स्वजनों की चिंता से मुक्त हो जाने से प्राप्त आनंद भक्ति में ऊँडेल देते थे। इस प्रकार दिन और

महिने आनंदपूर्वक बीतने लगे।

एक दिन उस नगर में, जिनालय में कोई जैन साधु भगवंत पधारे। विगत भूतकाल के एक समय के लखपति सेठ को मंदिर से बाहर आते हुए देखा। आज उनके कपडे फटे हुए और उन पर पैबंद लगे हुए थे। सेठ की इस स्थिति से चकित होकर मुनि भगवंत ने सारा हालचाल पुछा। सेठ ने सारी बात बताकर उपसंहार के रूप में बताया कि "मैं तो पहले से कहीं ज्यादा सुखी और खुश हूँ,मुझे बहुत शान्ति है। आप मेरी जरा भी चिन्ता न करें।"

मुनि भगवंत ने आत्मा के शीघ्र विकास के लिए एक मंत्र जप दिया।

एकदा उस मंत्रजप करते समय प्रभु बिम्ब से एक तेजवर्तुल प्रकट हुआ। उसमें से देवात्मा प्रकट होकर धवल के समक्ष आये। उन पर रिझे हुए देव ने धवल से कुछ मांगने के लिये कहा। सेठ ने सोचा कि "बेचारा देव ! देने का कोई सामर्थ्य नही फिरभी मांगने के लिए कह रहा है ? जरा बोधपाठ (सबक) दूँ।"

सेठ ने कहा कि "मुझे मेरी समग्र पूजा का जो फल मेरे हिस्से आता हो वह दीजिए।" देव ने कहा,"वह मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है।"तो फिर एक पूरी पुष्पपूजा का फल मुझे दीजिए और यदि यह भी असम्भव है तो मुझे एक ही पुष्पपूजा का फल दीजिए।"

जब देव ने सारी बातों के लिए अपनी सामर्थ्यहीनता बतायी तब धवल ने कहा :"भला ! यदि आपकी शक्ति ही नही है तो ऐसे मांगने की बात क्यों कर रहे हैं ?"

सेठ ! परमात्मा में एकाकार होकर, भावविभोर होकर आप जो पूजा कर रहे हैं वह अमूल्य है। ना...एकाध पुष्प की पूजा का भी मैं मोल नहीं कर सकता पर अब मैं वैसे ही वापस नही लौटूँगा। आपके बेटे धर्ममार्ग पर लौट आये ऐसा तो कुछ अवश्य करके जाऊँगा।"

सेठ ने इस बात का स्वीकार किया। देवात्मा की एक तरकीब से सारे पुत्र धर्ममार्ग पर लौट आये और पिताजी के टूटेफूटे झोंपडे में जाकर पैर पकड लिये। खुब रो-रोकर क्षमायाचना की और पिताजी को घर वापस ले गये। ऐसा होता है धर्मात्मा !सुख में अलीन और दु:ख में अदीन।

7. बड़ों की आशातना(मर्यादालोप) का फल

एकबार महारानी विक्टोरिया के जन्मदिन पर भारत के अनेक महाराजा लंदन में ,ब्रिटन में जमा हुए थे। तीनों कक्षा के राजा उसमें उपस्थित थे। जब जिसका क्रम आये तब वह राजा या बादशाह विक्टोरिया के पास जाकर नमन और नजराना पेश करके वापस लौट आता था।

उसमें एक राजा ने भूल कर दी। नजराना पेश करके वापस लौटने के बाद सुना,"Who is that idiot? जवाब मिला:फर्स्टक्लास स्टेट के महाराजा गायकवाड।"जब गायकवाड अपने घर पहुँचे तब उनके हाथ में एक लिफाफा रख दिया गया।जिसमें महारानी विक्टोरिया की और से लिखा गया था कि "आज से आपके स्टेट को सेकण्डक्लास में उतार दिया जाता है।

8. क्या ईश्वर है?

वह निरा नास्तिक था। सबसे कहता रहता था कि No Where is God."ईश्वर कहीं नही।" उपरांत अपनी मौत न हो जाये इसलिए उसने चार फैमिली डॉक्टर रखे थे। वे रोज उसकी जाँच करते थे और इस वजह से हकीकत में उसके शरीर में कोई रोग फटकता नही था। परंतु एक दिन ऐसा आया कि जब आईने के समक्ष खडे रहकर कंघी कर रहा था,तब उन बालों में एक सफेद बाल दिखाई दिया। वह बहुत अकुला गया।

उसने चारों डॉक्टरों को डाँट पिला दी कि आप सब ने आज तक क्या ध्यान रखा ? मेरे माथे पर यह श्वेत केश आया कहाँ से ?" और दो वर्ष निकल गये और पूरा माथा श्वेतकेशी हो गया और एक दिन उसे मौत की सवारी आती हुई अनुभव होने लगी। वह बोल उठा "No Where is God."मेरा यह वाक्य अटल है। परंतु उसमें जो W है,उसे Where में रखने के बदले अब णें के साथ जोडकर Now और Where here करूँगा और अब मैं मरण के आखिरी क्षण तक यही कहूँगा कि Now here is God."

अरबी कहावत कितनी यथार्थ है कि "श्वेत केश जैसा उपदेशक जगत में और कोई नही है।

9. भगवान की ही जय बुलायें

दो अंध फकीर थे। एकबार उनके पास एक राजा गया। पहले फकीर ने राजा के नाम का जयकारा बुलाया। दूसरे फकीर ने भगवान का जयकारा बुलाया। दोनों ने राजा से याचना की पर राजा को दूसरे फकीर पर अपने नाम का जयकारा नही बोलने के कारण द्वेष पैदा हो गया।

राजमहल जाकर उसने एक बडी पतीली मंगवाई। उसमें कुछ सोनामुहरें रखकर मीठा भात (चावल) रखकर पहले फकीर के पास वह पतीली भिजवायी। पहले नम्बर के फकीर ने चावल खा लेने के बाद बचे हुए चावल सहित पतीली दूसरे फकीर को दी। दूसरे फकीर को चावल खाने के साथ उसमें से सोनामुहरें मिली।

दूसरे दिन राजा वहाँ गया। दोनों फकीरों ने पूर्ववत् जयकारा बुलाया। दोनों ने राजा से कहा :"हे राजन्! कल जो दिया था ,वह आज भी दीजिए।"

राजा को आश्चर्य हुआ कि दूसरे फकीर ने क्यों मांगा? मैंने तो उसे कुछ भिजवाया ही नही। तलाश करने पर पता चला कि भगवान का जयकारा बुलानेवाले फकीर को केवल चावल ही नही मिला है परंतु सोनामुहरें भी मिली हैं। तब राजा को भगवान की महिमा समझ में आ गई।

10. कुमारपाल के बेटे कैसी प्रभुभक्ति

कुमारपाल के उस जवान पुत्र का नाम नृपसिंह था। अति अल्पावस्था में उसका देहावसान हो गया था। मृत्यु के आखिरी दिन हेमचंद्रसूरिश्वरजी उसे निर्यामणा(आराधना) कराने गये थे तब उन्होंने नृपसिंह की आँखों में अश्रु देखे।

सूरिजी ने उसे मृत्यु की अनिवार्यता समझाते हुए कहा कि:"समाधि से मौत मिले यह तो अपनेआप में बहुत बडी बात है। मृत्यु की सम्भावना करके रोने की तनिक भी जरूरत नही है।"

नृपसिंह ने कहा :"गुरुदेव ! मैं मौत के भयवश रो नही रहा। मेरे पिताजी कुमारपाल की कृपणता पर मैं आँसू बहा रहा हूँ।

मेरे पिताजी आज संगेमरमर से जिनालयों का निर्माण कर रहे हैं। मैं जब बडा हो जाऊँगा तब इस धरती पर रहे सैंकडों जिनालय सोने से बनवाऊँगा। गुरुदेव ! मेरी यह अंतर की भावना अधूरी रह जा रही है। इसलिए मैं रो रहा हूँ।"

यह शब्द सुनकर सूरिजी की आँखों से भी आँसू बहने लगे। वे मन ही मन बोल उठे कि "कैसा जिनभक्त यह किशोर !"

11. हम किसके साथ मनुष्य? या भगवान के साथ

उस संत का नाम था खैयास। एकबार वे अपने शिष्यों के साथ नमाज पढ रहे थे। उस समय वहाँ एक शेर आ धमका। उसे देख सारे शिष्य नमाज छोडकर पेड पर चढ गये। लेकिन संत खैयास ने तो अपनी नमाज जारी रखी। कुछ देर बाद शेर चला गया। सारे शिष्य पेड से उतरकर गुरु के पास जाकर बैठ गये।

नमाज खत्म होने के बाद खैयास को मधुमक्खी ने दंश लगाया और चीखकर खैयास ने कहा :"जल्दी करो,मुझे मधुमक्खी ने काटा है।"

शिष्य अवाचक रह गये और पूछा-"मधुमक्खी के दंश का आपने अनुभव किया और दहाडता हुआ शेर आया तब आपको क्यों कुछ नही हुआ ?"

शिष्यों के सवाल का जवाब देते हुए खैयास ने कहा :"शेर की दहाड के वक्त मैं भगवान के पास था-साथ था-इसलिए मुझे कुछ न हुआ। अब मैं तुम सबके साथ बैठा हूँ ,अतः मधुमक्खी से भी डर गया।

12. ईश्वर और मनुष्य के बीच क्या अंतर?

एकबार तानसेन के गुरू हरिदास के पास अकबर ने कोई गीत सुना था। यह गीत सुनकर अकबर अति आनंदविभोर हो गया था। एक दिन वही गीत राजदरबार में पुन: गाने के लिए अकबर ने तानसेन को आदेश दिया। और तानसेन ने अपनी समस्त कुशलताओं के साथ गाया परंतु पता नही क्यों अकबर को उस गीत में जीवंतता अनुभव नही हुई। उसका मन कह ऊठा -कहाँ तो हरिदासजी द्वारा यह गीत और कहाँ तो तानसेन द्वारा गाया गया यह गीत ?"

अकबर ने तानसेन से इस अंतर के विषय में पूछा। तानसेन ने कहा :"यह नितांत सत्य घटना है। जहाँपनाह ! मेरे गुरूदेव भगवान को प्रसन्न करने के लिए यह गीत गाते हैं और मैं आप जैसे इन्सान को प्रसन्न करने के लिए गीत गाता हूँ।" "ईश्वर और मानव में कितना सारा फर्क है ? तो फिर ईश्वर को रिझाने और इन्सान को रिझाने के लिये गाये जाते गीत में फर्क हो,इसमें कोई आश्चर्य नही।

13. केदारा गिरवी रखा

एकबार नरसिंह मेहता के पास अति गरीब आदमी गया। उसने अपनी बेटी के विवाह का अवसर पार उतारने के लिए मेहता से कुछ रुपये मांगे पर मेहता तो अकिंचन थे तथापि वे उस गरीब की दशा देखकर पीघल गये। तुरंत किसी व्यापारी के पास जाकर अपना अतिशय प्रिय केदारो नामक राग गिरवी रखकर पैसे देकर उस ब्राह्मण को संतुष्ट किया।

कुछ समय बाद मेहता की प्रभुभक्ति की कसौटी करने के लिए राजा ने मंदिर के ठाकुरजी को माला पहनाकर ताला लगवाते हुए नरसिंह मेहता को आह्वान दिया कि ठाकुरजी के गले की माला यदि उनके गले में ला दे तो वे सच्चे प्रभुभक्त कहलायेंगे। इस कार्य के लिए नरसिंह मेहता को केदारा गाने की जरूरत पडी। उन्होंने राजा से यह बात कही। राजा ने गिरवी रखा हुआ राग पैसे देकर व्यापारी से छुडवा लिया। और फिर केदारा में नरसिंह मेहता ने ऐसा गाया कि सचमुच ठाकुरजी के गले में पडी हुई माला मेहताजी के गले में आ पडी।

14. क्या संगति से ही रंग चढ़ता है?

महाराष्ट्र में जन्मे ज्ञानेश्वर तीव्र मेधावी थे । उनका योग ज्ञानप्रधान योग था पर जीवन में भक्तियोग ठीक से जमता नही । इस बात का गहरा दु:ख था । अत: वे एकदा नामदेव नामक संत के पास गये और उनके साथ तीर्थयात्रा में जुडने का प्रस्ताव रखा ।

नामदेव ने कहा :तनिक बैठिये ,मैं भितर जाकर प्रभु की आज्ञा लेकर आता हूँ ।"

नामदेव अंदर गये । प्रतिमा के समक्ष आँखें मुंदकर लीन हो गये ।आँख से आँसू बहने लगे । जब बाहर आये तब उनकी अश्रुपूरित आँखें देखकर ज्ञानेश्वर दंग रह गये।

तीर्थयात्रा में जुडने की अनुमति मिल गई और ज्ञानेश्वर के जीवन में नामदेव के संग अपूर्व कोटि की प्रभुभक्ति व्याप्त हो गई ।

भक्ति ही हृदय को स्निग्ध बनाती है ,कोरा ज्ञान बेचारा करे भी तो क्या ?

15. जिसका मन नहीं वही शिष्य

बनवास के समय के दरमियान एकबार मनोरम्य प्रदेश को देखकर रामचंद्रजी ने अपने अनन्य भक्त शिष्य को आदेश किया ,हनुमान ! यह मनोरम्य स्थल है । यहाँ हमें कुछ दिन के लिए रूकना है, तो तुम्हारा मन जो जगह पसंद करे वहाँ तुम पर्णकुटिर तैयार कर दो । "राम की बात सुनते ही हनुमान किसी सोच में पड गये । वहाँ से हटकर थोडी दूर जाकर किसी वृक्ष के नीचे बैठकर रोने लगे । तीन-चार घंटे बाद भी हनुमान के वापस न लौटने पर लक्ष्मण और बाद में सीताजी उनकी खोज में निकलीं । दोनों को हनुमान मिल गये । उन्हें सिसक सिसककर रोते हुए देखकर सीता ने पूछा ,"अरे ! इतना ज्यादा रोने की कोई वजह ? क्या तुम्हारे स्वामी ने तुम्हें कोई उलाहना दी है ? हनुमान ! जो कुछ हुआ हो ,वह हमें बताओ । हम उसका कोई समाधान ला देंगे ।"

हनुमान ने स्वस्थता धारणकर कहा –"भगवान ने मुझे आज्ञा दी है कि तुम्हारा मन जहाँ पसंद आये ऐसे स्थान पर पर्णकुटिर बनाओ। इस आज्ञा का पालन करना मुझसे किसी हाल में सम्भव नही है। अतः मैं भारी उलझन में फंस गया हूँ। हाय ! अब मैं आज्ञाद्रोही गिना जाऊँगा। माताजी ! मेरा सवाल यह है कि मुझे तो मन जैसा कुछ है ही नही। भगवान के मिल जाने के बाद मैंने तो अपने मन को उनमें विलिन कर दिया है। अब जब मेरा मन ही नही है तो इस आज्ञा का पालन किस प्रकार किया जाये ? सीता और लक्ष्मण हनुमान की इस स्वामी भक्ति को देखकर अति हर्षित हो गये। वे हनुमान को रामचंद्रजी के पास ले गये। सारी हकीकत जानकर रामचंद्रजी भी अत्यंत हर्षित हुए। बाद में अपनी मनपसंद जगह दिखाकर वहाँ पर्णकुटिर की रचना करने की हनुमान को आज्ञा दी।

16. मणि से भी बढ़िया मन

प्रभुभक्त रैदास जाति से चमार थे। जूते सीकर गुजर-बसर करते थे।

गरीबी तो आसमान को छू रही थी पर प्रभुभक्त मन तो उससे बेपरवाह था।

भक्ति की मस्ती तो इतनी अधिक थी कि कोई भी सांसारिक सुख उसे छू नही सकता था।

रैदास की जीवन महिमा को सुनकर कोई संन्यासी उनकी कुटिया पर गया। कुटिया में जमे हुए गरीबी के झाड-झंखाड को देख वह तो निराश हो गया और खूब रोया।

संन्यासी ने रैदास की बहुत जिरह की पर किसी बात को लेकर दीनता दिखाई नही दी।

इस संन्यासी के पास पारसमणि था।

लाखो टन लोहे को, स्पर्श मात्र से सोना बना देने की उसकी ताकत।

संन्यासी ने उसे रैदास को भेंट किया। रैदास ने इसका परिग्रह करने से साफ इन्कार किया पर

जब संन्यासी जीद पर अडा रहा तब रैदास ने कहा,"झोंपडे की इस छत की लकडी में उसे रख दो ,बस...। संन्यासी ने वैसा करते हुए बिदाई ली । कुछ महिनों बाद संन्यासी पुनः रैदास के दर्शनार्थ आया।

संन्यासी की कल्पना थी कि अब झोंपडे की जगह पर बंगला बन गया होगा। आदि...आदि...

पर यह क्या ?वही झोंपडा ! वही हालात ! तनिक भी फर्क नही। संन्यासी ने रैदास से पूछा कि "पारसमणि कहाँ है ?"

रैदास ने कहा,"भाई ! तुमने जहाँ रखा था वहाँ ही है। किसी ने उसे कभी छुआ तक नही है। तब संन्यासी की समझ में बात आयी कि वह रैदास को भक्ति का जो सुख मिला था उसके सामने बंगला तथा बाग का सुख उसके लिये किसी महत्व का नही। स्वयं संन्यासी हुआ है तथापि बंगला और बाग में सुख की कल्पना करके बैठा है और इसी लिए अपने पारस को अतिमूल्यवान समझा है।

17. कौन महान! पारस या मन?

वह बहुत ही गरीब आदमी था। अंग पर लंगोटी पहनने के अतिरिक्त कोई वस्त्र नही था।

रात के तीन-चार बजे तक मधुर स्वर में प्रभु भजन गाता था। गाँव के बाहर रही झोंपडी में कोई संन्यासी रहता था। इस गरीब आदमी के मन में विचार आया कि उसके पास बहुत संपत्ति होनी चाहिए। इसलिए वह रात्रिवेला में अत्यंत मौज में आकर भजन गा सकता है। चल,उसके पास जाकर कुछ माँगू।

वह आदमी उस संन्यासी के पास गया। संन्यासी ने तो उसे स्प्पट शब्दों में बता दिया कि उसके पास तो फूटी कौडी भी नही है पर उस आदमी ने उसकी बात नही मानी तब संन्यासी ने उससे कहा :"भाई ! कुछ वक्त पहले कोई भक्त मुझे पारसमणि दे गया था। मैं उस मणि को गाँव के बाहर बह रही नदी के तट पर किसी स्थान पर रख आया हूँ। तुम जाओ ओर तुम उस मणि को ले लो तो तुम्हारे पास

करोडों रुपये हो जायेंगे ।" यह सुनकर वह आदमी तो बहुत खुशखुशाल हो गया । नदी तट पर वह फौरन गया । निर्दिष्ट स्थान पर अभी भी वह मणि पडा हुआ था ।

जैसे ही वह मणि को उठाने जाता है कि उसके मन में एक विचार कौंध गया ।

उसने सोचा कि उस संन्यासी ने मुझे ठग लिया हो ऐसा लगता है । कुछ रूपयों में मुझे समझा दिया है । उसके पास करोडों रूपये बनाकर देनेवाले मणि से भी कोई मूल्यवान चीज होनी चाहिए । अन्यथा वह क्यों ऐसे मणि को नदी तट पर छोड दे ? तो फिर मैं पारस से भी अधिक मूल्यवान चीज क्यों न पा लूँ ?

ऐसा सोचकर पारसमणि को छोडकर वह व्यक्ति संन्यासी के पास गया । उसने पूछा :"मणि से बडा क्या ?" संन्यासी ने मुस्कुराकर कहा,"मन की मस्ती : प्रभुभक्ति से प्राप्त होनेवाली । जिसे मिठाई मिल गई हो वह चपाती की ओर क्यों देखेगा ?"

18. जहाँ देह का होश नहीं वहाँ ही सच्चा ध्यान; सच्ची समाधि

रामकृष्ण को कैसे भी निर्विकल्प समाधि लगती नही थी । उनके गुरु तोतापुरी के मन तो यह बायें हाथ का खेल था । अतः रामकृष्ण बैचैन रहते थे ।

एकबार उन्होंने गुरू से अपने मन की बात कही । गुरु ने उससे छुरी मंगवाई और खट से अपने ललाट (आज्ञाचक्र) पर एक चीरा (जख्म) कर दिया !

बस....उसके बाद तो रामकृष्ण अपनी ईष्टदेवी का नामस्मरण करते ही समाधि वश हो जाते थे। उसके वर्णनातीत आनंद का अनुभव करते हुए रामकृष्ण एकबार तो दिवसों,महिनों –पूरे छह महिने समाधि में ही जमीन पर सीधे पडे रहते थे ।

वहाँ अचानक आ पडे किसी संन्यासी ने उनकी इस दशा को कुछ ही दिनों में देखा । ललाट पर

महातेज को देखकर उसे लगा कि, यह तो भारत का दिव्य व्यक्ति बननेवाला कोई व्यक्ति लगता है। यदि बिना खाये-पिये ही वह समाधि में रहा तो शायद मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा। मुझे उसकी रक्षा करनी ही चाहिए।

बाद में उस संन्यासी ने वहाँ स्थिरता की। कुछ दिन के अनंतर रामकृष्ण के गाल पर बडी लाठी के दो-चार वार करके बडी मुसीबत से कुछ पलों के लिए उन्हें समाधि से बाहर लाता था और उस समय उसका मुख खोलकर दूध भरी कुछ चम्मचें उसके मुँह में उतार देता था।

कभी कभी तो रामकृष्ण के समाधि से बाहर न आने पर दूध मुँह में ही पडा रहता था पर हलक से नीचे उतरता नही था। ऐसे समय लाठी के दो वार करके भी वह संन्यासी रामकृष्ण को समाधि से बाहर लाता था।

देह का होश भी जो आत्मा गँवा दे वही सच्ची समाधि को प्राप्त करता है। ऐसा कह सकते हैं।

ध्यान भी उसीका सच्चा जिसे समाधि से बाहर निकलने पर स्वयं को शरीर है या नही ? उसकी प्रतीति करानी पडती है।

19. तीर्थरक्षा हेतू बारोंटा का बलिदान

मुहंमद नामक एक मुस्लिम बादशाह था। वह मूर्तिभंजक और मंदिरों का "काल" था।

भारत के अनेक मंदिरों का नाश करते हुए वह पालिताणा गया। शत्रुंजय तीर्थ के जैनों के बेनमून मंदिरों को धराशायी करने की उसकी प्रबल महत्वकांक्षा थी।

पालिताणा का समग्र संघ जमा हुआ पर बनिये कायर निकले। उस वक्त वहां उपस्थित बारोट जनसमुदाय ने तीर्थरक्षा की जिम्मेदारी ले ली। जैनसंघ ने उन्हें बताया कि जिनका बलिदान होगा उन सारे बारोटों के परिवारों को वंश परंपरागत रूप से जैनसंघ हर तरह से संभालेगा।

इस तरफ गुप्त रूप से बारोटों ने ऐसी बातमी प्राप्त की कि यदि बादशाह के सामने जलता हुआ

शव आ जाये तो वह उस काम से वापस लौट जाता है।

पहले दिन दो बारोट जिंदा जल मरे। जिस समय बादशाह तीर्थदर्शन करने के लिए शत्रुंजय की तलहटी के पास गया कि उसने चिता में दो मुर्दों को जलते हुए देखा। फौरन वह "या खुदा" कहता हुआ वापस लौट गया।

लगातार चालीस दिन तक ऐसा सिलसिला चलता रहा। अस्सी बारोटों ने अपने प्राणों की आहुति दे दी। अभी और अनेक बारोट इस प्रकार जल मरने का लाभ लेने के लिए तत्परता दिखा रहे थे।

मुहंमद भी ऐसे बलिदानों के पीछे रहे तीर्थरक्षा के उद्देश्य को समझ गया था। वह भी मन ही मन त्रस्त हो ही गया था।

दूसरे दिन सुबह दो बारोटों ने मुहंमद के समक्ष ही अपने पेट में खंजर मारकर अपनी आंतें बाहर निकाल दी थी। बादशाह उस कंपकंपा देनेवाला दृश्य देख नही पाया।

और सदा सदा के लिए पालिताणा छोडकर चला गया।

श्री संघ ने बारोट कौम का उत्कृष्ट ढंग से बहुमान किया।

20. दहेज में बहन ने मांगा मंदिर!

पिताजी का देवलोकगमन हो जाने के कारण छोटी बहन उजम की शादी के समय होनेवाले धार्मिक संस्कारों का उत्तरदायित्व बडे भैया पर आ गया था। बहन को पिताजी की अनुपस्थिति का जरा भी अहसास न हो, इसलिए उसके विवाह संस्कार भाई ने बडे ठाटबाट के साथ किये थे।

बहन की बिदाई-वेला पर दहेज में भाई ने बहन को नौ गाडियाँ भरकर सोना,चांदी,जवाहिरात आदि चीजें दी।

भाई ने अपनी बहन को नौ गाडियाँ दिखाई और पूछा कि "क्या तुम इतने से संतुष्ठ हो? तुम्हें पिताजी के नही होने का दु:ख न हो, इसलिए अधिकाधिक सामग्री तुम्हें दहेज में दी है।"

पर बहन तो मौन रही । उसके मुख पर उदासी थी । भाई ने कहा कि "यदि उसमें कुछ जुडना बाकी रहा हो तो वह तैयार है ।"

यह सुनकर बहन को लगा कि भाई को कुछ गलतफहमी सा हो रहा हो ऐसा लगता है । उसे दूर कर देना चाहिए ।

अत: बहन ने कहा,"भाई ! इन नौ गाडियों में तो तुमने जो सामग्री भरी है,उसका भोग करने से संसार की वृद्धि होगी ।

हम तो वीतराग ऐसे परम पिता के अनुयायी हैं । क्या भोगसामग्री के नाप-तौल से हमारे सुख-दु:ख का निर्वाण होगा ? मुझे तो इनमें से कुछ भी नही चाहिए ।

भाई ! यदि तुम मेरे मन की प्रसन्नता चाहते हो तो मात्र एक काम करो । तीर्थाधिराज शत्रुंजय पर विशाल जगह प्राप्त करके वहाँ विराट जिनालय का निर्माण करो । यही मेरा दहेज ! इसीमें मेरी प्रसन्नता !"

यह सुनकर भाई ने दसवीं बैलगाडी मँगवायी । वह खाली थी । उसमें एक चिट्ठी रखी :"उजमबहन का जिनालय ।"

सच में उसने अपने वचन का पालन किया । आज "उजमफई की टूंक" के नाम से वह स्थान प्रसिद्ध हुआ है ।

कैसी बहन ! कैसा भाई !

21. लुणिग की कैसी प्रभुभक्ति!

लुणिग वस्तुपाल और तेजपाल का अनुज बंधु।

एकबार वह आबु-तीर्थ की यात्रा करने केलिए गया। मंत्रीश्वर विमलशाह द्वारा निर्मित जिनमंदिर में विराजमान परमात्मा के दर्शन करते हुए वह तन्मय हो गया। परमात्मा की मुखाकृति अतिअद्‌भुत थी ! उसने संकल्प किया। भविष्य में ऐसी ही एक मूर्ति रचाऊँगा पर महाकाल के अकल गणित को कौन समझ सकता है?अत्यंत अल्प अवस्था में यमराजा ने लुणिग पर हमला कर दिया। वह किसी विचित्र रोग का शिकार हो गया। उसकी देह दिनप्रतिदिन क्षीण होती चली।

उस समय वस्तुपाल का समग्र परिवार असह्य (भीषण) गरीबी के कहर का शिकार हुआ था। लुणिग के लिए दवाई लाने के लिए जरूरी पैसे भी उनके पास नही थे। अतः बैद्य के द्वारा दिखाये औषध जंगल में भटक भटककर लाकर लुणिग को देते थे।

सबने लुणिग के प्राणों के बचने की उम्मिद छोड दी थी तथापि लुणिग की आखिरी साँस तक उसकी उत्कृष्ट सेवा-तिमारदारी करने की मानो सबने कसम खा रखी थी।

पर एक दिन शैयावश लुणिग की आँखों में आँसू देखकर सब ऐसे विचार से टूट गये कि लुणिग को ऐसा लगा है कि दरिद्रतावश उसके स्वजन उसकी ठीक से सेवा नहीं कर रहे हैं पर उस बात को नकारते हुए लुणिग ने कहा कि,"बन में भटक-भटककर आप मेरे लिए बुटियाँ लाकर औषधि तैयार कर रहे हैं।

अतः यह सवाल व्यर्थ है परंतु मेरे आँसू की वजह यह है कि मेरे जीवनकाल में मंत्री विमलशाह जैसी अनुपम मूर्ति की रचना करने की मेरी भावना अब पूरी नही होगी।"ये शब्द सुनते ही वस्तुपाल ने कहा,"वीरा! मात्र प्रतिमा ही क्यों ? ऐसा ही अद्‌भुत जिनमंदिर भी मैं संपन्नता आने पर निर्मित कराने की शपथ लेता हूँ।

तुम तनिक भी चिन्ता मत करो। यह शब्द सुनकर हर्षावेग के कारण लुणिग का जीवनांत हो गया। वस्तुपाल द्वारा निर्मित मंदिर जो मंदिर है,वही आबु का लुणिगवसही मंदिर।

22. प्रार्थना की शक्ति

एक छोटा सा वह गाँव था।

दोपहर का वक्त था। किसान खेतों में चले गये थे। एक घर में एक युवा सुंदरी थी। एकान्त देखकर तीन गुण्डों ने उसके घर में प्रवेश किया।

पहले तो जितना लुटा जा सके उतना सारा धन लूट लिया। इस दौरान उस स्त्री को बांध दिया गया था।

वह औरत भयवश थरथरा रही थी। गुण्डों के व्यवहार से उसे अंदेशा हो गया था कि अंत में,वे उसके साथ बलात्कार करेंगे।

अतः उसने पहले ही मनसा,हृदया ईश्वर की शरण मांग ली थी। आँख मूंदकर मन में एक ही पद की धून मचाकर वह प्रभुभक्ति में लीन हो गई थी। वह पद था : श्रीकृष्ण,गोविंद हरे मुरारे,हे नाथ नारायण वासुदेव।"

लूट का काम खत्म होते ही वे उस स्त्री की ओर मुडे। हाँ...अब वे उसके साथ बलात्कार करके उसका चारित्र लूटने के लिए अधीर हुए थे। पर उन तीनों के बीच एकाएक बडा झगडा हो गया। सब की इच्छा यह थी कि वह सबसे पहले बलात्कार करे।

इस मुद्दे पर भारी तकरार हुई। बाद में तो वे म्यान से तलवार खींचकर आपस में लडने लगे। तीन में से दो लोग तो वहीं पर जख्मी होकर लहूलुहान अवस्था में पडे। अतः तीसरा आदमी वहाँ से नौ-दो ग्यारह हो गया।

वह औरत नखशीख शीलभंग से बच गई। अभी भी उसके अंतर में वही सुमिरन चल रहा था ," श्रीकृष्ण,गोविंद हरे मुरारे,हे नाथ नारायण वासुदेव।"

23. कौन कब क्या कहेगा? क्या पता?

सोलह वर्ष की अवस्था का आल्बर्ट आईन्स्टाईन अर्थात् म्युनीक के स्कूल का अतिशय शरारती और एकदम मंदबुद्धि विद्यार्थी था। इन दो कारणों से अन्य विद्यार्थियों को वह बिगाडे नही,उस आशय से –स्कूल के प्रिन्सिपाल ने उसे स्कूल से निकाल दिया था।

तीन वर्ष की अवस्था तक तो वह कुछ भी बोल नही सकता था। बालक के रूप में वह "ओरिस्टिक चाईल्ड "माना जाता था। वह निरा मूर्ख समझा जाता था और यकायक यह क्या हो गया?.....कि आईस्टाईन का यह समग्र स्वरूप आमुलचूल परिवर्तित हो गया।

इस्वीसन १९०५ के वर्ष में मात्र छब्बीस वर्ष की अवस्था में उसने सारे संसार में खलबली मचा दी।

उस एक ही वर्ष में उसने तीन विराट सिद्धियाँ प्राप्त की। ये तीनों उपलब्धियाँ नोबेल प्राईझ के लायक थी। इतने बडे वैज्ञानिक को ईश्वर के प्रति भी गहरी श्रद्धा थी। वह कहता था कि,"ईश्वर ब्रह्माण्ड के साथ जुआ खेलने बैठा हो ऐसा मैं मानने के लिये तैयार नही।"

जब उसे गणित के किसी प्रश्न में परेशानी होती तब वह बडा कागज लेकर उसके मध्य में चक्र बनाकर उसमें अक्षर ध लिख देता था। यह ध उस घेंदृ का था। दो मिनट उसका ध्यान धर लेने से ही उसकी समस्या का निराकरण मिल जाता था।

E= Mc2 की अणु के समीकरण के आविष्कार से अणुबम ईजाद हुआ और अमरिका ने उन दोनों बमों को जापान के दो शहरों पर डालकर लाखों लोगों का संहार किया,तब उस बम की थियरी के प्रणेता के रूप में आल्बर्ट को गहरी ठेस लगी थी। उसने कहा था कि "यदि पुनर्जन्म जैसी कोई चीज हो तो मैं प्लम्बर बनना चाहूँगा।"

24. प्रभुभक्त ही गुणों का भण्डार

महाराष्ट्र में अभी अभी गाडगे नामक गृहस्थ संत जैसे गृहस्थ हो गये।

वे परम प्रभुभक्त थे। उनका प्रिय मंत्र था :देवकीनंदन गोपाला....गोपाला।

चौरे (चौपाल) पर खडे होकर ,पेड के नीचे खडे होकर ,लोकसमूह केसाथ बैठकर वक्तव्य देते थे। उनके वक्तव्य का केन्द्रबिंदु मानवता -गरीबों के प्रति करुणा थी।

वक्तव्य के दौरान प्रति दस-पंद्रहवें मिनट पर वे बोलते थे-देवकीनंदन गोपाला..गोपाला। तत्पश्चात् उनका वक्तव्य पुनः शुरू हो जाता था। जब वे इन शब्दों को बोलते थे तब उनकी आँखें अश्रुपूरित हो जाती थी। हृदय गद्‌गद् हो जाता था।

ऐसा यह प्रभुभक्त अन्य अनेक गुणों का आगार था। वह आदमी खाकी (अकिंचन) था , निस्पृह था,निरीह था,निष्पक्ष था।

अमीरों की वह कभी खुशामद करता नही था।

रिश्तेदारों के फायदे के लिए अपने सम्बंधों का उपयोग करता नही था।

आत्मप्रशंसा उसे नापसंद थी। खुशामदियों को अपने पास फटकने देता नही था। भूल के लिए क्षमा याचना करने में वह क्षण मात्र का विलम्ब करता नही था।

गरीबों या अबोल प्राणियों की सहायता करने के लिए वह अहर्निश तत्पर रहता था क्योंकि वह प्रभुभक्त था।"जनसेवा ही प्रभुसेवा" कहनेवाले मंदिर और प्रभुसेवा में नही माननेवाले आज के दंभी ,स्वार्थी तथाकथित समाजसुधारक या मानवतावादी लोगों की रग में बहते लहू का एक कतरा भी उनकी नस में बहता नही था।

अत: यही उसकी खुमारी आसमान को छू रही थी। कडुआ सच कह देने में उन्हें जरा भी देर नही लगती थी।

एक घटना आपके समक्ष रख रहा हूँ।

गाडगे महाराज की प्रेरणा से एक गाँव में गरीब बच्चों के लिए एक पाठशाला का प्रारम्भ हुआ।

उस पाठशाला के प्रांगण में गाडगे महाराज की पूरे कद की प्रतिमा स्थापित की गई। कुछ बरसों बाद गाडगे महाराज का वहाँ जाना हुआ।

उन्होंने उस प्रतिमा को देखते ही वहाँ उपस्थित पाठशाला के कार्यकारी मण्डल के पदाधिकारियों से पूछा कि "यह आदमी यहाँ किस लिए खडा है? वह क्या काम कर रहा है?"

पदाधिकारियों ने कहा ,"महाराज ! आपके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने हेतु हमने यहाँ आपकी प्रतिमा का स्थापन करवाया है। उसे तो क्या काम करना है?"

तत्क्षण गाडगे महाराज ने अपना लट्ठ हवा में उठाया और दूसरे ही क्षण प्रतिमा पर ऐसा जोरदार प्रहार किया कि उस प्रतिमा का मस्तक धड से अलग हो गया। उस वक्त उन्होंने कहा कि "जो कुछ भी काम नही कर रहा ,उसे इस कम्पाउण्ड में एक मिनट के लिए भी खडे रहने का अधिकार नही है।"

बाद में गाडगे जी महाराज ओफिस में गये। वहाँ भी उन्होंने अपने ही रंगीन चित्र देखे। उन्होंने सारे चित्र जप्त कर लिये। नदी पर स्वयं गये और तत्क्षण उन चित्रों को जलसमाधि दे दी ! पुनः पाठशाला के कार्यालय गये। सबको एकत्र करके अश्रुधार के साथ टूटते हुए शब्दों में उन्होंने कहा,"लोगों के द्रव्य से बनी पाठशाला में मेरे जैसे तुच्छ ,हीन और मामूली इन्सान का ऐसा बहुमान कभी नही हो सकता। आप यदि किसी को गौरवान्वित करना चाहते हैं तो मात्र परमात्मा को गौरवान्वित कीजिए। मनुष्य तो जरा भी गौरव के योग्य नही है।

ये शब्द सुनकर सबकी आँखें बरसने लगी।

धरती के एक औलिये की महानता का उन्होंने अश्रु द्वारा सम्मान किया।

अमीरों से मांगकर उन्होंने आठ करोड रुपये एकत्र कर के ट्रस्ट बनाया था। यह ट्रस्ट गरीबों के लिए विविध प्रवृत्तियाँ करता था।

एकबार गाडगे महाराज की बेटी उनके पास गई:

"बापुजी ! घर में खाने के लिए अनाज नही है। बच्चों के पीने के लिए दूध नही है। ट्रस्ट से मेरी सहायता करवाइए। महाराज ने करुणामिश्रित कडे शब्दों में कहा,"बेटी! मैं तुम्हारी सहायता करवाऊँगा तो लोग मुझ पर आक्षेप करेंगे कि सगे-सम्बंधियों का घर भरते हैं। अतः मुझसे तो नही हो

सकेगा।" दुर्भाग्य से दूसरे ही दिन बेटी मर गई !

उसके घर जाकर महाराज ने उसके अग्निसंस्कार के लिए जरूरी बयालिस रुपये लोगों से मांगकर एकत्र किये और अग्निसंस्कार संपन्न करवाया।

कहाँ तो आज के झूठे,स्वार्थी,रिश्तेदारी निभानेवाले समाज सुधारक ! बाढ राहत चंदों में से भी हजारों रुपये डकारनेवालों की अंतरात्मा को जरा भी ठेस नही लगती ! भगवान से भी कोई डर नही ! और कहाँ ये गाडगेजी जैसे महाराज !

यह बात तो निश्चित ही है कि जो भगवान का भक्त है वही गरीबों का और अबोल जीवों का सच्चा तारक है। अन्य तो पिंजरापोल के कार्यकर के रूप में चंदा एकत्र कर घर की तिजौरी भरते हैं और पिंजरापोल के पशुओं को पिछले दरवाजे से कसाइयों के दलाल को बेच दें तो इसमें कोई आश्चर्य नही !

मेरी तो सब को अनुभवजनित बिनमांगी सलाह यह है कि जिसके दिल में परमात्मा नही बसते,ऐसे जनसेवक को मानवता के नाम पर एक रुपिया भी देने से पूर्व लाख बार विचार कर लेना।

25. "श्याम! तेरे राज में देर है देर"

एक था नगर। वहाँ बुधाभाई नामक सेठ रहते थे। उनकी सिठानी का नाम माधुरी था।

वैवाहिक जीवन के अनेक वर्ष बीत गये पर पता नही सिठानी की गोद सुनी ही रही। इस बात को लेकर दोनों चिन्तित थे। वैसे तो ये दोनों राधेश्याम के परम भक्त थे। अतः ईश्वर पर पूरा भरोसा रखे हुए थे।

परंतु एक दिन सिठानी की धीरज का बांध टूट गया। उसने सेठ से कहा कब तक श्याम! श्याम करते रहेंगे ? अब तो मेरी श्रद्धा भी कम होने लगी है। यदि आप मुझे इजाजत दें तो मैं किसी अन्य देव-देवता की मन्नत रखूँ ,जिससे हमारी संतानेच्छा पूर्ण हो जाये।"

सेठ ने सिठानी से कहा ,"अरे ! यह तुम क्या बोले जा रही हो ! हमारा तो एक ही नाथ,राधेश्याम। हम क्यों अन्यत्र जायें ? समझ लेना ...कभी किसी साधु-संन्यासी आदि से ऐसी बात नही करना। ऐसा करने से तो हमारी खानदानी कलंकित हो जायेगी।

पर माधुरी सिठानी तो अब माँ बनने के लिए अत्यंत अधीर हो गई थी। उसने सेठ को अंधेरे में रखकर जिस-तिस देव-देवताओं की मिन्नतें मांगना शुरू कर दिया। अनेक साधु-जोगियों से मिली। उनके बताये अनुसार यज्ञ-याग,हवन,जप,मंत्र-तंत्र ,यंत्र,तावीज सब करने लगी पर उसे सरेआम निष्फलता मिली। दिन पर दिन बीतने लगे। वह मानसिक रूप से बीखरने लगी। सारे देव-देवताओं के प्रति उसकी जो आस्था थी वह चकनाचूर हो गई।

एक दिन कोई अघोरी साधु सेठ के घर गया। उसकी आकृति भीषण थी। बडा भारी रूआब था।

उसने सिठानी से भिक्षा मांगी।

सिठानी ने साधु को देख। उसकी हृदयस्थ संतानेच्छा एकदम तेज हो गई। साधु को ढेर सारी मिठाई देकर उसने कहा –"महाराज ! कुछ भी करो,पर मेरी मनोकामना को पूर्ण करो। वैवाहिक जीवन के अनेक वर्ष बीत चुके हैं पर मैं निःसंतान रही हूँ। मैंने अनेक देव-देवताओं की मन्नत रखी। मंत्र,तंत्र,यज्ञयाग,हवन सब कर देखा पर निराशा ही हाथ लगी। महाराज ! मैं अनेक साधु-संन्यासियों से मिली ,पर वे सारे गलत सिद्ध हुए। किसी ने भी मेरी ईच्छा पूर्ण नही की। अब तो आप ही मेरी शरण हैं !"

सिठानी की आँखों से अनराधार आँसू बहने लगे थे।

साधु ने कहा ," सिठानी ! आप गुमराह हो गई हैं। अतःआपको सफलता नही मिली। हमारे अघोरी(अघोर पंथ के साधुओं के नियमानुसार) सिद्धांत के अनुसार यदि आप एक काम करो तो फौरन आपकी कामना पूरी हो जायेगी। हमारी मान्यता ऐसी है कि यदि आप संतान चाहती हैं तो आप किसी संतान की हत्या कर दें। जिससे उसका जीव वहाँ से छूटकर आपके उदर में गर्भ धारण करेगा। कहिए सिठानी क्या आप ऐसा काम करने के लिए तैयार हैं ?"

सिठानी तो ऐसे कर्म करने के लिए कैसे तत्पर हो सकती हैं भला ?अरे ! वे तो उस साधु के प्रति

नाराज होकर कहने लगीं कि "आप साधु होकर ऐसी क्रूरतापूर्ण बात कह रहे हैं ? आपको शर्म नहीं आ रही,ऐसा कहते हुए।"

हँसते हुए अघोरी ने कहा,"सिठानीजी! यह तो हमारे धर्म की बात है। इसे कहने में शर्म किस बात की? जैसा आपको ठीक लगे वैसा करो। अन्यथा कोई बात नहीं।"ऐसा कहकर वह साधु तो मौज से चल पडा।

कुछ दिन गुजर जाने के बाद माधुरी सिठानी के दिल में सुप्त मातृत्व प्राप्ति की वासना जोर से मचल ऊठी। अब उसने तो अघोरी का सुझाया हुआ टोटका करने का निर्णय किया।

एकबार उसे वैसा मौका मिल भी गया। घर से थोडी दूर एक नाला था। जब वहाँ से गुजर रही थी तब उसने वहाँ एक आठ वर्षीय बच्चा देखा। उसे पीपरमिंट का लालच देकर नाले के नीचे ले गई। पूरा जोर लगाकर उसने उस बच्चे का गला दबा दिया। दो ही मिनट में बच्चे ने तलफ तलफकर अपनी जान गँवा दी। सिठानी वहाँ से चूपचाप निकल ली।

हाय ! उसी रात उसने गर्भ धारण किया। नौ महिने बाद उसके घर बच्चे का जन्म हुआ। लडका पैदा हुआ। सर्वत्र आनंद छा गया। सेठ तो अतिहर्षित होकर सिठानी से कहने लगे ,"देखा न मेरे श्याम का प्रभाव ! उन्होंने हमारी कामना की पूर्ति कैसे कर दी !"

यह शब्द सुनकर सिठानी जी मन ही मन खीझ ऊठी। मन में बोल पडी कि किसका प्रभाव है ! श्याम का या फिर उस अघोरी का। यदि अभी सब कह दिया तो सेठ की श्याम के प्रति जो श्रद्धा है वह टूट जायेगी और शायद सेठ पगला जायेगा। अतः मुझे मौन रहना है। देखेंगे,मौका देखकर बात करेंगे।

समय को बीतते कहाँ देर लगती है ? बरस पर बरस बीतते गये। पाँच दशक व्यतीत हो गये। पुत्र के घर पुत्र का जन्म हुआ। अरे ! उसके घर भी बेटे ने जन्म लिया। परिवार की संख्या पचास की हो गई !

भरे पूरे घर को देख बुढाये हुए सेठ पोपले मुँह से कभी बहुत प्रसन्नता व्यक्त कर रहे थे।

एकबार ये दोनों बूढा और बुढिया झूले पर झूल रहे थे। बच्चों को अपने पैरों में खेलते हुए देखते थे और कभी मौज में आकर गोद में बैठकर आनंद मना रहे बच्चों को देख सेठ ने वृद्धा से कहा कि

,"देखा! कैसा है श्याम का प्रभाव ! पूरा घर खुशियों से भर दिया !"

और...उस समय अवस्था को प्राप्त माधुरी से रहा नही गया। उसे अपनी मौत भी निकट दिखाई दे रही थी। अत उसकी कब से ईच्छा थी कि अब तो घटस्फोट कर ही दिया जाये। अत; उसने फटाक् से बूढे से कहा कि "रहने भी दो, श्याम के प्रभाव की बात। इस सारी जाहोजलाली की मूल वजह तो वह अघोरी साधु है। उसके कहे अनुसार मैंने एक बालक को मार डाला। अतः तुरंत घर में बच्चे ने जन्म लिया ! कब तक मैं आप से श्याम के झूठे प्रभाव की बातें सुनती रहूँगी?"

बूढिया के ये शब्द सुनते ही सेठ तो अवाक् रह गया। उसके मस्तिष्क पर गहरी चोट पहुँची! मन में एक ही विचार चलता रहा कि क्या श्याम बोगस हैं ?अघोरी सही है? श्याम के प्रति मेरी अमाप,अगाध श्रद्धा का क्या ? मुझे इसका सही जवाब कौन देगा?"

सेठ एक ही बात रटते रहे,"श्याम ! तुम्हारे राज्य में अंधेर है अंधेर !"

बूढिया को इस बात का कोई गम ही नही था। उसे तो सही बात सेठ को कह देने का बहुत संतोष था।

एकबार सेठ श्रद्धारहित भाव से श्याम के मंदिर नित्यक्रमानुसार गये। वह वर्षाकाल था। आकाश में घना अँधेरा छाया हुआ था। मंदिर में श्याम के समक्ष पांच-पंद्रह बार सेठ ने वही रट लगाई ,"श्याम तुम्हारे राज में ...."और फिर सेठ तीव्र गति से घर की दिशा में चल पडे। बारिश टूट पडे उससे पहले घर पहुँच जाना चाहते थे।

पर....मात्र अब दस ही कदम की दूरी थी कि भयानक कडाके के साथ बिजली कौंध गई। सेठ के घर पर वह जा गिरी। बिजली ने सारे परिवार को अपनी पकड में लेकर पल मात्र में गायब कर दिया!

सेठ तो पलभर के लिए यह भयानक दृश्य देखते ही रह गये पर दूसरे ही क्षण सबकुछ उनकी समझ में आ गया। वे आनंद से बोल ऊठे"."श्याम ! तेरे राज में देर है देर।"

सेठ को उनकी श्रद्धा वापस मिल गई। जो कुछ बोगस था : बोगस बुनियाद पर निर्मित हुआ था,वह सब विसर्जित हो गया।

26. राखी को पति कितने प्रिय?

उस औरत का नाम राखी था। जामनगर जनपद के हालार क्षेत्र के पडाणा नामक गाँव के जमनादास के साथ उसका विवाह हुआ था। विवाह होने के आठ ही दिन में उसके पति को सेठ के साथ दूर देश समुद्रयात्रा पर जाना हुआ। राखी ने पति को प्यार से बिदा किया। बहुत धीरज रखी। राखी ने इस अवस्था में तीन वर्ष तो बीता कर दिये पर बाद में वह नित्यप्रति घर से निकलकर समुद्रतट पर जाने लगी। जितने भी जहाज वहाँ लंगर दिये जाते थे उनमें अपने पति के आगमन की खोज करने लगी। इस प्रकार पाँच वर्ष बीत गये लेकिन बाद में सास के मना करने से उसने समुद्र तट पर जाना बंद किया पर उसने किसी बडे जहाज के नाखुदा को अपने पति का नाम दे दिया ताकि कोई खैर-खबर मिले।

कुछ ही दिनों में नाखुदा ने घर आकर राखी से कहा कि ,"आपके पति उनके साथियों के साथ कुछ दिन पूर्व विदेश से निकल चुके थे। कुल चालीस लोगों को लेकर जहाज स्वदेश की ओर बढ रहा था पर विदेशी जलडकैतों ने उस जहाज पर हमला करके अपनी गिरफ्त में ले लिया है तथा सोनापुर नगर से कहीं दूरस्थ टापू पर चालीस लोगों को बंदी बनाकर रख लिया है। उन जलदस्युओं ने प्रति व्यक्ति चारहजार रूपयों की मांग की है। मुझे उस टापू का नाम मालूम नही है।"

राखी ने उस नाखुदा का बहुत धन्यवाद मनाते हुए कहा ,"भाई ! प्रिय की जानकारी पाने के लिए इतनी सूचना मेरे लिए पर्याप्त है। आपने मुझ पर बडा उपकार किया है।"

बाद में राखी ने अपने सारे जेवर बेचकर तीन हजार रुपया एकत्र कर लिये। वह सास को लेकर किसी व्यापारी के पास गई। वहाँ से सूद पर एक हजार रूपया लिया। इस प्रकार चार हजार रुपये जमा हो जाने पर उसने सास से कहा कि ,"सासुजी ! अब मुझे मेरे पति अविलम्ब मिल जायेंगे। मुझे इस बात का पूरा भरोसा है क्योंकि चार हजार रुपये जमा हो गये हैं। आप मुझे आशीर्वाद तथा समुद्रपार जाने की आज्ञा दीजिए। सो मैं अपने प्रियतम को यथाशिघ्र वापस ले आऊँ।"

उसे अकेली भेजने के लिए सास मजबूर हुई। वह भी राखी के साथ चल पडी।

दोनों महिलाएँ जहाज द्वारा सोनपुर पहुँच गईं। उनके सद्भाग्यवश वहाँ हालार देश के एक व्यापारी से

भेंट हुई। उसका नाम था रसूल सेठ। सासुजी ने अपनी मातृभाषा में सारी बात सुना दी। राखी ने तो उसके पाँव ही पकड लिये। उसने कहा," यदि आप मुझे एक छोटा टूटा-फूटा सा जहाज देंगे तो हम दोनों औरतें इस समुद्र के सारे द्वीपों पर घूम लेंगी। आप हमें मात्र एक जहाज दीजिए। शेष सारा काम हम करके ही रहेंगी।"

प्रिय पति को पाने का राखी के भरपूर आत्मविश्वास देखकर रसूल सेठ तो दंग रह गया। अपने वतन की यह निर्भीक महिला थी। इस बात का उसे बहुत गौरव हुआ। उसने अपने नौकर हासीम तथा सुंदर जहाज दिये। हासीम हालारी था। अतः वह राखी की भाषा भी जानता –समझता था। इसके उपरांत वह वहाँ के लुटेरों की भाषा भी जनता था। अतः दुभाषिये के काम में वह उत्तम प्रमाणित हो सकता था।

काफी खोज के बाद एक टापू पर से समाचार मिले कि अमुक चौकस टापू में चालीस लोगों को बंदी बनाकर रखा गया है। असह्य भूखमरी के कारण वे सारे लोग सूखकर काँटा हो गये हैं। किसी का भी स्वजन चार हजार रुपये देकर उन्हें छुडाने के लिए कोई गया नहीं है।

राखी और उसकी सास,हासीम के साथ उस टापू पर पहुँच गये। प्रियजन को पाने का धन्य क्षण निकट आ रहा होने की कल्पना से राखी बारबार आनंदविभोर हो जाती थी।

जैसे ही जहाज को लंगरा गया कि जलदस्युओं के चौकीदारों ने हासीम को ललकारा पर हासीम ने स्वस्थता गँवायी नही। उसने सारी बात कही। सहलिगने पर चौकीदारों ने नर्म रूख अपनाया। अपने मालिक को सारी बात बताने पर मालिक ने सबको अपने पास बुलाया।

सुंदर शरीर और कम उम्र वाली राखी को देखकर ऐसे भयानक एकान्त में गरजते हुए टापू में आने के उस औरत के साहस को देख मालिक उस पर प्रसन्न हो गया। हासीम के द्वारा राखी ने अपनी सारी बात उसे बता दी। राखी अपने प्रियतम की खोज में ,सास को लेकर घर से चल पडी है। यह जानकर मानों उस जलदस्यु के मन में बैठा राम मानो जग गया। उसकी भयानक मुखाकृति एकदम कोमल हो गई। उसने तुरंत चलकर चालीस लोगों को तंग कमरे से बाहर निकलवाकर कतारबद्ध खडे रखकर पूछा कि,"बहन! इनमें से तुम्हारा पति कौन है?"

राखी ने खूब ध्यानपूर्वक देखा पर लगभग एक जैसे हो जाने के कारण वह चालीस अस्थिपंजरों में से अपने प्रियतम को खोज नही पायी।

जलदस्यु सरदार ने हासीम से पूछा कि "राखी के पति का नाम क्या है?"

हासीम ने राखी से नाम पूछा तो राखी ने दामन की कोर मुँह पर रखकर लजाते हुए बताया –"जमनादास।"

सरदार ने तुरंत जमनादास का नाम पुकारा। कतार से एक अस्थिपंजर सी काया बाहर आयी। राखी ने अपने प्रियजन के दर्शन किये। उसने दौडकर पति के चरण पकड लिये। एक आँख से स्वजन की अस्वस्थ हुई काया को देख दुःख के आँसू और दूसरी आँख से सद्भागी मिलन जनित हर्षाश्रु बहने लगे।

सभी निस्तब्ध होकर वह दृश्य देखने लगे। पवन भी मानों पलभर के लिए उस दृश्य को देखते हुए स्थिर हो गया ! राखी की सास ने चार हजार रुपये सरदार के समक्ष रख दिये पर सरदार ने उसे लेने से इन्कार कर दिया। उपर से हासीम के मारफत राखी से कहा कि ,"राखी ! तुम मेरी बहन हो। मुझे एक भी रुपया नहीं चाहिए। तुम्हारे प्रियतम के प्रति तुम्हारा प्रेम देखकर मैं आश्चर्यचकित रह गया हूँ। अब तू मुझे यह बता दे कि तुम्हारी और कोई ईच्छा है ? मैं उस ईच्छा को भी पूर्ण कर दूँगा।"

राखीने बताया कि मेरी दूसरी ईच्छा यह है कि इने शेष सारे उनतालीस लोगों को भी आप अभी मुक्त कर दीजिए। मैं उन सबको उनके वतन पहुँचा दूँगी। आपको उनकी पत्नियों तथा माताओं की बहुत दुआएँ मिलेंगी।"

क्षणमात्र में सरदार ने राखी की ईच्छा को पूर्ण कर दिया और बहन राखी को प्यारभरी बिदाई दी।

एक स्त्री को अपना पति प्रिय हो तो उसके विरह में,उसकी खोज में,उससे मिलन में उसके मनोभाव कैसे हों? इसकी हमें इस सत्य घटना से जानकारी मिलती है। बस...ऐसा ही प्यार,प्रिय बने भगवान के भक्त को हो। जिसे भगवान से प्यार हो जाये,वह आत्मा सारे सांसारिक दुःखों को सह सकती है। वस्तुतः उसे उन दुःखों का स्मरण होता ही नही है।

27. थैलेवाले सेठ की प्रभुभक्ति

एक सेठ थे । सद्‌गुरू का योग हुआ । जिनवाणी का अविरत श्रवण होने से उनके जीवन में परमात्म-भक्ति आत्मसात् हुई । वे नित्य अष्टप्रकारी पूजन,उत्तमोत्तम स्वद्रव्यों से करते थे । उसमें खर्च हो रही राशि की तनिक भी चिंता करते नही थे । जिनभक्ति के प्रभाव से वह सुख से अलीन हुए,दु:ख में अदीन हुए। दृढ समकिती हुए ।

सेठ के चार बेटे थे । कुछ वर्ष के उपरांत वे बडे हुए । पिताजी की सोना-चांदी की दुकान सम्हालने योग्य हुए । पिताजी को धर्म के मार्ग पर धन व्यय करते देखकर एकबार ये चारों बेटे इकट्ठा हुए । काफी चर्चा के अंत में निर्णय किया गया कि पिताजी के धर्म-खर्च पर बडी कटौती की जाये ।

दूसरे दिन बडे बेटे ने पितासे कहा कि,"आज तक आप मनस्वी होकर धर्म में –विशेष रूप से जिनपूजा की सामग्री में –पैसे व्यय करते थे पर अब इस विषय में हम आप पर रोक लगाना चाहते हैं । हमें हमारे संसार के लिए विशेष संपत्ति की जरूरत रहती है । ऐसे हालात में यह प्रतिबंध लाये बिना कोई चारा नही है ।"

बडे बेटे की बात सुनते ही सेठ को गहरी ठेस पहुँची । उन्होंने मन ही मन कहा कि "जब मैंने अपने ही बलबूते पर इस दुकान को पूरजोर चलाया है और विपुल लक्ष्मी प्राप्त की है तो आजकल के इन लडकों को उनके धर्मव्यय पर प्रतिबंध रखने का क्या अधिकार है ?" फिरभी कोई बात नही । वे अब काफी बडे हो गये हैं,अत: मुझे उनकी बात सुननी तो होगी ही पर उसके बाद खुमारीदार सेठ ने बडे सवेरे निर्णय किया कि ,"इस प्रकार बंधे हाथ घर में रहने से अच्छा है गृहत्याग ही कर लिया जाये । अपने स्वमान की बलि चढाकर मैं इस घर में एक क्षण भी रह नहीं सकता "और...जब सब गहरी नींद सोये हुए थे तब सेठ ने पहने हुए कपडों में गृहत्याग कर दिया । मात्र दो पैसे लेकर वे वहाँ से चल पडे ।

सेठ ने पीसी हुई मिर्च का व्यापार शुरू किया । स्वयं अपने कंधे पर मिर्ची का थैला ऊठाकर नगर के हर मुहल्ले में संदेश पहुँचाते थे -" मिर्ची लो रे,कोई मिर्ची लो ।"

थैलेवाले सेठ के रूप में यह सेठ अब सारे नगर में मशहूर हो गये । दो पैसों में से एक पैसे का एक

वक्त का खाना और एक पैसे में प्रभुभक्ति ! उसमें जितने भी फूल कायदे से उपलब्ध हों उतने फूल मालिन से सेठ खरीदते थे। वह मालिन कहती थी,"सेठ ! एक वक्त था जब आप एक अंजुरीभर फूल के लिए रोज एक रुपया देते थे, इसके चलते तो मेरा बहुमंजिला मकान हो गया,आज आप एक पैसे में कायदे से जितने फूल मिल सकते हैं,उतने मात्र पांच फूल ही मुझ से लेते हो। यह मुझे जरा भी अच्छा नही लगता।"पर सेठ थे कि वे मालिन की बात को मानते ही नही थे।

सेठ के वस्त्र भी थिगलीदार थे पर इस दशा में सेठ के चित्त की प्रसन्नता और जीवन में शान्ति इतनी तो आह्लादक हो गई कि लाखों का व्यापार और उसके अंगों के पाप हमेशा के लिए छूट जाने से सेठ को बडी राहत हो गई। अमीरी के समय की मस्ती से भी गरीबी के काल की यह मस्ती तो आसमान को छूने लग गई थी।

एक दिन की बात है। अत्यंत आनंद पूर्वक प्रभुभक्ति करके सेठ जिनमंदिर से बाहर निकले कि सामने से एक मुनिराज ने मंदिर में प्रवेश किया। बहुत ध्यानपूर्वक देखने पर पाया कि यह तो एक जमाने के महान सेठ ही हैं ,जिनकी धोती में चार पैबंद लगे हुए थे।

सेठ की यह दशा देखकर दंग हुए पुरानी पहचानवाले मुनिराज ने सेठ से ब्यौरेवार पूछा। सारी बातें कहकर सेठ ने कहा,"मुनिवर ! मेरे इस बाह्य दिखावे की आप तनिक भी चिंता न करें। इससे पूर्व कभी नही थे ऐसे धर्ममय दिन मैं अब गुजारकर धन्यता अनुभव कर रहा हूँ।

फिरभी करुणार्त्त मुनि ने सेठ को एक मंत्र दिया। दूसरे दिन प्रभुभजन के बाद उस मंत्र की एक ही माला का जाप भावविभोर होकर करने से धरणेन्द्र प्रकट हुए और कहने लगे,"माँगो माँगो सेठ ! आप जो मांगेंगे वह मैं दूँगा।"

सेठ मन ही मन हँस दिये क्योंकि सेठ को जो मोक्ष चाहिए था वह देने का सामर्थ्य धरणेन्द्र में नही था। फिरभी सेठ ने कहा ,"मेरी पुष्पपूजा का जो फल मिल सकता हो वह मुझे दीजिए।"

धरणेन्द्र ने कहा,"सेठ ! आप इतनी तो अद्भुत ढंग से परमात्मा की पुष्पपूजा करते हो,उसका अमाप फल देने की मेरी कोई हैसियत नही है।"

सेठ ने कहा,"तो एक दिन की पूष्पपूजा का जो फल बनता हो वह मुझे दीजिए।"

धरणेन्द्र ने कहा "वह भी मेरी हैसियत के बाहर की बात है।" तो एक दिन की पुष्पपूजा में से एक पूष्प की पूजा का फल दीजिए या उसकी मात्र एक पँखुडी का जो फल बनता हो वह दीजिए।"

धरणेन्द्र ने उसमें भी अपनी असमर्थता जताई। तब सेठ ने हँसते हुए कहा ,"धरणेन्द्र ! तो फिर मिथ्या बडाई हाँकने से क्या लाभ ?"शर्मिंदा हुए धरणेन्द्र ने सेठ से कहा ,"आपकी बात सच है। मैं अब जा रहा हूँ।

आपकी संतानें आपके गृहत्याग के बाद क्रमशः व्यवसाय में नुकसान होने से आज की तिथि में वे बरबाद हो गई हैं। यह बात मैं जानता हूँ। वे पुनः धर्ममार्ग पर लौट आये ऐसी आपके मन की ईच्छा का भी मुझे खयाल है।

यह सब लक्ष्य करके मैं आज रात आपको सपने में एक स्थल दिखाऊँगा,जहाँ विपुल धनराशि गडी हुई है। तत्पश्चात् आपको जैसा सुहाये वैसा करना। ऐसा कहकर धरणेन्द्र देव ने बिदा ली। रात में सपने में सेठ को निधान दिखाया।

सुबह प्रभुभक्ति करके धन्य हुए सेठ बेटों के घर गये। घर तो एकदम विरान हो गया था। पुत्रवधुओं के अंग पर एक भी जेवर नही था। पिताजी को आये देखकर, हर तरह से बरबाद हुए और पश्त हिम्मत हुए बेटों ने त्वरा से आकर उनके पैर पकड लिये। उन्होंने रोती हुई आँख से पिताजी के साथ कृत दुर्व्यवहार के लिए क्षमा मांगते हुए कहा,"पिताजी ! आपके जाने से घर से धर्म बिदा हो गया। धन भी गया। हम हर तरह से बेहाल हो गये हैं।"

बेटों ! क्या आप सब अब पुनः धर्ममय जीवन जीने योग्य गम्भीरता लिये हुए हैं तो एक बात बताऊँ। पिता ने प्रश्न किया।

समवेत स्वरों में सम्मति पाकर पिता ने स्वप्नगत निधान दिखाया। विपुल धनराशि प्राप्त हुई। पुत्रों को धर्म की पूर्व महिमा नजरों नजर दिखाई देने से उन्होंने जीवन को धर्ममय बनाया। पिता को पूरे सम्मान के साथ घर लाकर उनकी आजीवन भक्ति की।

28. ''लेकिन भगवान को तुम पर विश्वास हैं।''

उनका नाम था दीनबंधु एण्ड्रुज।

वे दु:खियों के दु:ख तो दूर करते ही थे,पर पापियों के पाप का हरण करने के लिए भी ऐसा ही प्रयत्न करते थे, पीछे पड जाते थे। उन्होंने न जाने कईं लोगों का जीवन सँवार लिया।

एक ही रीति से समझाते थे। शराब,परस्त्रीगमन,क्रोध,चोरी,निंदा,मांसाहार आदि किसी भी दोष को दूर करने के लिए उस दोष से होनेवाले नुकसान की समझ देते थे। विरोधी गुणों के लाभ भी गिनाते थे तथापि वे ऐसे तो पीछे पड जाते थे कि उसको पाप से मुक्त होने पर ही छूटकारा मिलता था।

एकबार एक शराबी दीनबंधु से मिला। उसने शराब की लत के कारण पूरे घर-परिवार को दु:ख,दुर्भाग्य और दारिद्रता से बरबाद कर दिया था।

दीनबंधु ने उसे खूब समझाया,बहुविध रूप से समझाया पर वह शराब छोडने के लिए जरा भी तैयार नही हुआ। उसने कहा कि "मैं शराब के बिना दस मिनट भी जी नहीं सकता। अत: मुझे बख्श दीजिए।"

अंत में उसने ऐसा भी कह दिया कि "जिस भगवान के नाम पर आप मुझे शराब छोडने के लिए कह रहे हैं,उस भगवान में-उसके अस्तित्व में मुझे तनिक भी विश्वास नही है। अत: अब आप यहाँ से रुख्सत लीजिए।"

दीनबंधु ने कहा,"भाई ! तुम्हें भले ही भगवान पर विश्वास न हो लेकिन भगवान को तुम पर विश्वास है। उसका क्या ?"

बस यह वाक्य सुनकर वह कुछ देर के लिए अवाक् रह गया। बंधु के पैर पकडकर बहुत रोया। शराब की लत से वह हमेशा के लिए मुक्त हो गया।

29. संकल्प दृढ़ हो तो फलता ही है

मात्र इक्कीस घरों के छोटे से गाँव में उस तपस्वी मुनिराज ने चातुर्मासिक स्थिरता की थी। एकबार उन्होंने लगातार सोलह उपवास का व्रत किया। पारणे के सत्रहवें दिन भावुक लोग अपने घर भिक्षार्थ ले जाने के लिए खींचातानी करने लगे तब तपस्वी ने कहा,"मैं क्रमशः हरएक घर आऊँगा पर भिक्षा तो वहीं से बोहरूँगा जहाँ मेरा संकल्प पूर्ण होगा।"

सभी इक्कीस घरों में गये पर संकल्पपूर्ति न होने के कारण कुछ भी बहोरे बिना उपाश्रय लौटकर तपस्वी ने उपवास का पच्चक्खाण कर लिया।

अठारहवें दिन भी ऐसा ही हुआ। सभी इक्कीस घरों में मुनिवर पधारे पर वापस लौट गये। पुनः उपवास। ऐसा करते करते उनतीसवें उपवास का दिन आ गया। सारा गाँव-अठारह कौम के लोग चिन्तित हो गये। कमाल तो इस बात का था कि तपस्वी के मुखमण्डल पर जरा भी ग्लानि नजर आती नही थी। वे अति प्रसन्न थे।

आखिरकार उनतीसवाँ दिवस फला। संकल्प पूर्ण हो गया। आज जैन के घर तपस्वी गये। उनके पीछे गाँव के सारे लोग थे। उस घर की कामवाली बाई से घरवालों ने कहा कि "लो,तुम यह दही बोहराओ।" शायद ऐसा ही संकल्प हो और हुआ भी वैसा ही। महाराजश्री ने आज पहलीबार झोली से भिक्षापात्र बाहर निकाला और उस अजैन औरत के हाथों दही बहोरा।

महाराज श्री का यह संकल्प था कि ,"जैन घर में रहकर अजैन स्त्री यदि दही बोहरावे तो ही लेकर मुझे पारणा करना है।"

महाराजश्री के दही बहोरते ही सारे गाँव हर्षित-उल्लसित हो गया। बहनें रास-गरबा करने लगीं,भाई-बंधु सब नाचने लगे। सारे गाँव में जैन-अजैनों ने मिलकर पेडे बाँटे।

"भाई ! मन हो तो मालवा जा सकते हैं। अर्थात् ईच्छा हो तो कुछ भी असम्भव नही। यह कहावत कितनी यथार्थ है!

30. पगला प्रभुभक्त

एक देश में अब्राह्म नामक एक प्रभुभक्त रहता था। वह बहुत धनिक था,उपरांत दयालु था।

एक दिन उसके घर एक गरीब आदमी गया। वह बहुत भूखा था। उसे खाने के लिए बिठाया। वह अतिशय भूखा आदमी तो भोजन पर जैसे टूट ही पडा।

अब्राह्म को यह अच्छा नही लगा। उसने उस भिखारी से कहा,"अरे मूर्ख ! पहले दो मिनट प्रभु का स्मरण तो कर लेते।" भिखारी ने कहा,"आप मेरे साथ भगवान की बात नही करें तो अच्छा। उसीने तो मेरा जीवन बरबाद किया है। मुझे भिखारी बनाकर।"

अब्राह्म को ये शब्द सुनकर बहुत गुस्सा आया। उसने उस भिखारी की ग्रीवा पकडकर भगा दिया। जब अब्राह्म शाम को भगवान के पास गया तब प्रभु से उसने कहा ,"आज तुम्हारे दुश्मन को मैंने गला पकडकर निकाल दिया। एक रात के लिए भी मैंने उसे घर में रहने नही दिया।"

प्रभु ने कहा,"भला ! सारी जिंदगी उसने मुझे गालिप्रदान ही किया है। तब भी मैंने उसे सम्हाले रखा है तो तुम एक रात के लिए भी उसे सम्हाल नही सके? तुमने यह अच्छा काम नही किया !"

31. तानसेन से भी बढ़कर गुरू हरिदास

तानसेन के गुरु हरिदास।

सामान्यत: सच्चा शिष्य तो वही कहलाता है जो गुरुसे भी सवाया सिद्ध होता है और सच्चे गुरु भी वही कहलाते हैं जो ऐसा चाहे और शिष्य से स्पर्द्धा करे तो पराजित हो जाये। उस पराजय को वह शहद से भी मीठा समझे। तानसेन,अलबत्ता, महान गायक थे। अकबर के नौ रत्नों में वे अग्रगण्य थे। दीपक राग गाकर उन्होंने शांत पडे सैंकडों दियों को झगमगा दिये थे। इससे उनके अंग अंग में असह्य

जलन हो ऊठी थी। यह तो अच्छा हुआ कि मेघमल्हार राग गाकर आकाश से बारिश की फुहार करके तानारीरी-दो बहनों ने तानसेन को जीवित बचा लिया था।

अकबर संगीत के भारी शौकिन थे। तानसेन बादशाह की ईच्छापूर्ति के लिए सबकुछ कर गुजरता था। अपने प्राण देकर भी वह गाता था। बादशाह फीदा फीदा हो जाते थे।

एकदा बादशाह ने तानसेन से पूछा कि," भला ! तुमसे बेहतर गायक इस धरती पर शायद कोई नही होगा। क्या यह सही बात है ?" तानसेन ने कहा,"जहाँपनाह ! नही...ऐसा नही है। मेरे प्राणप्रिय गुरुदेव हरिदास की कोई तुलना नही कर सकता।"

"उसकी क्या वजह है ? तुम्हारी गायकी से भी उनकी गायकी बढिया ?" अकबर ने पूछा।

"परवरदिगार ?" तानसेन ने कहा। मैं आपको खुश करने के लिए गाता हूँ। मेरे ये गुरुदेव परमात्मा को खुश करने के लिए गाते हैं। ना...ऐसा भी नही है। परमात्मा कृष्ण का आलम्बन लेकर वे मात्र गाने के लिए गाते हैं।"

"जहाँपनाह ! मैं उनकी क्या बात करूँ? जब वे गाते हैं तब वे मजीरे हाथ में लेकर नृत्य करते हुए गाते हैं। वे योगेश्वर में पूरे लीन हो जाते हैं। वे अपना होश-ओ-हवास भी खो बैठते हैं। कभी कभी तो उनकी आँख से हर्षातिरेक या विरहजन्य रुदन के अश्रु भी बह निकलते हैं।"

तानसेन ने आगे कहा, "ओ बादशाह सलामत ! "मेरे गुरु की स्थिति जब योगेश्वर श्रीकृष्ण से अभेदभाव को प्राप्त करती है, तब तो अमावस की अंधियारी रात में भी सर्वत्र प्रकाश झिलमिलाने लगता है।"

यह सब सुनकर बादशाह तो दंग रह गये। आश्चर्यमूढ हो गये। उनके मन में भक्त हरिदास को ऐसे धन्य क्षणों में देखने की ईच्छा हुई। बादशाह ने अपनी यह भावना तानसेन के समक्ष रखते हुए कहा कि "एकबार भक्त हरिदास को अपने दरबार में ले आओ।"

तानसेन जोर से हंस दिये और उन्होंने कहा ,"बादशाह सलामत ! यह असम्भव है। मेरे गुरुदेव तो परमात्मा की तुलना में आपको नाचीज मानते हैं। आपको प्रसन्न करने की बात को तो वे पसंद ही नहीं करेंगे। यदि हमें उनसे मिलना है तो वृंदावन जाना पडेगा। जिस उपवन में रात्रि के ग्यारह बजे

बाद वे भक्तिरस में झूमते हैं ,वहाँ छिपकर रहना पडता है । यदि उनको जरा सीभी भनक पड जाये तो वे अपनी भक्ति को रोक देंगे और मुझे बुरीतरह से झिडक देंगे । उनके मन यह भक्ति केवल भगवान के लिए है । आप जैसों की खुशामद के लिए नही है ।"

जहाँपनाह ! मैं प्रभुभजन गाकर आपको रिझाने की कोशिश में हूँ । जिससे मुझे बक्षिस के रूप में बडी दौलत मिलेगी । यही कारण है कि मेरे भजनों में स्वरों का विशेष कुवत आ नही रहा ।"

और...एक दिन बादशाह अकबर और तानसेन वृंदावन गये । योगानुयोग जन्माष्टमी का योग था । -श्री कृष्ण का जन्मदिवस । आज तो भक्त हरिदास पूरी तन्मयता के साथ खुलकर भजन करेंगे ही करंगे ! अकबर और तानसेन किसी पेड के सहारे खडे हो गये ।

ठीक रात्रि के ग्यारह बजे मजीरे लेकर हरिदास योगेश्वर के मंदिर गये । अत्यंत भावविभोर होकर परमात्मा को साष्टांग प्रणाम किया ।

बाद में भजन गाने लगे । एक से एक अतिसुंदर,बढिया । बादशाह तो आश्चर्यचकित हो गये।

दो घण्टे बाद भक्तकवि ने हाथ में मजीरे लिये । पैरों में घूंघरु बांधे । राधा के स्वांग में उन्होंने नृत्य शुरू किया । सारा वायुमण्डल निःस्तब्ध हो गया । समग्र सृष्टि में एक ही साँस चल रही हो ऐसा अनुभव किया । भक्त हरिदास की ही ।

जब सुरावलियाँ पराकाष्टा पर पहुँचीं तब सर्वत्र प्रकाशमान हो गया । भक्त की आँखों से अश्रुधार बहने लगी ।

अंत में साष्टांग प्रणाम किये और भारी मन से हरिदास खडे हुए ।

अकबर से रहा नही गया । दौडकर हरिदास को अंक में भर लिया । तानसेन साथ ही था। उसने अकबर की पहचान करायी ।

हरिदास ने कहा,"ठीक है । तानसेन ! तुमने भारी भूल की है । ऐसे संसारी व्यक्ति को तुम फिर कभी ऐसे लाना नही ।"

और हरिदास तेज गति से वहाँ से रवाना हो गये ।

32. भजन से माँ का हृदय परिवर्तन

अरविंदभाई व्यवसाय से डॉक्टर थे परंतु रोज रात्रिवेला में घर में बैठकर एक घण्टा प्रभु भजन गाने का उनका नित्यक्रम था। भावविभोर होकर अरविंदभाई भजन गाते थे।

एक दिन किसी मित्र ने उनसे पूछा कि "आप व्यवसाय से डॉक्टर हैं और ऐसे भजनिक कैसे हो गये ? भजन की ओर बढने में क्या कोई निमित्त हुआ है ?"

अरविंदभाई ने सकारात्मक जवाब देते हुए बात का प्रारम्भ किया।

उन्होंने कहा,"घर में हम चार भाई,बा और बापुजी। बापुजी ठीक ठीक सुखी थे। संसार अच्छी तरह से चल रहा था। जैसे जैसे भाई बडे होते गये ,वैसे वैसे क्रमशः उनके विवाह भी होते गये। घर में पहली भाभी आई। कुछ महिने तो बहुत अच्छे बीते परंतु संसार की रीति के अनुसार,सास-बहू के बीच झगडा शुरू हो गया। मेरी समझ के मुताबिक भाभी से ज्यादा माँ अधिक कसूरवार थी। वह बहुत असहिष्णु हो गई थी।"सास" होने का अभिमान उसकी रग रग में फैल जाने के कारण वह बहुत गाफिल (तानाशाह) हो गई थी।

दूसरे भाई की शादी का समय आया। लोग अपनी बेटी देने से पूर्व बा के असली स्वभाव का विचार करते हुए अपना विचार बदलते गये पर अंततः दूसरी भाभी भी घर में आ गई। अरे...ऐसे ही सब ठीक हो जायेगा" सोचकर तीसरी बहू के रूप में अपनी बेटी को भी किसी दुर्भागी मातापिता ने हमारे घर बिदा किया। भविष्य के गर्भ में उसके लिए क्या हाहाकार मचनेवाला था उसकी किसी को जरा सी भी भनक नही थी।

मेरी तीसरी भाभी अमीर घर की होने के कारण तन से और मन से अत्यंत कोमल थी। भगवान ने उसे रूप –सौंदर्य देने में कोई कसर नहीं छोडी थी। इस बात को लेकर हमारे तीसरे भाई के पुण्यबल का हम सब भरपेट बखान करते थे।

पर यह सब बा के लिए ऊलटा हो गया। बा दो भाभियों के साथ तो रोज झगडा करती थी पर तीसरी भाभी के प्रति तो वह आग हो जाती थी। एकाध महिना बीता नही बीता और इस भाभी के प्रति

अधिकाधिक कहर बरसना शुरू हो गया।

मेरे तीनों बडे भाइयों ने माँ को बहुत समझाया पर बा समझ ही नही रही थी। उसमें कोई परिवर्तन नही आया। उसका स्वभाव उग्र से उग्रतर होता गया।

इस स्थिति में मैंने मन ही मन निर्णय कर लिया कि मुझे कभी शादी करनी ही नही है। क्यों किसी मुग्धा का जीवन बरबाद किया जाये ?

मेरे भाई,मित्र,स्वजन मुझे शादी करने के लिए बहुत समझाने लगे। मैंने तो मौन के रूप में सब को जवाब दे दिया। एक दिन घर में ऐसी घटना घटी कि मैंने आजीवन अविवाहित रहने का भीष्म संकल्प कर लिया।

घटना कुछ ऐसी घटी। बा को तीसरी भाभी से ज्यादा ईर्ष्याभाव था। एक दिन दोपहर तीन बजे भाभी ने चाय बनाने के लिए कहा। भाभी ने रसोई में जाकर स्टोव जलाया। उस पर पतीली रखी। वहाँ बैठी भाभी जिंदगी के विषाक्त हो जाने के विषय में विचार करते हुए बैठी थी।

और...एकदम बा रसोई में चली गई। भाभी को जोर से आग की ज्वालाओं के हवाले कर दिया। देखते ही देखते भाभी जल गई।

उसी क्षण मैं दुकान से घर आ गया था। अभी तो मैंने दहलीज पर पाँव धरा ही था कि मैंने बा को दौडते हुए और भाभी को ज्वाला में झोंकते हुए देख लिया।

मेरे लिए यह दृश्य असह्य था। मैं अवाक् रह गया। मैं अपना कर्तव्य भूल गया और सीधा भाग खडा हुआ। बा को इस बात की भनक भी नही हुई कि बेटा अरविंद इस करुण घटना का साक्षी हुआ है।

भाभी बहुत पीडित होकर दो दिन में अस्पताल में मृत्यु को प्राप्त हो गई। डाईंग डेक्लेरेशन में भाभी ने जरा भी बा पर आरोप नही लगाया और स्वयं जल जाने का निवेदन किया।

दोस्त! भाभी की यह खानदानी देखकर बा को गहरा सदमा पहूँचा। अपनी नीचता के प्रति उसे नफरत हो गई पर अब क्या फायदा ? पाप घोषित (स्वीकार) करने का उसमें साहस नही था।

उन दिनों मेरा मन भी इस घटना से अत्यंत अस्वस्थ हो गया। अपने भजनिक मित्र को मैं रोज

अपने घर बुलाने लगा। वह मुझे प्रभुभक्ति के गीत श्रवण कराता था कि मेरा मन कुछ शांत हो।

एक दिन मैंने भजन सुनते हुए बा की आँखों में आँसू देखे। मैंने कहा-"बा ! तुम क्यों रो रही हो ?"

बा ने कहा मूर्ख ! तुम भी इस तरह भजन गाना सीख लो ना। फिर मुझे तीनसौ साठ दिन भजन सुनाते रहना। मेरे मन को बहुत शान्ति मिलती है।"

मेरी समझ में आ गया कि बा उस क्रूर पाप के कारण पश्चाताप वश सर्वांग जल रही है। लगता है ये भजन उस आग को शांत करने का काम करते हैं।

दोस्त ! तब से मैंने भजन में रुचि दिखाना शुरू किया। भजन गाना सीख लिया। बा रोज भजन सुनती है और वह अपने पाप को पश्चाताप की पावक ज्वाला से जला रही है।

दोस्त ! पाप तो सब लोग करते हैं पर मेरी बा जैसा पश्चाताप तो कोई विरला ही करता है ! यही है डॉक्टर के व्यवसाय में भजनिक बनने का मेरा कारण।

"हा प्रायश्चित! विपुल झरना स्वर्ग से उतरा है।
पापी उसमें डूबकी देकर पुण्यशाली बनता है।"

33. परमात्माभक्ति का तात्कालिक चमत्कार

मुम्बई के शाह सौदागर सेठ मोतीशा।

एकबार चार घोडों की बग्गी में राजमार्ग से कहीं जा रहे थे।

रास्ते में एक गाय को घसिटकर ले जाते हुए कसाई को देखा।

सेठ ,जीवदया का जीव।

तुरंत चौकीदार को आदेश दिया कि गाय को छूडवा लो।

चौकीदार ने कसाई को समझाया। जो मरजी रुपया देने की तत्परता दिखाई ,पर कसाई मानने

से रहा। सेठ को सारी बात बतायी गई। आदेश मिला कि दाम से यदि वह नही मानता है तो अब दम भिडाओ।

चौकीदार पुनः कसाई से मिला। डराया,धमकाया ,नही माना। जोर से दो मुक्के कसाई के पेट पर मार दिये।

कमनसीबी से कसाई जमीन पर जा गिरा। कुछ ही क्षणों में वह मर गया।

कोर्ट में केस चला। सेठ ने गुनाह कबूल करने के लिए कहा। झूठ बोलने से साफ इन्कार कर दिया।

चौकीदार को फांसी की सजा हुई।

दूसरे दिन सेठ न्यायाधीश से मिले। उन्होंने कहा कि "आप जो सजा करना चाहें मुझे कीजिए। मेरा नौकर निर्दोष है। उसने मेरे आदेश का पालन किया है।"

न्यायाधीश ने सेठ को फांसी की सजा घोषित की।

मुम्बई के मुम्बादेवी क्षेत्र में उस समय फांसी का मचान खडा किया जाता था और खुले में फांसी दी जाती थी। सेठ को फांसी के मचान पर लाने के बाद उनकी आखिरी ईच्छा पूछी गई।

सेठ ने कहा "भायखला के अपने जिनालय में मैं पूजा करना चाहता हूँ।"

सेठ को पूजा करने के लिए जाने दिया गया। आज मानवजीवन का आखिरी दिवस था। आखिरी पूजा थी। अतः सेठ ने अत्यंत भावविभोर होकर अष्टप्रकारी पूजा की। प्रभु के समक्ष चामरनृत्य किया। खूब नर्तन किया। अत्यंत प्रसन्नता के साथ नाचे।

यथासमय सेठ फांसी के मचान पर उपस्थित हो गये। न्यायाधीश ने आदेश दिया कि "सेठ को फांसी दे दो।"

जल्लाद ने आदेश का पालन किया पर यह क्या ? मचान टूट गया। सजा तो मचान पर चडाने की थी ,वह तो पूरी हो गई। सेठ मुक्त हो गये।

यह समाचार ब्रिटन के ताज (महारानी विक्टोरिया) को पहुँचाये गये। उन्होंने पुनः फांसी देने का

हूक्म दिया। पुनः आखिरी भावपूजा हुई। पुनः मचान टूटा।

तीसरी बार भी ऐसा ही हुआ।

विक्टोरिया ने बताया कि "यह कोई प्रभु का प्रिय मनुष्य लगता है। अतः अब उसे फांसी की सजा से मुक्त कर दिया जाये और उससे पूछा जाये कि उसकी क्या ईच्छा है? वह जैसा कहे वैसा करो।"

सेठ से बात होने पर सेठ ने कहा,"मेरी तो यह ईच्छा है कि मुम्बादेवी के मचान पर जिसे फांसी दी जाये,उस समय यदि मैं वहाँ से गुजरूँ और कहूँ कि इस आदमी को छोड दीजिए,तो आपको उसे तुरंत छोडना होगा।"

ब्रिटन के ताज ने उस बात का स्वीकार कर लिया। कुछ ही दिन बाद फांसी देने का प्रसंग आया। वह चौबीस वर्षीय युवा था। घर में भीषण गरीबी और भूखमरी के कारण धन पाने के लिए उसने किसी के घर लूट चलाई थी। मालिक ने मुकाबला किया तो उस युवक ने उसके पेट में चाकू उतारकर उसकी हत्या कर दी थी।

घर के एकमात्र बेटे को फांसी की सजा होने के कारण घरभर में रुदन छा गया। किसी के कहने पर उस युवक की माँ सेठ मोतीशा के पास गई। सेठ को सारी बात से अवगत किया किया। सेठ ने कहा,"मैया! बेफिक्र रहिए। आपका बेटा सो मेरा बेटा। इतने में आप समझ जाइए।"

युवक को जिस समय फांसी दी जानी थी,उसकी सारी तैयारियाँ पूर्ण हो गई। उस वक्त सेठ वहाँ हाजिर हुए। उन्होंने युवक को सजा से मुक्त कर देने की बात की।अत; उसे फांसी की सजा से मुक्त कर दिया गया।

उसके बाद तो फांसी की जितनी भी घटनाएँ होती थीं उन सब में सेठ बीचबिचौवल करते थे।अपने "वीटो" का प्रयोग करते थे। सब को फांसी की सजा से छुडा लेते थे।

ऐसा होने पर समस्त पुलिस महकमे में होहल्ला मच गया।

आखिरकार ताज के आदेश से फांसी देने की जगह बदल दी गई,जिससे सेठ का विटो वहाँ तक अमली न हो सके।

34. भगवान मिल गये अब और क्या चाहिए?

बरगद के नीचे एक भिखारी बैठा था। बाहर से भिखारी पर उसकी भितरी अमीरात तो अद्‌भुत थी।

उसकी गोद में एक बहुपृष्ठिय पुस्तक पडी थी। उस पुस्तक के लगभग चारसौ पन्ने थे। एकदम चूप्पी साधे हुए और गम्भीरतापूर्वक बारबार वह पन्ने पलटता था।

पर एकाएक वह हंस देता था,खूब तालियाँ बजाने लगता था।

पुनः पन्ने पलटने लगता था और ऐसा ही मौन और मुख पर गम्भीरता ओढ लेता था।

जिन्होंने भारतीय जनमानस में "हरिबोल" मंत्र की धून का चारोंओर प्रचार-प्रसार करके लोगों को प्रभुभक्त बनाया,धून के समय जिनकी आँखों से भक्तिभाव के आँसू बरसते हों,ऐसे चैतन्य महाप्रभु उस बरगद के पास होकर जा रहे थे।

उस भिखारी की विचित्र दशा को देखकर वे कुछ समय के लिए वहाँ रुक गये। बारंबार उसकी हास्यमयी स्थिति को देखकर महाप्रभु को आश्चर्य अनुभव हुआ।

मन में जिज्ञासा जगने पर उससे प्रश्न किया कि,"भाई ! तुम ऐसा क्यों कर रहे हो? तुम एकाएक बहुत जोर से क्यों हंसने लगते हो ?"

भिखारी ने अपनी पुस्तक महाप्रभु को दी। उसमें उन्होंने देखा कि मात्र २९९ नम्बर के पृष्ठ पर बडे अक्षरों में "राम" लिखा था। शेष सारे पृष्ठ कोरे थे।

महाप्रभु समझ गये कि "राम"नाम वाला पृष्ठ पढकर वह अतिहर्षित हो जाता था।

उन्होंने भिखारी से पूछा कि "अरे ! शेष सारे पृष्ठ क्यों कोरे हैं ?"

जवाब मिला,"मुझे तो उस पृष्ठ पर "राम" मिल गये। मैं उसीसे तृप्त हो गया हूँ। अन्य पृष्ठों की मुझे कोई चिंता नही है।"

35. नरसिंह मेहता ने कुलोच्छेद मांगा

भक्तों में कहा जाता है कि,"भगवान से जो मांगा जाये वह मिलता है। मोक्ष मांगा जाये तो मोक्ष मिलता है।"

जूनागढ के भक्त नरसिंह मेहता ने कहीं गाया है –

हरि के भक्त मोक्ष न माँगे

मांगे जन्मोजन्म अवतार रे।"

भक्तों को प्रभुभक्ति इतनी प्रिय होती है कि वे मोक्ष भी नही चाहते। यदि संसार में प्रभुभक्ति मिलती हो,माँ के उदर में नौ महिने की काली कैद सी सजा भुगतने के बाद मिलती हो, प्रसूति के समय की भयंकर पीडा सहन करने के बाद मिलती हो तो भी भक्त सब कुछ सहकर भी प्रभुभक्ति ही चाहते हैं।

अफसोस ! ऐसा कहनेवाले मेहता ने प्रभु से क्या मांगा ?

उन्होंने अपना कुलोच्छेद मांगा।

अपनी पत्नी अभी भी माँ हो सके ऐसी अवस्था में थी।

बिटिया को अभी अभी ससुराल बिदा किया था। आराम से उसकी गोद भराई हो सकती थी। घर में एक पुत्र था। हाय! मेहता ने कुलोच्छेद मांगा और कुछ ही समय में वह मिल गया।

पत्नी अचानक वैकुण्ठबासी हो गईं। बेटी ससुराल में विधवा हुई। घर में अपने बेटे का देहावसान हो गया।

सत्य ही कुलोच्छेद हो गया। मेहता ने ऐसा क्यों मांगा होगा ! इसका जवाब यह है कि "दु:खों के बीच पीसे जानेवालों को प्रभु से साक्षात्कार शिघ्रता होता है।"

साक्षात्कार को दु:ख से प्रगाढ मैत्री है। सुख से तो भयंकर अनबन है।

अब बताइए कि जीवन में क्या अच्छा दु:ख ? या सुख ?

36. नाम की महिमा

हिरण्याकशिपु नामक राजा। अति क्रूर,भयानक,अति घातकी और सर्वथा नास्तिक। भूल से भी भगवान का नाम स्मरण न करे ,सपने में भी नही।

राजा को रानी थी। उसका नाम था क्याधु। राजा एक छोर पर था तो यह रानी एकदम ऊल्टे छोर पर थी। वह बहुत धार्मिक थी। प्रभुभक्त थी। गुणागार थी। कभी उसका पति भगवान का नाम स्मरण करे नही,यह बात उसे अत्यंत नापसंद थी।

एकबार रानी सगर्भा हुई। अपनी गर्भस्थ संतान को किसी परमात्मा का नाम बारबार सुनाये तो उसके प्रभाव से संतान महान होगी ऐसी उसकी कल्पना थी।

एकबार राजा बन में घूमने के लिए गया। किसी नयनरम्य स्थान को देखकर उसने एक वृक्ष के नीचे अपना डेरा डाला।

वृक्ष पर तोता था। वह अनवरत रूप से "नारायण...नारायण" बोलता जा रहा था। राजा त्रस्त हो गया। बारबार उसे पत्थर मारकर उडाया, पर पुनः पुनः वह वहाँ आ जाता था। नारायण.. नारायण बोलता रहता था।

शाम को महल में आकर राजा ने रानी से कहा कि एक तोता सारा समय नारायण.. नारायण बोलता रहता था।

क्याधु को इस बात को सुनने में बडा आनंद आया क्योंकि उससे उसके गर्भस्थ जीव को प्रभु का नाम सुनने को मिला। इस प्रकार उसकी इच्छा पूरी होती थी।

क्याधु बारबार राजा से पूछने लगी कि,"मुझे बताइए कि वह तोता क्या बोलता रहता था।"राजा पुनः कहता था कि वह नारायण...नारायण बोलता था।"

कहा जाता है कि इस प्रकार गर्भस्थ बालक को प्रभुनाम अविरत सुनने को मिलने से उस शिशु की आत्मा महान हो गई।

हाँ ,वह आत्मा अर्थात् प्रह्लाद।

37. राम की सौंगध से मेरी आबरू बच गई।

लंका की महारानी महासती मंदोदरी को खबर हुई कि रामनाम के साथ फेके गये पत्थर समुद्र में तैर रहे हैं और बडा सेतु बन गया है।

तब उसने सोचा कि क्या राम ही महान हैं ? मेरे पति रावण महान नही हैं? यदि वे राम सदृश महान हैं तो उनके नाम से पत्थर क्यों नहीं तैरते ?

उसने रावण से यह बात कहकर समुद्र में पत्थर डालने के लिए कहा। पहले तो रावण ने ऐसा करने से इन्कार किया।

उसने कहा ,"कहाँ राम और कहाँ मैं ? तुम्हारी यह जिद अनुचित है। यदि मेरा नाम लेकर पत्थर डालोगी तो अवश्य डूब जायेंगे और मेरी तो अपकीर्ति हो जायेगी।"

पर मंदोदरी मानी नही। उसने रावण को उस काम केलिए प्रेरित किया।

अंततः रावण अपना नाम लेकर समुद्र में पत्थर डालने के लिए तत्पर हुआ। लंका के सहस्त्रों प्रजाजन उस समय कुतूहलवश हाजिर हो गये।

मंदोदरी ने जब रावण से पत्थर डालने के लिए कहा कि रावण ने तुरंत बडा पत्थर समुद्र में डाला। तब सब चिन्तित थे। सब से ज्यादा डरा हुआ तो रावण था कि अब क्या होगा?

पर पत्थर तो तैरता ही रहा।

उस वक्त प्रजाजनों ने रावण का प्रचण्ड जयघोष किया। मंदोदरी का हर्ष भी उसके हृदय में समा नही रहा था।

राजमहल लौटने के बाद कुछ हल्के पलों में मंदोदरी ने कहा ,"स्वामीनाथ ! अब तो मेरा दृढ निर्धार हो गया है कि राम ही महान हैं। क्योंकि मैंने मन ही मन कहा था कि,"हे पत्थर ! यदि तुम तैरे नही तो तुम्हें राम की सौगंध है।"

बेचारा रावण! अब क्या कहता ?

38. सच्चे दिल से किये गये तप-जप फलते ही हैं।

१९४२ के वर्ष की आजादी के जंग के समय की यह सत्य घटना है।

उत्तरसंडा के पास की रेल पटरियों को कुछ असामाजिक तत्वों ने उखाड फेंका।

अंग्रेज सरकार ने गाँव के बीस लोगों पर गुनाह दाखिल करके जैल में बंद कर दिया।

उनमें एक जैन बंधु था।

नवपद की ओळी के दिन थे। अतः उसे आयम्बिल तप की आराधना करनी थी। जैलर ने उसके लिए भोजन की व्यवस्था करवा दी।

नौवें दिन कोर्ट में केस चला। जैन भाई ने कहा कि "उपद्रव के दिन मैं अहमदाबाद में था। "एतद्सम्बंधित प्रमाणों में जज को विश्वास प्रतीत हुआ। अतः उसे अकेले को ही निर्दोष करार देकर कारा मुक्त किया।

शेष उन्नीस लोगों को इसमें आयंबिल तप का चमत्कार अनुभव हुआ। दूसरे दिन से उन्होंने आयम्बिल तप तो किया। अजैन होते हुए भी उनके परिवार के स्वजनों ने भी आयम्बिल तप की आराधना विधिपूर्वक शुरू की।

दूसरी ओर,निर्दोष प्रमाणित हो कारा मुक्त हुए जैन बंधु ने अपनी सारी पहुँच का उपयोग कर उन्नीस निर्दोष भाइयों को मुक्त कराने का जोरदार यत्न शुरू कर किया।

आयम्बिल तप के अठारह दिन पूरे हुए। १९वें दिन कोर्ट में केस चला। जज ने सभी उन्नीस लोगों को निर्दोष घोषित कर मुक्त कर दिया।

यह हवा (खबर) नरसंडा तथा उत्तरसंडा के अजैनों में सर्वत्र फैल गई।

सब के मन में जैनों के आयम्बिल तप के प्रति जबरदस्त श्रद्धा बैठ गई। तत्पश्चात् नवपदजी के नौ दिनों की ओळी के नौ दिनों में अनेक अजैन भाई-बहन,आयम्बिल-तप करने लगे।

पूर्ण श्रद्धा से किया गया तप फलित हुए बिना रहता नही।

39. राम के मिल जाने के बाद और क्या चाहिए

रास्ते पर से चैतन्य महाप्रभु (हरिबोल धूनवाले) गुजर रहे थे। किसी घटादार वृक्ष के नीचे उन्होंने एक भिखारी को बैठे हुए देखा।

उसकी गोद में एक पुस्तक थी। वह उसके पन्ने फटाफट फिराता जा रहा था। एकाएक कोई पन्ना आया। उसमें कुछ पढकर जोर -जोर से तालियाँ बजाने लगा। पुनः शेष पृष्ठ फटाफट फिराने लगा।

यह देखकर महाप्रभु के मन में कौतूहल जगा और वहाँ खडे हो गये। भिखारी बारबार पुस्तक के सारे पृष्ठों को फटाफट फिराने लगता और बीचवाले एक ही पन्ने पर रूककर पूर्ववत् सब करता था। पुनः बचे सारे पन्नों को फटाफट फिरा लेता था।

उसने ऐसा चार-पाँच बार किया। अतः महाप्रभु ने उसके पास से वह पुस्तक देखने के लिए ली।उसमें उन्होंने देखा कि पुस्तक के सारे पृष्ठ कोरे थे। मात्र एक ही पृष्ठ ऐसा ता जिस पर बडे अक्षरों में "श्रीराम" लिखा था।

महाप्रभु ने भिखारी से पूछा कि "भाई ! एक ही पन्ने पर आपको श्रीराम पढने तथा देखने को मिलता है,पर शेष सारी पुस्तक तो कोरी है !"

भिखारी ने कहा ,यदि कहीं भी "राम" मिल गये तो भले ही शेष सारा खाली रहा। हमें वहाँ से और चाहिए भी क्या ?"

यह बात सुनकर चैतन्य महाप्रभु भिखारी पर बहुत प्रसन्न हुए।

40. प्रभु! पधारो, मन मंदिर में

एक दिवस लम्बी साधना पूर्ण हुई। तुलसीदासजी द्वारा प्रारम्भित रामचरित मानस महाकाव्य की पूर्णाहुति आज हुई। आज उन्होंने कलम को विराम दिया।

रात हुई। मध्यरात्रिवेला में स्वप्न में भगवान राम ने दर्शन दिये ! तुलसीदासजी बिछौने पर से हक्केबक्के से होकर बैठ गये। आँखों के समक्ष साक्षात् राम खडे थे। उनके दर्शन करके भावविभोर होते हुए तुलसीदास भावुक होकर रोने लगे।

राम ने उनसे कहा," तुलसी ! तुमने आज मेरे जीवनचरित्र का विराट महाकाव्य पूर्ण किया है। मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हें जो वरदान चाहिए मांग लो।"

तुलसीदास ने कहा,"हे मेरे नाथ ! वह रावण चाहता नही था कि लंका नगरी में आपका प्रवेश हो तथापि आपने तो प्रवेश कर ही लिया।

अरे प्रवेश तो किया पर बाद में रावण का वध भी कर डाला।"

"अब मेरी बात सुनिये। मेरे अंतर में बैठा काम कभी चाहेगा नही कि वहाँ राम प्रवेश करे पर मेरी यह नम्र बिनति है कि मेरे आराध्यपाद राम मेरे अंतर में जबरन प्रवेश करे और वहाँ बैठे काम को खत्म कर दे।"

सम्भव हो तो उस शयतान को भगाकर भगवान को बैठायें .... शयतान को भाग खडे हुए बिना कोई चारा नही है।

41. कर्ण और अर्जुन-एक हारा: एक जीता

महाभारत के युद्ध के १८ दिनों में शेष दो दिनों में कौरवों ने अपने सेनापति के रूप में कर्ण की नियुक्ति की। मद्रराज की नियुक्ति सारथि के रूप में हुई।

सेनापति कर्ण ने दुर्योधन से कहा "वैसे तो मैं अर्जुन से दुगुना बढकर हूँ। शक्ति और साधन से परंतु अर्जुन मुझ से एक बात में बढकर है-सारथि को लेकर। उसे अजोड सारथि के रूप में श्रीकृष्ण मिले हैं।"

कर्ण के सारथि शल्य हैं।

अर्जुन के सारथि श्रीकृष्ण हैं।

दोनों सारथियों के मध्य एक बात जानने योग्य है।

कर्ण,सारथि शल्य से लगातार एक ही बात कह रहे हैं,चलो...चलो...चलो।

याहि याहि याहि।

बस,इस तरह कर्ण हूक्म ही देते रहते हैं।

अर्जुन सारथि कृष्ण से कहते हैं,"आपको जैसी ठीक लगे युद्ध की व्यूहरचना कीजिए। आप जो भी करेंगे वह मुझे कुबूल है। यथा वा रोचते तव। आपको जहाँ ठीक लगे रथ को ले जाइए। मुझे तो केवल तीर ही चलाने हैं।

कर्ण ने सत्ता को हाथ में रखा।

अर्जुन ने सत्ता कृष्ण को सौंपी।

हमारे जीवनरथ के सारथि भगवान को, अर्जुनकी तरह सारी सत्ता सौंप दें तो कैसी शान्ति मिले ? कैसी ज्वलंत विजय प्राप्त हो ?

42. जो दास बन सकता है, वही वीर हो सकता है

शिवाजी के गुरू ,समर्थ रामदासस्वामी।

वे हनुमानजी की दो प्रकार की मूर्तियाँ बनाते थे।

दास हनुमान की और वीर हनुमान की।

राम की सेवा करनेवाले हनुमान -दास हनुमान। रण में शौर्य दिखानेवाले हनुमान- वीर हनुमान।

एकबार किसी बालक को वे दो मूर्तियाँ दिखाकर रामदासस्वामी ने उससे पूछा,"बेटा ! तुम्हें कौन से हनुमान अच्छे लगते हैं ?"

हुशियार बालक ने तुरंत कहा : "मुझे तो पहले हनुमान अच्छे लगते हैं,बाद में दूसरे हनुमान अच्छे लगते हैं क्योंकि हनुमानजी ने प्रभु को दास्यभक्ति से खूब रिझाया। इस तरह वे प्रभु के विशेष दास हुए। दासत्व की इस शक्ति से उनमें शौर्य उत्पन्न हुआ। अत:वे वीर हनुमान हुए।

दास्यभाव से राम को जीतनेवाले हनुमान -दास हनुमान हैं। शौर्यभाव से रावण को जीत लेने से हनुमान- वीर हनुमान स्वरूप में हैं।

एक स्वरूप नींव है,दूसरा स्वरूप इमारत है।

एक अंकुर है,दूसरा फल है।

जो व्यक्ति सही अर्थ में दास बने,वही सच्चे अर्थ में वीर होता है।

सच्चा वीर वही है जो किसी का पूरा दास है।

दासपद को प्राप्त करना पडता है।

वीरपद स्वयं आकर चरणों में स्थान पाता है।

43. घर दहेरासर(गृह चैत्यालय) तो अनिवार्य है

कुरुक्षेत्र का अठारह दिन का युद्ध समाप्त हुआ।

सारथि श्रीकृष्ण अर्जुन सहित रथ को शिविर की दिशा में ले गये। रथ का नाम नंदिघोष था। रथ से रोज पहले श्रीकृष्ण उतरते थे पर आज श्रीकृष्ण नही उतरे। उन्होंने अर्जुन को पहले उतरने के लिए कहा। यह भेद अर्जुन की समझ में नही आया। वह नीचे उतरे। बाद में श्रीकृष्ण उतरे।

जैसे ही कृष्ण नीचे उतरे रथ धधकती हुई आग में भस्म हो गया।

अर्जुन की समझ में कुछ नही आया। उसने कृष्ण को रहस्य अनावृत्त करने के लिए कहा।

कृष्ण ने कहा," अर्जुन !

अठारह दिवस के युद्धकाल में इस रथ को अग्नयास्त्र आदि अनेक बाण लगे हुए थे।

अत: रथ अंदर में तो सर्वत्र जल ही रहा था परंतु रथ में मेरा अस्तित्व होने के कारण वह पूर्णतया जल नही सकता था। आज युद्ध समाप्त हुआ। अत; मेरे उतरने के बाद रथ जल गया। यदि आज मैं पहले उतरा होता तो तुरंत रथ ज्वाला ग्रसित हो जाता और उसमें तुम भी खाक हो जाते। इसी लिए मैंने आज तुम्हें पहले उतार दिया।"

जिस घर में भगवान (गृह चैत्यालय) होगा वे घर जमानेवाद के अगन गोलों की वर्षा में भी जलेंगे नही। जहाँ भगवान का अस्तित्व होगा वहाँ किसी भी प्रकार की कठिनाइयाँ या दु:ख या दोष नहीं फटकेंगे।

44. एकाग्रता तो ऐसी होनी चाहिए

एडिसन ,अपने जमाने का बहुत बडा विज्ञानी । जब वह प्रयोगशाला में प्रवेश कर ले ,प्रयोग शुरू कर दे ,तत्पश्चात् वह उसमें इतना तो तन्मय हो जाता था कि उसे अपनी देह का भी होश नही रहता था।

एक दिवस की बात है । किसी प्रयोग के लिए उसने बैठक जमा दी । धीर धीरे वह उसमें तन्मय हो गया ।

तब उसके पास उसका एक मित्र गया । एडिसन को तन्मय देखकर दूर पडी कुर्सी पर चूपचाप बैठा रहा । कुछ देर बाद एडिसन का नौकर एडिसन के लिए भोजन की थाली टेबल पर रखकर चला गया ।

वहाँ बैठे मित्र के मन में विचार आया कि ,"जब मुझे कडाके की भूख लगी है तो चलो ,इस थाली में परोसे खाने को मैं हीं खा लेता हूँ । बाद की बात बाद में सोची जायेगी ।"

ऐसा सोचकर मित्र ने सारा भोजन खा लिया । थाली को वैसी की वैसी हालत में छोड दिया ।

कुछ देर बाद एडिसन प्रयोग से मुक्त हुआ । ऊठा । मित्र को देखा । उसके पास गया । खाली पडी हुई भोजन की वह थाली नजर आयी ।

उसने मित्र से कहा,"अरे दोस्त! तुम जरा देर से आये । मैंने अभी अभी भोजन किया है । देखो ,थाली खाली पडी है ना ! मैं तुम्हें खिला नही सका । अत: मुझे बहुत दु:ख हो रहा है ।"

मित्र तो आश्चर्यचकित हो गया ।

अपने मित्र के लिए उसके दिल में आदरभाव जगा कि "यह तो कैसा आदमी हैं कि प्रयोग की धून में उसे यह भी खबर नही कि उसने भोजन किया ही नही ,फिरभी खा लिया है ऐसा मान रहा है ।"

45. मीरा को गिरधर के बिना कुछ भी स्वीकार्य नहीं

"मीरा पग घुँघरू बांध... नाची....नाची...."

मीरा द्वारा रचित पद की पंक्ति के अनुसार,पैरों में पायल बांधकर एकबार गिरधर के समक्ष मुक्त मनसे नाच रही थी।

उस समय गुप्त वेश में बादशाह अकबर उसकी प्रभुभक्ति को देखने के लिए आकर चूपचाप एक कोने में खडा हो गया।

बात यूँ हुई थी कि अकबर ने बिरबल से सवाल किया कि "हम सब को प्रभु प्रिय हैं,पर प्रभु को कौन प्रिय है ?"

बिरबल ने जवाब देते हुए कहा कि "प्रभु को मीरां प्रिय है।" बस इन शब्दों पर अकबर प्रभु को प्यारी मीरा की प्रभुभक्ति को देखने के लिए मंदिर आकर छिपकर खडा रह गये।

जब नृत्य समाप्त हुआ तब अकबर से रहा नही गया। दौडकर मीरा के गले में लाखों रुपयों का हार डाल दिया।

मीरा ने बादशाह को पहचान लिया पर उसकी परवाह किये बिना वह उस हार को लेकर दौडी और गिरधर के गले में उसे डाल दिया।

यह देखकर अकबर तो दंग रह गया।

बेचारा अकबर ! उसे कहाँ मालूम था कि प्रभु के भक्त प्रभु को पाकर इतने तो तृप्त होते हैं:तृप्ति जनित प्रसन्नता का इतना आनंद लेते हैं कि दुनिया की किसी भी कीमती वस्तु की उन्हें इच्छा रहती नही।

जो प्रभु का भक्त,वह सुख से विरक्त और सुख से समाधिस्थ।

46. प्रभुभक्त कवि भूषण(भूखण)

बादशाह अकबर के समकालीन कवि भूखण (भूषण) ।

वह परमात्मा के परम भक्त थे ।

भक्ति का लक्षण परम तृप्ति और चित्त की प्रसन्नता है । उनमें वह सब रसबस गया था ।

वे किसी चीज की जरूरत अनुभव करते नही थे ।

प्रभु मिले तो सबकुछ मिल गया । यह उनका विचार था ।

वे एक दिन खाने की थाली में मुख देखकर कपार पर तिलक कर रहे थे । उसी वक्त प्रभु के उस भक्त की तरह तरह की बातें सुनकर बादशाह अकबर उनके दर्शनार्थ आया था ।

थाली के सहारे मुख देखकर तिलक कर रहे कविराज को देखकर अकबर को लगा कि वे भयानक गरीबी के शिकार हैं । अतः उनके पास आईना भी नही है ।

दूसरे दिन दूत के साथ अकबर ने आईना भिजवाया ।

प्रभुभक्त ने उसे सादर लौटा दिया । पुनः दूसरे दिन स्वर्णजटित आईना भेजा ।

वह भी वापस लौटा दिया गया ।

तत्पश्चात् बादशाह वापसी की वजह जानने के लिये भक्त के घर पहुँचे ।

भूषण कवि ने कहा, "बादशाह सलामत ! ज्यादा से ज्यादा कीमती आईने की अपेक्षा से मैंने सारे आईने वापस नहीं भेजे हैं ।

मेरा तो खाने की थाली से ही काम चल जाता है । यदि आपके पास संपत्ति फातलू पडी है तो इस धरती पर अनेक लोग भूखमरी के शिकार हैं और उनके पास पहनने के लिए कपडे नही हैं । उनकी जरूरतें आप पूरी कीजिए । मुझे तो कुछ नही चाहिए ।

47. भक्त सूरदास

कृष्णभक्त सूरदास एक समय के बिल्वमंगल ।

अति कामांध ।

रोज गाँव के बाहर कुएँ पर पानी भरने के लिए जमा हुई युवतियों का मजाक किया करते रहते थे तथा उनके सौंदर्य को देखते रहे और पगला जाते थे ।

किसी युवती ने उसे फटकार दिया । बिल्वमंगल को अपने कुकर्म से गहरा आघात लग गया । तत्काल उसने दो बडे सूए अपनी दोनों आँखों में उतारकर आँखें फोड डाली । लोग उसे सूरदास कहने लगे पर उसके अंतर्चक्षु खुल गये ।

वह कन्हैया का भक्त हो गया । उसमें लीन होकर विलीन हो गया ।

एक दिन राह पर चल रहे थे कि अंधे कुएँ मे सूरदास गिर गये ।

गिरते ही प्रभु का नाम जोर से लिया । किसी ने उनका हाथ पकड लिया और ताकत लगाकर बाहर निकालने का प्रयत्न किया ।

सूरदास की समझ में आ गया कि नामस्मरण करते ही जो सहाय मिली वह योगीश्वर कृष्ण की हो सकती है । जिसने मेरा हाथ पकडा है वह श्रीकृष्ण ही है ।

अतः सूरदास ने जोर से हाथ को पकडे रखा लेकिन अद्दश्य तत्व ने सूरदास को बाहर खींचते वक्त जोर से हाथ ले लेने से सूरदास एकदम गुस्से में आ गये । हाँ,भगवान हाथ से निकल गये इसलिए । उसने चीखकर कहा "हाथ भले ही खींच लिया हो पर यदि इस प्रकार आप मेरे ह्रदय से इस प्रकार निकल सको तो प्रिय प्रभु मैं आपको मर्द का बच्चा कहूँगा । यदि ताकत है तो कर लो कोशिश और देख लो ।"

"हाथ मरोड के जाते हो ,दुर्बल जानि मोय ।

अंतर में से जो खसो ,तो मर्द बकुं मैं तोय ॥"

48. प्रभुभक्त का पुण्य तो वृद्धिमान ही होता रहता है

आसन्न मृत्यु के समय पिता देदाशाह ने सुविनीत पुत्र पेथड को बिछौने पर बुलाकर कहा ,"बेटा ! एक तरफ मेरी लाखों की सम्पत्ति है। दूसरी तरफ एक कागज है,जिसमें सुवर्णसिद्धि का रस बनाने का प्रयोग लिखा हुआ है। एक बोतल रस से हजारों मन लोहा करोडों रुपयों की लागत का सोना बन जायेगा। बेटा ! यदि तुम कागज ले तो सारी सम्पत्ति का मैं अपने हाथों सात क्षेत्रों में उपयोग करने का सुकृत करूँ ,ऐसी मेरी भावना है।"

पेथड ने पिता की ईच्छा को स्वीकार किया। अपना सर्वस्व दान करके पिता देदाशाह अनंत यात्रा के राही हो गये।

काश ! सुवर्णसिद्धि के प्रयोग के अनुसार सारे प्रयत्न करने पर भी रस बना नही। कहीं कोई चूक रह गई थी,लाख कोशिशें की,पर नाकाम रहे।

करोडों की सम्पत्ति का मालिक पेथड भिखारी हो गया।

पर कोई संत अतिथि बनकर घर पधारे तब उनका उत्तम प्रकारेण औचित्य होने से प्रसन्न हुए संत ने पेथड को उसके बाद की प्रक्रिया में हो रही चूक को बताया और समाधान भी दिखाया। रस तैयार हो गया। पूर्ण रूपेण सफलता हासिल हुई।

आबु पहाडी पर करोडों रूपयों के मूल्य का सोना तैयार हुआ। मांडवगढ की दिशा में बिदा होने के समय पेथड जिनालय में दर्शन करने के लिए गये।"परमात्मा के मुखार्विंद को दर्शन करते ही उसे स्मरण हुआ कि ,इस भगवंत ने सर्वस्व का त्याग किया और मैं करोडों रुपयों की राशि का परिग्रह कर रहा हूँ। धिक्कार है मुझे।"तत्क्षण दो करोड रूपयों का परिग्रह परिमाण व्रत धारण किया।

अब उस विपुल सम्पत्ति का उपयोग धर्ममार्ग में करने लगे और प्रभु की भक्ति में अत्यंत लीन-तल्लीन रहने लगे। एकदा अचानक एक अंधेरी रात में कुछ बुर्काधारी लोग गये। उनके पास मोम से बने दिखनेवाले (हकीकत में वे सोने के टुकडे थे।) हजारों टुकडे (गिनियाँ) वे लोग पेथड को देने लगे। उन्होंने कहा "हमारे पीछे विदेशी सरकार पडी है। हम समुद्र पार के जलदस्यु हैं। हमारा यह धन आप

रख लिजिए। आपके काम आयेगा। हम यहाँ से भाग जाना चाहते हैं।"

उस समय मंत्री पत्नी वहाँ खडी -खडी बातें सुन रही थीं। उनको यह मालूम था कि मोम के पिघलने से उससे चिपकी हुए हजारों चींटियाँ,मकोडे,चपडे आदि मर जायेंगे। ग्रीष्मकाल माथे पर था।

धर्मचुस्त पत्नी ने गुस्से में आकर पति पेथड को सुना दिया कि वह मोम के टुकडों को महल में आने नही देगी। वह इतनी सारी जीवहिंसा को सह नही सकेगी।

पत्नि के समक्ष लाचार हुए पेथड ने वह सारा ढेर हवेली के बाहर अहाते में किसी अव्यवहृत कोने में करवाया। जब तपती दुपहरियाँ शुरू हुई कि मोम पिघलने लगा। जब वह पूरी तरह से पिघल गया तब अंदर रहा सोना सूर्यातप में चमकने लगा।

तब जाकर सब को खबर हुई कि जलदस्यु मोम में लिपटा हुआ सोना छोडकर गये थे।

परमात्मा की भक्ति का चमत्कार देखने को मिला। भक्तिजनित पुण्य का ही यह प्रभाव था।

पेथड ने वह सारा सोना बेच दिया। उससे हुई समस्त आय का धर्म मार्ग में उपयोग किया।

इस प्रभुभक्त को मांडवगढ के राजा ने महामंत्री बनाया था। तब (चौदहवें शतक में) उनका वाषिक वेतन १४७ मण सोना था ! प्रभुभक्ति से सोना मिला ? ना...विशेष तो उसके प्रति जो अनासक्ति मिली वही भक्ति का सच्चा फल माना जायेगा।

49. पण्डित ओमकारनाथ का संगीत और मुसोलिनी

उस समय ईटाली में मुसोलिनी का शासन था। मात्र भारत के ही नही पर विश्व विख्यात संगीतकार पण्डित ओमकारनाथ एकदा ईटाली गये थे।

मुसोलिनी ने उनका नाम एक मशहूर सूरसम्राट के रूप में सुना था। अतः उनके साथ शुरूआती दौर में तो बातचीत हुई। श्रीकृष्ण की बाँसुरी से गोपियाँ किस प्रकार पगलाई होंगी, उसका भावपूरित दर्शन के लिए मुसोलिनी ने कहा तब पण्डित ओमकारनाथ ने कहा, "मैं श्रीकृष्ण की बराबरी में तो क्या

उनकी चरणरज बराबर भी नही हूँ। तथापि उनके प्रति कोटिशत: वंदन निवेदित करके आपको बताऊँगा कि स्वर की शक्ति क्या होती है ?"

उस समय पण्डितजी के पास एक भी वाद्ययंत्र नहीं था। हाँ,उनके पास चम्मच और काँटे तथा चिनाई मिट्टी के बरतन टेबल पर पडे थे। उन बरतनों पर चम्मच और काँटे का यथायोग्य स्पर्श करते रहकर आवाज निकालने का प्रयत्न करने लगे।

शनै: शनै: ऐसा तो तालबद्ध संगीत शुरू हुआ कि उस ताल के साथ मुसोलिनी का मस्तक भी हिलने लगा। जब पण्डितजी ने संगीत की गति बढाई तब मुसोलिनी का माथा टेबल से जोर जोर से टकराने लगा।

ताल के साथ वह अपने माथे को पछाडकर ताल से ताल मिलाने लगा पर पण्डितजीने देखा कि उसका माथा लहूलुहान हो गया है तब संगीत बंद कर दिया।

उस समय मुसोलिनी को भारतीय संगीतकारों के स्वर के ऊपर अपूर्व अधिकार देखने को मिला और उसका आनंद भी ऊठाया।

यदि चम्मच और काँटा और चिनाई मिट्टी के बरतन द्वारा यह सिद्धि प्राप्त हो सकती है तो श्रीकृष्ण बाँसुरी के द्वारा गोपियों के ऊपर कैसा जादू चलाते होंगे!

इसी पण्डितजी ने सागर की भरती की आवाज जब निकाली तब हिटलर और मुसोलिनी दोनों सचमुच भरती आ गई है ऐसी कल्पना से घबडाकर कॉच और कमरा छोडकर भाग खडे हुए थे !

50. प्रभुभक्त मीरा

गिरधर की परम भक्त मीरा ।

राजपूत परिवार में जन्मी मीरा शैशवकाल से ही श्रीकृष्ण की मतवाली थी । उसने कृष्ण को अपने प्रियतम के रूप में स्वीकार कर लिया था । बचपन में बालसहज खेल में उसने श्रीकृष्ण से विधिपूर्वक विवाह किया था ।

मीरा बडी हुई तब विवाह करने की ईच्छा न होने पर भी घर के बडों के आग्रहवश होकर भोज के साथ विवाह करना पडा । गिरधर से ही प्रेम करनेवाली मीरा सांसारिक प्रेम नही कर सकी । अतः अकुलाहट वश भोज ने दूसरा विवाह रचाने की सोची । विवाह के बाद दूसरी पत्नी शादी की रात में ही चल बसी ।

कृष्ण की भक्ति करते हुए भी वह पति की बहुत सेवा करती थी ,फिरभी सास तथा ननद दोनों मिलकर मीरा को बहुत परेशान करती थीं ।

ऐसी दशा में भी मीरा कृष्ण की बहुत भक्ति करती थी । वह श्रीकृष्ण को छोडने के लिए बिलकुल तैयार नही थी, क्योंकि कृष्ण ही उसका जीवन था,उसका सर्वस्व था । एक सैकंड के लिए भी उसके लिए कृष्ण को छोडना सम्भव नही था । गिरधर की मूर्ति के समक्ष बैठकर भजन गाकर, मीठे मीठे प्रेमालाप करके मीरा कृष्ण को रिझाती थी । उसका पति भोज मीरा को बहुत चाहता था । उसकी भक्ति को देखकर भोज ने महल में ही कृष्ण का मंदिर बनवा दिया था ।

एक दिन यवनों से हुए युद्ध में भोज की मृत्यु हो गई । उस दिन मीरा के हिस्से वैधव्य आया । मरते समय भोज ने स्वीकार कर लिया कि मीरा का कृष्ण के प्रति प्रेम सच्चा प्रेम था ।

पति की मृत्यु के बाद मीरा कृष्णभक्ति में अधिक एकाकार होने लगी । पाँव मैं घुँघरू बांधकर नाचने लगी । साधु-संतों को एकत्र करके उनकी भक्ति करती थी । उनके साथ सत्संग करती थी । उसने अपना समस्त जीवन कृष्ण को समर्पित कर दिया था ।

मीरा की यह भक्ति उसके देवर विक्रम तथा ननद उदा को पसंद नही थी । अतः उन्होंने उसे तंग

करना शुरू किया।

दोनों ने मिलकर एक दिन मीरा को घर से निकाल बाहर कर दिया और भूतिये महल में भेज दिया। लोगों की यह मान्यता थी कि उस महल में भूत-प्रेत रहते हैं पर मीरा तो उस भूतिये महल में भी खुश थी। उसे किसी चीज का डर नही था क्योंकि कृष्ण उसके साथ थे। वह पूर्णरूपेण कृष्णमय हो गई थी।

इस तरफ विक्रम मीरा की भक्ति से बहुत अकुलाहट अनुभव करता था। ससुराल से वापस लौटी बहन उदा ने भी भाई का सहयोग किया था। अब भाई-बहन मीरा को सताने में कोई कसर छोडते नही थे।

एकदा उन्होंने मीरा को चंदन की पेटी में सुगंधी फूलों का हार भिजवाया। मीरा ने जैसी ही संदुक को खोला कि उस हार के साथ पाँच साँप देखे। एक साँप तो मीरा की गोद में जा बैठा फिरभी मीरा बिलकुल डरी नही। वह तुरंत कृष्ण की भक्ति में लीन हो गई। एक साँप तो मीरा के भजन से डोलने लगा। कुछ देर बाद सारे साँप रेंगकर बगीचे में चले गये।

यह समाचार पाकर भाई-बहन और ज्यादा उत्तेजित हुए। अब उन्होंने मीरा की हत्या करने का नया प्रपंच रचा।

इस बार उन्होंने चरणामृत का प्याला मीरा को भिजवाया। उसमें उन्होंने पहले से ही जहर मिला दिया था परंतु आखिरी क्षणों में उदा का हृदय परिवर्तन हो गया। उसने मीरा को विष का प्याला नही पीने केलिए बारबार कहा। अंदर जहर मिलाया है,ऐसा समझाने के बावजुद भी मीरा वह प्याला पी गई क्योंकि उसे श्रद्धा थी कि "भगवान अपने सच्चे भक्त की सहायता करता ही है।"इस श्रद्धा के कारण मीरा के लिए जहर भी अमृत हो गया। उसने विष को पचा लिया।

इस प्रसंग के बाद उदा मीरा की शिष्या हो गई। वह भी कृष्ण की भक्ति में शामिल हो गई। राजप्रासाद की अन्य अनेक स्त्रियाँ मीरा के साथ भक्ति करने लगी। नगरभर में मीरा के भजन गाये जाने लगे।

विक्रम को जब पता चला कि उदा भी मीरा के साथ भक्ति में जुड गई है। मीरा को मरवाने के

उसके प्रयासों की खबर लोगों को हो गई थी। अतः वह लोगों की नजर से गिर गया था। अतः वह बहुत क्रोधित हुआ।

एक दिन विक्रम मीरा की श्रीकृष्ण की मूर्ति लेकर घर से निकला। मीरा बिनती करती हुई राणा के पीछे दौडी पर उसने बिना कुछ सुने,परवाह किये गुस्से में आकर मूर्ति को नदी में फेंक दिया। अपने प्रिय भगवान को नदी में गिरते हुए देखकर वह चीख ऊठी और वह भी पानी में कूद गई। नगर में सब ने मन लिया कि मीरा की मृत्यु हो गई।

अतिप्रिय गिरधर के प्रति गाढ श्रद्धा के कारण मीरा बच गईं। मीरा ने जब होश में आकर अपनी आँखें खोली तो उसने एक डाकू के कमरे में स्वयं को पाया और उसके पास श्रीकृष्ण की एक मूर्ति थी। उसे अपने प्राणप्रिय भगवान वापस मिल गये, इस बात से वह फूली नही समाती थी। इस घटना से वह परमेश्वर की भक्ति में अधिक लीन हुई। उसकी भक्ति देखकर उसके प्रति आकृष्ट हुए डाकू की वासना खत्म हो गई। उसमें आमूलचूल परिवर्तन आ गया। वह सब कुछ छोडछाडकर मीरा के साथ मथुरा जाने के लिए तैयार हो गया।

मीरा मथुरा को तो अपनी ससुराल मानती थी क्योंकि अपने प्रियतम कृष्ण का घर मथुरा में था। कुछ ही दिनों में मीरा ने भजनों के द्वारा समस्त मथुरा नगरी को कृष्णभक्ति का मतवाली बना दिया। मथुरा में चारों तरफ मीरा की भक्ति की खूब प्रशंसा होने लगी।

इस बात की खबर मेवाड में राणा विक्रम को हुई तब उसे बहुत ठेस पहुँची क्योंकि वह मीरा को मृतः समझता था। विक्रम की पत्नी बारंबार मीरा के प्रति द्वेष नही करने के लिए समझाती थी पर वह हमेशा मीरा को दुश्मन ही मानता था। मीरा के जाने से मेवाड की हालत भी बहुत खस्ता हो गई थी। राज्य में कलह बहुत बढ गया था। राणा की भी बहुत बदनामी हुई। लोगों को उसके प्रति नफरत हो गई थी।

मीरा कुछ दिन मथुरा रहकर वृंदावन पहुँच गई और गिरधर की भक्ति में लीन हो गई। उसकी भक्ति देखकर लोगों का हृदय परिवर्तन होने लगा। मीरा जहाँ भी जाती वहाँ लोगों को कृष्ण की भक्ति में जोड लेती थी।

वृंदावन में कुछ समय रहकर अब मीरा ने द्वारिका के लिए प्रस्थान किया तब रास्ते मैं मेवाड के अंतिम दर्शनार्थ आई। मीरा मेवाड आ रही है,यह जानकर राणा बहुत व्याकुलता अनुभव करने लगा। मीरा का चचेरा भाई जयमल मीरा से मिलने के लिए गया तब राणा ने उसे ललकारा। मीरा ने हस्तक्षेप करके दोनों में समाधान करवाया। मीरा ने वचन दिया कि वह मेवाड में पुनः पाँव नही धरेगी। जयमल से भी उसने मेवाड की रक्षा के लिए वचन मांग लिया।

उदा मीरा के साथ द्वारिका जाने के लिए तैयार हुई पर मीरा ने उसे समझाकर वहाँ रोक लिया। द्वारिका जाने से पहले रात्रि वेला में उस भूतिया महल में भजन-कीर्तन की झडी बरसा दी। राणा ने भजन में रूकावट डालने के लिए उसके सामंतों को भेजा पर वे सारे मीराके संग भक्ति में जुड गये। आगबबूला होते हुए राणा वहाँ गया। अपनी सगी बहन उदा को मारने के लिए तलवार तो ऊठायी लेकिन वहाँ बैठे हुओं में से एक आदमी ने तलवार का वार पकड लिया। बहन बच गई। सब लोगों ने राणा के प्रति धिक्कार व्यक्त किया। उसकी दशा दिन-प्रतिदिन विषम होने लगी।

मीरा द्वारिका में अपने प्रिय भगवान की भक्ति में दिन बीताने लगी तब वहाँ के मंदिर का पुजारी कुद्दष्टि से देखने लगा। उसने मीरा से एकांत में मिलने के लिए कहा। मीरा ने तो निर्दोष भाव से हाँ कही।

वैसे मीरा से मिलने के लिए जाते समय उसकी आत्मा कचोटने लगी। जब वह मीरा से मिला तब मीरा तो भक्तों से घिरी हुई थी। पूजारी ने मीरा से कहा कि,"मैंने आपसे एकांत में मिलने के लिए कहा था।" तब मीरा ने उसे कहा "मुझे कहीं ऐसा स्थान नही मिला। मुझे तो सर्वत्र मेरा गिरधर ही दिखाई देता था।"

यह सुनकर पूजारी शर्म के मारे मीरा के चरणों में बैठ गया। अन्य और लोग भी भक्ति में लीन हुए। उन्हें भी ऐसा लगा कि कृष्ण एक ही पुरुषोत्तम हैं। हम तो उनके दास हैं। उनके हृदय में दासत्वभाव जागृत हुआ।

मीरा को अभी भी कृष्ण के दर्शन नही हो रहे थे। अतः वह उदास थी। उसने बचपन में ही स्वप्न में गिरधर को देखा था, उनके संग बातें भी की थी पर आज पर्यंत कृष्ण के साक्षात् दर्शन हुए नही थे।

अत: वह कृष्ण के विरह की पीडा का अनुभव करने लगी।

मेवाड के पतन के कारण सारे लगों ने मीरा को वापस लाने के लिए राणा को बहुत समझाया पर जिद्दी राणा ने स्वयं मेवाड का त्याग करने की ठानी।

राणा अपने लोगों के साथ निकला पर रास्ते में उसे खबर हुई कि वे सारे उसके लोग नही थे ,उसके शत्रु थे। आखिरकार वह उनके खिलाफ लडा और मृत्यु को प्राप्त हुआ।

अब मीरा का भाई जयमल और नगरजन मीरा को वापस लाने के लिए द्वारिका गये। मीरा गिरधर के अंतिम दर्शन करने के लिए मंदिर के द्वार बंद करके गिरधर से बात करने लगी। मीरा के हृदय की प्रार्थना आज गिरधर ने सुन ली। कृष्ण ने मीरा को अपने में समा लिया।

काफी समय बाद मंदिर के द्वार तोडे तब मीरा अदृश्य हो गई थी। सब ने मीरा की श्वेत धोती को मूर्ति पर लिपटी हुई देखी। सब ने मीरा के वियोग में अश्रु बहाये। मंदिर में पडी मीरा की मूर्ति को जयमल ने भक्तिभाव पूर्वक अपने साथ ले ली।

इस प्रकार गिरधर की परम भक्त मीरा ने कृष्ण को प्राप्त किया।

51. जिन पडिमा(प्रतिमा) जिन सरिखी

रोनाल्ड निकोलसन लखनऊ के कॉलेज में अंग्रेजी के अध्यापकी करते थे।

वह हर तरह से सुखी थे। किसी बात को लेकर प्रतिकूलता नही थी फिरभी जीवन में शान्ति का अनुभव नही कर रहे थे। उनके चेहरे पर कभी भी मुस्कान झलकती नही थी।

उसका एक हिन्दू मित्र था। फुरसत के पलों में निकोलसन उसे घर जाकर बैठता था। कईबार उसे देखता था कि मित्र की पत्नी भीतर के कमरे में जाकर,वहाँ पलने में रहे बच्चे से बहुत लाड लडाते हुए खिलखिलाती रहती है। मुँह पलने में डालकर किसी को चूम रही है।

रोनाल्ड को लगा कि वह औरत कितनी खुश है "मुझे ऐसी खुशी कब नसीब होगी?"

उसे लगा कि मात्र बालक होने के कारण ऐसा अद्‌भुत आनंद नहीं पाया जा सकता क्योंकि अपने यहाँ दो संतानें तो पल चुकी हैं।

शंका का समाधान करने के लिए एक दिन वह भीतर के कमरे में गया। उस समय वह औरत पागलों की तरह हर्षित होकर पलने में मुख रखकर चूम रही थी। बहुत हँस रही थी।

रोनाल्ड ने देखा कि पलने में बालकृष्ण की मूर्ति थी। वह औरत उसे साक्षात भगवत् स्वरूप में देखकर हर्षित होती जा रही थी। अब रोनाल्ड को पता चला कि जगत में आनंद किस में है?

दूसरे दिन निकोलसन घर से व्रज जाने के लिए निकल गये। वहाँ गोपालदास के नाम से दीक्षा ग्रहण की। कृष्णभक्ति में लीन हो गये।

52. दिल अटको तोहरे चरणकमल में

थोमस आल्वा एडिसन।

बिजली के बल्ब के आविष्कारक वैज्ञानिक।

बिजली के बल्ब पर प्रयोग करने के लिए छत्तीसहजार बल्ब व्यर्थ हुए। अंततोगत्वा सफलता मिल गई। उसने सर्वत्र घोषित कर दिया कि "अब गैस से चलनेवाली बत्तियाँ बंद कर देना। उसके बिना बल्ब का प्रकाश आपके घर में चारों तरफ फैलने लगेगा।"

एडिसन की इस बात का लोग मजाक उडाने लगे पर जिस दिन वह बात सच प्रमाणित हुई, उस दिन लोग पागल होकर नाचने लगे। उनका आनंद आसमान छूने लगा।

एडिसन ने प्रयोग काल की अवस्था में कभी भी अपनी पत्नी के साथ शान्ति से बैठकर बात तक नही की थी।

एक दिन उनकी पत्नी ने कहा कि "मात्र रविवार के दिन लेबोरेटरी बंद रखी जाये।"

एडिसन ने उससे पूछा कि "तो फिर रविवार को मैं कहाँ जाऊँ ?"

जवाब मिला,"आप जहाँ मरजी हो जाएँ।"

रविवार शीघ्र ही आ गया। कपडे,बूट आदि पहनकर बाहर जाने के लिए निकले ही थे कि पत्नी ने पूछा,"कहाँ जा रहे हैं ? एडिसन ने कहा,"मुझे जहाँ ठीक लगे वहाँ !

पत्नी ने पूछा कि "अर्थात् आप को कहाँ ज्यादा अच्छा लगता है ?"

एडिसन ने जवाब देते हुए कहा,"लेबोरेटरी के सिवाय मुझे और क्या पसंद होगा? मैं तो वहाँ ही जाऊँगा।" ऐसी ही प्रीत उदयरत्नजी को प्रभु के लिए थी। अतःउन्होंने गाया "दिल अटको तोहरे चरणकमल में।"

53. रावण की महानता(अजैन रामायण प्रसंग)

रावण जब मृत्युशैया पर थे तब राम ने लक्ष्मण से कहा कि,"तुम रावण के पास शिघ्र पहुँचो। उसके पास अमूल्य ज्ञान है,उसे अर्जित करो। उससे जगत के लिए अंतिम संदेश ले आओ।"

लक्ष्मण दौडे।

उसने रावण से कहा,"राम रो रहे हैं।"

रावण के द्वारा वजह पूछने पर लक्ष्मण ने बताया कि "आपके अंतकाल से वे व्यथित हुए हैं। मुझे आपके पास अंतिम संदेश प्राप्त करने के लिए भेजा है। बडेभैया ने कहलवाया है कि "आप अनेक गुणों के भण्डार हैं। सीता का अपहरण तो आपकी आकस्मिक (कर्मोदय जनित) भूल थी।"

आँख में अश्रु सहित रावण ने कहा कि "मेरे जैसे शत्रु का भी राम गुणकथन करते हैं। इसी लिए राम जगत में भगवान के रूप में पूजे जाते हैं।"

अब आपको मेरा अंतिम संदेश यह है, कि"आज की बात कल पर छोडनी नही चाहिए। मेरी

ईच्छा थी कि मैं स्वर्गगमन के लिए धरती पर सीढी रखूँ,जिससे सभी जीव स्वगारोहण कर सके, कोई नरक की दिशा में गति करे ही नही पर वह कार्य अधुरा ही रह गया। मैंने इस काम में विलम्ब किया और मौत वेग से आगे बढ गई। अब अफसोस करने से क्या लाभ !"

54. भगवान शरणागत की रक्षा करते है

राजा कर्णदेव और रानी मीनळदेवी। उनका पुत्र सिद्धराज।

तीन वर्ष की अवस्था में पिता से विरह हुआ। बाल सिरुाज को माता मीनळ शिक्षा देने लगी।

एकबार दिल्ली नरेश ने सिद्धराज को बुलाया।

मीनल ने यह समझाना शुरू किया कि कौन सा सवाल पूछे जाने पर कैसा जवाब दिया जाये। सिद्धराज ने एक दिन कहा,"माँ ! आप मुझे कितना ही पढाओ पर यदि तुम्हारा नही सिखाया हुआ राजा ने पूछा तो ? अतः यह सब माथापच्ची छोडकर आप मुझे ऐसे आशीर्वाद दीजिए कि मुझे जो पूछा जाये उसका सही जवाब दे सकूँ।"

प्रसन्न माता ने आशीर्वाद दिये।

सिद्धराज दिल्ली दरबार पहुँचा।

राजा ने पहले तो उसे किसी चूक में घेरकर खूब कडुआी बातें सुनाई पर सिद्धराज तो मौन ही रहा। बाअदब खडा रहा। बाद में राजा ने उसके दोनों हाथ पकड लिए।

इससे सिद्धराज खूलकर हँसने लगा। राजा के द्वारा कारण पूछे जाने पर उसने बताया कि "शादी के वक्त पति पत्नी का एक हाथ पकडता है (हस्तमिलाप की क्रिया) तब उस पर पत्नी को आजीवन सम्हालने की जिम्मेदारी आ जाती है। आपने मेरे दोनों हाथ पकडे हैं। अतः अब जीवनपर्यंत किसी भी प्रकार की चिंता से मैं निश्चिंत हो गया हूँ।

इस जवाब से राजा अति प्रसन्न हो गया। उसने राजस्व माफ कर दिया।

55. मुझे तो कृष्ण चाहिए

महाभारत के युद्ध की नौबतें बज गई थीं। अर्जुन और दुर्योधन ने अनुकूल राजाओं को अपने अपने पक्ष में कर लिया था। अब श्रीकृष्ण को अपने पक्ष में लेने के लिए दोनों योद्धा उनके पास गये। उस समय श्रीकृष्ण नीद्रावश थे।

सबसे पहले दुर्योधन ने आकर श्रीकृष्ण के शिरहन के पीछे बैठ गया।

कुछ देर बाद अर्जुन ने आकर श्रीकृष्ण के चरणों में बैठ गया।

श्रीकृष्ण जगे तब सबसे पहले अर्जुन को देखा। क्यों अर्जुन ! कब आये ?

उतायली में दुर्योधन ने कहा "उससे पहले तो मैं आया हूँ। आप मेरे साथ बात कीजिए।"

दुर्योधन !

तुम्हारी बात सही होगी पर मैंने अर्जुन को पहले देखा है।अतः मैं उससे पहले पुछूँगा कि उसे युद्ध के लिए मुझ से क्या चाहिए ? यह कृष्ण या मेरी विराट नारायणी सेना ?"

दुर्योधन को तो सेना चाहिए थी। अकेला कृष्ण (और वह भी निःशस्त्र) उसे नहीं स्वीकार्य था।

पर खामोश !

दुर्योधन की ईच्छा पूर्ण हो गई क्योंकि अर्जुन ने मात्र कृष्ण मांगे। इस प्रकार दुर्योधन को सेना मिल गई।

पर, जब कर्ण को खबर हुई तब बडा निःश्वास छोडते हुए कहा,"हाय,अब तो हमारी हार निश्चित क्योंकि धरती के अद्वीतिय सारथि कृष्ण के बिना मैं रथी के रूप में निश्चित ही निष्फल रहूँगा।"

56. भगवान के अस्तित्व मात्र से निर्भीकता

अमावस की रात में भयानक जंगल में कोई पथिक चोरों द्वारा लूट लिया गया। उसे खूब मारा-पीटा गया। उसकी आँख पर कसकर पट्टी बांध दी और उसे अकेले ही भटकने के लिए छोड दिया।

"बचाओ, बचाओ" की गगनभेदी चीखें मारता हुआ पथिक यहाँ वहाँ भटकने लगा। बाघ,सिंह, अजगर आदि के भय से वह फडफडा रहा था।

एकाएक कोई घुडसवार वहाँ पहुँच गया। पथिक की चीखों का उसने जवाब दिया।"चिंता नही करना। मैं आ गया हूँ। मैं तुम्हारे साथ हूँ।"

इन शब्दों से पथिक को बहुत आश्वासन मिला। वह अभय हो गया।

अघोरी साधु के आगमन से भयभीत होकर नि:शब्द हो गये बच्चे के पास उसकी माँ आकर खडी रह जाये तब वह कैसा अभय हो जाता है ?

"भगवान हमारे साथ हैं।"

यह विचार हमें निर्भय बनाता है। (अभयदयाणं)

जब तक कृष्ण रथ पर थे तब तक अनेक शस्त्रों से रथ जर्जरित हो जाने पर भी -धधक उठे ऐसा होने पर भी अर्जुन एकदम स्वस्थ था।

अब कृष्ण रथ से नीचे उतरने की तैयारी में थे। तब उन्होंने पहले अर्जुन को रथ से उतारा। बाद में स्वयं श्रीकृष्ण रथ से नीचे उतरे।

और....

रथ अग्नि धू धू करता हुआ जलकर खाक हो गया।

अर्जुन को बचाने –अभय रखने के लिए कृष्ण बाद में रथ से नीचे उतरे। उसके साथ ही रहे।

भगवान साथ में हैं तो भक्त निर्भय है।

57. प्रभुदास की प्रभुश्रद्धा

विगत दो बरसों के अकाल के बाद इस बरस तो मानो कच्चा सोना बरसा था। सारा गाँव अति हर्षित था। दो बरस का एकसाथ जो इस वर्षाकाल में बरसात ने चुक्ता कर दिया था।

प्रभुदासभाई के यहाँ दाल की पैदावार (फस्ल)अच्छी उतरी हुई थी।

आज आकाश स्वच्छ था। अपराह्न वेला थी। शहर में माल ले जाने का उचित समय है। ऐसा सोचकर प्रभुदासभाई गाडी भरकर शहर की ओर बढे।

अभी तो गाँव के सीमांत तक ही पहुँचे थे कि आकाश बादलों से घिर गया। बिजली कडकने लगी। दिवस होने पर भी रात सा अंधेरा छा गया था। अभी बरसात हो जायेगी। शहर पहुँचना तो दूर गाँव वापस पहुँचने की सम्भावना भी नहीवत् रह गई थी।

दासभाई की हालत तो बहुत खराब हो गई। अब क्या किया जाये ?

गाँव के सीमांत पर महादेव का मंदिर था। गाडी को बरगद के वृक्ष के नीचे छोडकर अपनी स्वरक्षा के लिए मंदिर में चले गये।

रातभर बारिश होती रही।

तडके जब मेघराजा ने विराम फरमाया तब दासभाई तुरंत अपनी गाडी को देखने के लिए बाहर निकले।

यह तो स्वाभाविक ही है कि सारा माल भीगकर निकम्मा हो गया था परंतु यह क्या ?

गाडी के पहिये बारिश के जोर के कारण जमीन में आधे गरक गये थे। बारिश से आतंकित हुए बैल भी भाग गये।

बाद में महादेव के मंदिर में जाकर बोलने लगे-

"हे महेश ! यह दाल तो मेघराजा ने मुझे दी थी और उन्होंने वापस ले ली है। गाडी और बैल का रिश्ता आज तक का ही था,वह भी खत्म हो गया। अतः मुझे कोई दुःख नही है।

ओ प्रभु ! तेरे इस प्रभुदास की जितनी कसौटी करनी हो कर लेना।

तुम शायद कसौटी करते करते थक जाओगे पर मैं नही थकूँगा।

यह प्रभुदास तो हमेशा तुम्हारा ही दास रहेगा।

तुम्हारा दामन वह नही छोडेगा।

58. रामभक्त हनुमान

लंका पर विजय प्राप्त कर लक्ष्मण ,सीता और हनुमान के साथ राजा राम अयोध्या वापस लौटे।

चौदह वर्ष के वनवास के अनंतर आज राम का अयोध्या प्रवेश बडे ठाट-बाट (आडम्बरपूर्वक) हो रहा था। भरत ने कोई कसर छोडी नही थी। समस्त अयोध्या नगर अत्यंत आनंदित था।

राम के भव्यातिभव्य प्रवेश के प्रारम्भ से लेकर समापन तक हनुमान ने राम का अनुसरण किया।

हनुमान के लिए तो राम ही राम थे। वह तो उनसे क्षण मात्र के लिए भी अलग नही हो रहे थे।

सायं वेला में जब राम के साथ उन्होंने शयनकक्ष में प्रवेश किया तब सीताजी ने उन्हें रोका।

"माता ! आप मुझे क्यों रोक रही हैं ?"

"क्योंकि आपके मस्तक पर सिंदुर नहीं है।"

पवनपुत्र तत्क्षण वापस लौट गये पर दूसरे दिन उसी समय द्वार पर उपस्थित हो गये।

सीता तो यह देखकर हँस दिये....

"यह क्या ? सारे शरीर पर सिंदुर लगाकर क्यों आये हो ?"

हनुमान ने गम्भीरता धारण करके कहा। "माता !आपके सौभाग्य की सीमा मर्यादित है। अतः आप मात्र मांग में सिंदुर भरती हैं। मुझे तो ऐसे स्वामी मिल जाने के बाद सौभाग्य की कोई मर्यादा ही नही रही अतः मैं तो सारे शरीर पर सिंदुर लगाकर आया हूँ।

अब तो मुझे अंदर जाने की अनुमति मिलेगी ना ?

सीताजी कहें तो भी क्या कहें ?

59. प्रभुकृपा की ताकत

सीताजी की खबर पाकर रामचंद्रजी ने , हनुमानजी को सीता तक संदेश देने के लिए लंका भेजा।

हनुमान जी से सीताजी ने रामचंद्रजी के समाचार सुनने के बाद पारणा किया।

सीताजी के कुशल समाचार जानकर रामचंद्रजी ने साश्चर्य पूछा-"वत्स ! सीताजी के पास पहुँचने केलिए बीच में रहे विराट समुद्र को आपने कैसे पार कर गये ?"..."आपकी कृपा से।"

"क्या मेरी कृपा से समुद्र पार हो सकता है ?"..."हाँ।"

"कैसे ?"

"सीताजी के लिए आपने मुझे जो मुद्रिका दी थी,उस मुद्रिका के प्रभाव से ही मैं उस पार पहुँच गया।"

हनुमानजी की चालाकी पर राम मन ही मन मुस्कुरा दिये और पुनः प्रश्न पूछा ,

"वह मुद्रिका तो तुमने सीताजी को दे दी थी तो फिर वापस कैसे लौटे ?"

"माताजी की कृपा से...।"

"क्या ?"

"आपको शायद मालूम नही होगा पर सीताजी ने मुझे आपको देने के लिए मुकूट दिया था। बस,उसी मुकूट के दिव्य प्रभाव से मैं उस पार से इस पार पहुँच गया।"

राम तो हनुमान की अनन्य भक्ति और श्रद्धा को देखकर दंग रह गये और स्वयं उनके प्रति सशंक रहने के कारण उन्होंने लज्जा का अनुभव किया।

60. आपका कान्हा तो बहुत सयाना है

कस्तुरबा कृष्ण भगवान की परम भक्त थीं । सुबह-शाम नैवेद्य अर्पण करती थीं । घर में पकती सारी रसोई (खाना) का अर्घ्य देती थीं ।

सुबह-शाम दो घंटे कृष्ण भगवान की पूजा करती थीं - भक्ति करती थीं ।

बरसों से वे इस प्रकार से कृष्ण भगवान की अखण्ड भक्ति कर रही थीं । स्वयं अकेली थीं । अत:कभी कोई परेशानी हुई नही थी ।

आज किसी दूर के स्वजन के अत्याग्रह वश उसके किसी अवसर में कस्तुरबा को जाना पड सकता था पर इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान को अकेला छोडकर जाने को मन नही कर रहा था ।

आखिरकार एक उपाय ढूँढ लिया ।

कस्तुरबा के पडोस में चम्पा रहती थी । वह अत्यंत सरल स्वभावी थी ।

उसने चम्पा को बुलाकर ,श्रीकृष्ण की मूर्ति देते हुए कहा –

"चम्पा ! मैं तुम्हें अपने कान्हा को आज केलिए सौंप रही हूँ । उसे अच्छी तरह से सम्हालना । ठीक से खिलाना । मैं कल सबेरे आ जाऊँगी ।

दूसरे दिन बा जब लौटीं तब सहर्ष चम्पा ने बा को कान्हा को सौंप दिया ।

"बा ! आपके कान्हा को मैंने दूध पिलाया तो तुरंत पी लिया । दोपहर में खिलाया तो दो रोटी खा ली । शाम को मेरे साथ ही सो गया । बा !

आपका कान्हा बहुत सयाना है। मुझे जरा भी तंग नहीं किया ।

बा तो आश्चर्य से स्तब्ध रह गई । इतने वर्षों की मेरी अखण्ड भक्ति के रहते भी उसने कभी मेरे साथ बात नही की और तुम्हारे साथ बातचीत की ,चला ,खाया-पिया भी?

बा ने चम्पा को मन ही मन वंदन किया । धन्य है चम्पा ।

61. वज्रस्वामीजी

अवन्तीनगरी में धनगिरि नामक एक सेठ रहता था। उसने शादी के वक्त ऐसी शर्त रखी थी कि,ऋवही कन्या मेरे साथ शादी रचाए जो मैं जब भी दीक्षा लूँ तब मुझे सम्मति प्रदान करे। सुनन्दा नामक एक कन्या ने इस शर्त के स्वीकार के साथ उससे शादी रचायी। जब सुनन्दा सगर्भा थी तब धनगिरि ने सिंहगिरि नामक आचार्य भगवंत से दीक्षा अंगीकार की।

सुनन्दा ने एक बच्चे को जन्म दिया। उस समय घर की स्त्रियाँ तथा उसकी सखियाँ समवेत स्वर में बोली कि इस लड़के के पिता ने दीक्षा ली है। अत: अब क्या किया जाए ! यदि वह संसार में होते तो बड़ा जन्म महोत्सव करते।''

दीक्षा शब्द सुनते ही बालक को जाति स्मरण हुआ।(यह पुण्यवान बालक पूर्वभव में तिर्यंगजृंभक था;जिसने अष्टापद गिरि के उपर गणधर भगवंत गौतमस्वामीजी के पास पुंडरीक अध्ययन सुना था।)

बालक ने तुरंत रोना शुरू कर दिया। निरंतर रुदन करने से उसकी माता ने त्रस्त होकर उसके पिता धनगिरि के हवाले कर देंगे, ऐसा इस बालक का खयाल था। उसकी यह कल्पना सत्य सिद्ध हुई। निरंतर रोते रहने के कारण माँ सुनन्दा बहुत त्रस्त हो गई थी। कब उसके पिता भिक्षार्थ घर आए और कब यह बालक उन्हें सौंप दूँ'' यह विचार उसे बारबार आता रहता था।

कुछ समय बीतते गुरु के संग विहार करते हुए धनगिरि मुनि अवन्ती पधारे। दोपहर वेला में भिक्षार्थ इजाजत मांगते हुए धनगिरि मुनि से गुरु ने कहा ,''आज बड़ी झोली लेकर जाना। यदि सचित्त वस्तु भी प्राप्त हो जाए तो वह भी लेते आना।

दो मुनि भिक्षार्थ घूमते हुए सुनन्दा के घर गए। सुनन्दा ने बताया कि वह इस रोते हुए बच्चे से ऊब गई है। अत: उसके पिता उसे अपने साथ क्यों न ले जाए?

कभी भी वापस नहीं मांगने की शर्त के साथ धनगिरि मुनि ने बच्चे को बहोर लिया। बहोरे जाने के बाद तुरंत रोता हुआ वह बच्चा शांत हो गया और प्रसन्नचित्त हो गया क्योंकि यह उसकी इच्छानुसार हुआ था।

उपाश्रय लौटे धनगिरि की झोली में छह महीने का बालक था। वह बहुत पुष्ट था। इसलिए बहुत भारी था। अत:

झोली के भार से मुनि का हाथ टेढ़ा हो गया था। यह देखकर गुरु ने इस बालक को अपनी गोद में लिया। वह वज्र जैसा भारी होने के कारण उसका नाम वज्री रखा गया।

अभी तो वज्र मात्र छह महीने का था। अत: उसके स्तनपान इत्यादि के लिए उसे श्राविकाओं के उपाश्रय में पालने में रखा गया। वह तीन वर्ष का हुआ तबतक उसे वहाँ रखा गया। वहाँ अनेक साध्वीजियां रहती थीं। उनका ग्यारह अंगों का स्वाध्याय बारबार सुनकर वे ग्यारह अंक कंठस्थ हो गए ! माता सुनन्दा यदा–कदा वहाँ जाती थी और अपने पुत्र को भरपूर वात्सल्य प्रदान करती थी। अब रुदन मुक्त हुए और हर तरह से अत्यंत चालाक(कुशल)अपने पुत्र को देखकर उसे वापस लेने की इच्छा हुई। एकबार धनगिरि मुनि,अपने गुरु के साथ विहार करते हुए वहाँ आए तब सुनन्दा ने उनसे बेटा वापस मांगा। धनगिरि मुनि तथा जैन संघ के अग्रणी श्रावक–श्राविकाओं ने कहा कि एकबार बहोरा हुआ बेटा वापस नहीं दिया जा सकता।''लेकिन सुनन्दा तो इस बात को लेकर जिद पर आ गई। उसने राजा से न्याय मांगा। राजा ने कहा कि आप माता और पिता वज्र के समक्ष खड़े हो जाइए। उसे बुलायें, वह जिसके पास जाए उसीका वह बेटा होगा।''

सुनन्दा ने इस बात का स्वीकार किया। राजसभा में बालक वज्र को खड़ा कर दिया गया। दूर खड़े होकर सुनन्दा ने खिलौने, मिठाइयां आदि दिखाकर अपने पास चले आने के लिए कहा पर वह तो ठेंगा ही दिखाता रहा। बाद में मुनि धनगिरि ने रजोहरण दिखाया वह एकदम हर्षित होकर दौड़ा और उछलकर रजोहरण ग्रहण करके नाचने लगा।

राजा ने न्याय देते हुए कहा,ऋऋपुत्र उसके संसारी पिता का।''अपनी संतान का संयम जीवन के प्रति ऐसा जन्मजात प्रेम देखकर माता सुनन्दा के मन में भी संयम ग्रहण करने की भावना जगी। वह साध्वी हुई। गुरु ने वज्र को भी दीक्षा प्रदान की। उसकी अवस्था आठ वर्ष की हुई तब एक देव ने उनकी जीवरक्षा की परिणति अ ै र शास्त्राज्ञा के पालन में अतिशय कट्टरता और ज्ञानदशा को देखकर प्रसन्न होकर वज्र मुनि को वैक्रिय लब्धि प्रदान की।

अन्य देव ने भी इसी प्रकार प्रसन्न होकर उन्हें आकाशगामिनी विद्या प्रदान की।

एक बार सभी साधु भिक्षार्थ बस्ती की बाहर गए। गुरु भी शौच के लिए बाहर गए थे अब कुतूहलवश होकर

बालमुनि ने अपने समक्ष सारी उपधि (साधुओं के प्रतीक के रूप में) रखी और ऊंचे स्वर में उन्हें ग्यारह अंगों का पाठ कराने लगे। काफी समय के बाद बाहर से वापस लौटे गुरु उसकी आवाज सुनकर चौंक गए। गुप्त रूप से बाहर खड़े होकर अदभूत अध्यापन कार्य को देखकर उन्होंने विचार किया कि यह आत्मा ग्यारह अंगों को कंठस्थ जानती है; तथापि उसने कभी यह घोषित ही किया और न ही उसने अपनी इस विद्वत्ता को लेकर अभिमान ही किया है। बालक होते हुए भी कैसा अबाल–गांभीर्य है !''

तत्पश्चात कुछ बोलते हुए उपाश्रय में गुरु के प्रवेश करने से बालमुनि को खबर हो जाने से सारी उपधि फटाफट यथास्थान रखकर गुरु के सामने गए। उनका पाद–प्रक्षालन आदि कार्य अत्यंत भाव विभोर होकर किया।

बालमुनि कैसे ज्ञानी और गंभीरता आदि गुणों से सम्पन्न हैं,यह बात सारे साधुओं को पता चले इस आशय से गुरु ने कुछ साधुओं को लेकर विहार किया। विहार के समय अंगों का अध्ययन कर रहे साधुओं ने वाचना विषयक प्रश्न किया कि क्या अब हमारी वाचना बंद हो जाएगी?''तब गुरु ने कहा वाचना तो यथावत चलेगी ही। बालमुनि आप सबको वाचना देंगे।''यह सुनकर सारे साधु दंग रह गए। उनके मन में विचार आया कि यह बालक हमें किस प्रकार वाचना देंगे?''

पर जब इस बालमुनि ने गुरु की अनुपस्थिति में सभी दिन अदभूत वाचना दी तब सारे साधु सानंद आश्चर्य चकित हो गए। उसी समय उन सबको बालमुनि की ज्ञानदशा और उनकी भारी गंभीरता का परिचय हुआ। वाचना इतनी तो सुंदर थी कि जब गुरु वापस लौटे तब सभी साधुओं ने गुरु से सविनय मांग की कि गुरु के स्थान पर बाल मुनि ही वाचना प्रदान करें पर अभी बालमुनि का योगोद्वहन हुआ नहीं था। अत: गुरु ने इस बात का स्वीकार किया नहीं।

गुरु ने अपने पास जितना ज्ञान था वह प्रदान करने के उपरांत, बालमुनि को दस पूर्वधर'बनाने के लिए दस पूर्वधर आचार्यश्री भद्रगुप्तजी के पास दो साधुओं के साथ भेजा। वहाँ पहुँचने के आखिरी दिन उज्जयिनी के बाहर पहुँच गए लेकिन सूर्यास्त हो रहा था इस लिए नगर के बाहर के उद्यान में ही रुक गए।

उस रात उज्जयिनी के उपाश्रय में विराजमान पूज्य भद्रगुप्तजी ने स्वप्न में देखा कि अपने हाथ से–दूध से भरा हुआ पात्र कोई पी गया और वह व्यक्ति बहुत आनंदित हो गया।''सुबह सूरिजी ने शिष्यों से स्वप्न की बात कहते हुए

उसका फल बताते हुए कहा कि,ऋऋआज कोई महाप्रज्ञ साधु मेरे पास आएगा जो मुझसे दस पूर्व का ज्ञान प्राप्त करने के लिए भाग्यशाली होगा।''योग्य व्यक्ति के अभाव में दस पूर्व का ज्ञान मेरी मृत्यु के साथ क्या विच्छेद हो जाएगा? मेरी ऐसी शंका निर्मूल हो जाएगी।

और..अभी तो सूर्योदय हुआ ही है कि नैषेधिकी करते हुए वज्रमुनि ने उपाश्रय में प्रवेश किया। सूरिजी की वंदना आदि की, बालमुनि की भव्य देहाकृति, उनकी क्रियाविधि

–चुस्ती आदि से सूरिजी अत्यंत प्रभावित हुए। हर बात में गुरुदेव की कृपा से 'जवाब मिलने से सूरिजी को बालमुनि की पूर्वगत श्रुतज्ञान को पाने की योग्यता का दृढ़ निश्चय हो गया।

विद्यागुरु और वडील मुनियों के प्रति अदभुत समर्पण एवं विनय भाव के कारण बालमुनि का क्षयोपशम अधिकाधिक प्रबल होने के कारण अत्यल्प समय में दसपूर्वधर' हुए।

तत्पश्चात वज्रस्वामी गुरु सिंहगिरिजी के पास गए। जब गुरु–शिष्य का मिलन हुआ तब उनके पूर्वभव के जृंभक मित्रदेव ने इस मिलन के आनंदस्वरूप महोत्सव किया। गुरु

सिंहगिरिजी ने उन्हें आचार्यपद पर आरूढ़ करके गच्छ का भार सौंप दिया स्वयं अनशन करके स्वर्ग की दिशा में प्रस्थान कर लिया।

वज्रसूरि पांचसौ साधुओं के साथ भारत की पुण्यवान धरती पर विहार करते रहे। वे जहां भी उपदेश देते थे वहाँ सैकड़ों आत्माएँ बारहव्रतधारी श्रावक धर्म को तो अचूक अपना लेती थीं।

उस समय पाटलिपुत्र में उनकी आज्ञावर्तिनी साध्वीजियों की स्थिरता थी। ए साध्वियाँ बारबार अपने गुरु वज्रस्वामी की अगाध शक्ति,अपूर्व ज्ञान और अति सुंदर देह का वर्णन करती थीं। यह सुनकर धन नामक धनवान वणिक की रुक्मिणी नमक सौंदर्यवती कन्या वज्रस्वामी के प्रति मोहित हो गई। उसने पिताजी से कहा,'' यदि विवाह करूंगी तो इस साधु से ही अन्यथा मैं आत्महत्या कर लूँगी। ''

कुछ समय बाद वज्रस्वामिजी का उस नगर में आगमन हुआ। अपनी बेटी की देह पर लाखों सोनामुहरों की लागतवाले आभूषण धारण करवाकर धन वज्रस्वामी के पास घर से जाने के लिए निकला। रास्ते में लोकमुख

9से वज्रस्वामीजी के देहलालित्य की प्रशंसा सुनकर धन को ऐसा अदभुत जमाई पाकर मन ही मन आइत आनंदित हुआ।

वज्रस्वामिजी गुरु की देशना सुनने के बाद धन वणिक ने अपनी पुत्री का हाथ स्वीकार कर लेने तथा दहेज के रूप में एक करोड़ रत्न पाने की बात कही। यदि ऐसा नहीं हुआ तो पुत्री आत्महत्या कर लेगी– यह भी बताया।

वज्रस्वामी ने सारी बात सुनकर दोनों पिता–पुत्री को दूसरे दिन प्रवचन श्रवण के लिए आने को कहा।

दूसरे दिन शरीर की शुचिता,भोग की विपाक कटुता,क्षणिकता आदि पर ऐसा तो हृदयस्पर्शी प्रवचन किया कि रुक्मिणी संसार के प्रति विरक्त हो गई। उसने वज्रस्वामी से प्रव्रज्या अंगीकार की।

एकबार वे भारत के उत्तर प्रांत में गए। वहाँ भयानक अकाल था। श्रीसंघ द्वारा कुछ करने' की बिनती की जाने पर उन्होंने चर्मरत्न की मदद से विशाल पट्ट बनाया। समस्त संघ को उस पर बैठा दिया और देव द्वारा प्रदत्त आकाशगामिनी विद्या की सहाय से आकाश मार्ग द्वारा आगे ले गए। महापौर नगर में सुकाल चल रहा था। वहाँ पट्ट का अवतरण किया। वहाँ पर्वाधिराज पर्युषण में जैनों को पुष्पपूजा के लिए पुष्प न मिले इस आशय से वहाँ के सभी मालियों पर वहाँ के बौद्धराजा ने प्रतिबंध जारी कर दिया कि जैनों को ऊंचे दाम पर भी फूल मिले नहीं। श्रीसंघ द्वारा वज्रस्वामीजी से जिनेश्वर भगवान की पुष्पपूजा प्रतिबंध की बात करने पर पुन: आकाशगामिनी विद्या का उपयोग किया। अपने संसारी पिता धनगिरि तड़ित नामक माली मित्र के साथ माहेश्वरी नगरी के निकटस्थ बन में गए। उस माली ने इक्कीस करोड़ पुष्प दिए। वहाँ से चुल्ल पर्वत पर जाकर वहाँ के देवता से विपुल मात्रा में पुष्प लिए। पुन: महापुर नगर में आकर जैन संघ को ए पुष्प दिए। इससे सब अति हर्षित हो गए। यह सब देखकर बौद्ध राजा सहित हजारों बौद्धों ने जैन धर्म का स्वीकार कर लिया।

वज्रस्वामीजी के उत्तराधिकारी आर्यरक्षितसूरिजी हुए। उन्होंने साढ़े नवपूर्व का ज्ञान प्राप्त किया था।

एकबार दक्षिण भारत में विचरण कर रहे वज्रस्वामी को कफ हुआ। अत: उन्होंने आहार के बाद सोंठ चबाने के लिए सोंठ का टुकड़ा मंगवाया। बापरते समय उसे कान में रखे रहे। बापरकर ऊठने के बाद शाम के प्रतिक्रमण में सोंठ का वह टुकड़ा कान से नीचे गिर जाने के कारण उन्हें हुआ विस्मरण याद आया। उन्होंने निश्चय किया कि ऐसा प्रमादभाव तो तभी आता है जब अपने आयुष्य का अंतकाल अब समीप आ गया हो।

उस समय उन्होंने बारहवर्षीय भयानक अकाल की आगाही करते हुए वज्रसेनसूरि आदि अपने शिष्यों से कहा कि, ''जब भिक्षा लेने गए साधु को किसी घर में लाख सोना–मुहर देकर विषमिश्रित चावल पक रहे होने की खबर होगी,उसके दूसरे दिन से सुकाल का प्रारम्भ होगा।''

ऐसा कहकर वैभारगिरि पर्वत ऊपर उन्होंने अपने अनेक शिष्यों सहित अतितप्त शिलाओं के ऊपर जाकर अनशन किया।

एक बाल शिष्य को अनशन करने से रोका और वापस भेज दिया तो उसने पर्वत के पिछवाड़े होकर पुन:वापस आकर शिला के ऊपर अनशन किया। मात्र चार ही घंटे में आग से तप्त उस शिला के ऊपर उसकी देह निष्प्राण हो गई। जंगल में रहनेवाले (भील लोगों)आदिवासी लोगों ने वज्रस्वामीजी आदि मुनियों को जब बताया तो वे सभी आश्चर्यचकित रह गए। उस घटना में से विपुल आत्मबल पाकर उन सबने विशेष उत्साहपूर्वक अनशन का स्वीकार किया।

उस तरफ अकाल के बारह वर्ष बीत गए। वज्रसेनसूरिजी के दो शिष्य किसी घर में भिक्षा लेने के लिए गए। वहाँ पतीली में चावल होते हुए भी मुनियों को बोहरने से इन्कार करने पर उन मुनियों ने कारण जानना चाहा। घर के लोगों ने बताया कि लाख सोनामुहरें देकर खरीदे हुए चावल में हमने विष मिलाया है। यह चावल खाकर हम सब अपने जीवन का अंत कर देंगे। हम आपको ऐसे चावल कैसे बोहरा सकते हैं?''

मुनियों को तुरंत स्वर्गीय गुरुदेव द्वारा की गई आगाही का स्मरण हुआ। उन्होंने उस चावल को खाने से घरवालों को रोक दिया और चौबीस घन्टों में ही सुकाल की आगाही की।

दूसरे ही दिन विदेश से आयातित अनाज से भरे जहाजों का बन्दरगाह पर लंगर डाल दिया। सर्वत्र सुकाल व्याप्त हो गया।

जीवनदाता सूरिजी से उस समग्र परिवार ने संयम धारणकर आत्मकल्याण साध्य किया। उस परिवार में चार किशोरों में चन्द्र नामक एक किशोर था। उसका नाम चान्द्रकुल रखा गया। कहा जाता है कि वर्तमान में विद्यमान सभी साधु उस चांद्रकुल से संबन्धित हैं।

62. पापभीरू पण्डित चोर

एक नगर था। काशी से पढ़कर ताजा ताजा आया हुआ एक पण्डित वहाँ रहता था। वह योग्य व्यक्तियों को व्याकरण,वेद,उपनिषद आदि पढाता था। अपना अयाचक व्रत होने के कारण वह कभी भी किसी से अपना पारिश्रमिक नहीं मांगता था। पंडितजी कुछ कमनसीब भी थे कि लोग उनका यथोचित सम्मान भी नही करते थे। अत: घर की हालत दिन प्रतिदिन खस्ता होती चली। पितृ उपार्जित धन भी खत्म हो गया।

पंडितजी की पत्नी सचमुच देवी' थीं। अत्यंत सुशील थीं। तथापि उन्होंने विवशतावश पति से कहा कि अब और कुछ यदि समझ में न आ रहा हो तो यह अध्यापकी को छोडकर चोरी करना शुरू कर दो।''

यह सुनकर धर्मात्मा पंडितजी तो स्तब्ध हो गए। लेकिन वे भी अब लाचार हो गए थे। कल सुबह उनकी दो संतानों के लिए पीने के लिए दूध तक नहीं था।

उन्हें चोरी जैसे सात व्यसनों में से एक भयंकर पाप करने तक के लिए मजबूर होना पड़ा।

एक रात दस बजे के बाद पंडितजी ने ताला तोड़ने आदि के औज़ार थैली में लेकर नगर में लुकते–छिपते निकल गए। वे जिस घर में घुसे, उस घर में पत्नी अपने पति से कह रही थी कि '' कल हमारे घर में कल खाने के लिए अनाज का एक दाना तक नहीं बचा है,क्या करेंगे? बच्चे भूखे मरेंगे !''

यह सुनते ही पापभीरू पंडित मन ही मन बोल ऊठे,''अरे! ऐसे गरीब घर में कहीं चोरी की जाती होगी? छोड़ो, चोरी नहीं करनी है।''

अब उन्होंने किसी धनिक की हवेली को चुना। रात्री के बारह बज गए थे। हवेली के पिछवाड़े की पाईप के सहारे पंडितजी पहली मंजिल पर गए। खिड़की बंद थी पर उसकी दरार में से देखा कि सेठ तो जग रहे थे। दिया जल रहा था। सेठ बही के पन्ने पलट रहे थे। पंडितजी ने तनिक ध्यान से सुना किअरे ! आधी रात बीत गई फिरभी दो पैसे का हिसाब नहीं मिल रहा! आज तो कुछ भी हो जाय ,पर हिसाब तो मिलाकर ही चैन लूँगा। चाहे ऐसा करने में चवन्नी का तेल ही क्यों न जल जाए !''

यह सुनकर चोरी के पाप से कांपते हुए पंडितजी ने मन ही मन कहा,'' बेचारा सेठ !यदि मैं इसके घर चोरी

करूंगा और पाँच–दसहजार रुपयों की चोरी करूंगा तो दूसरे ही दिन यह बेचारा मर जाएगा: उस पर दिल का दौरा पड जाएगा। दो पैसों का हिसाब मिलाने में इसने तो दो आने का तेल जला दिया है। ना भाई ना! इसके घर तो चोरी की ही नहीं जा सकती। मुझे तो मात्र पेट का ही एक दु:ख है। इस बेचारे श्रीमंत को तो तरह तरह के इक्कीस दु:ख हैं।''

मैं सारी दुनिया ढूंढ फिरा,सुखिया मिला न कोय

जिसके आगे मैं गया, वह पहले से पड़े रोय।

मैंने कहा मेरा एक दु:ख,उसने कहा इक्कीस;

मैं मेरा एक सह न सका,तो कहाँ राखू दूजा बीस।

पंडितजी आगे बढ़े। पुन:किसी हवेली के माले पर चढ़े। घर में झाँका तो पता चला कि यह तो किसी वेश्या का घर था।

युवती सुदर्शना वेश्या है। सारा शरीर रक्तपित्त से प्रभावित सारे शरीरधारी एक युवा को गाढ़ आलिंगन आदि द्वारा रिझाने का प्रयत्न कर रही थी। उस पुरुष की देह से मवाद बह रहा था।

यह दृश्य देखकर पंडितजी तो आश्चर्य चकित रह गए ! उन्होंने सोचा कि यह युवती केवल पैसों के लिए; ऐसे संक्रामक रोग से प्रभावित युवक को अपनी देह सौंपकर अपनी जिंदगी के साथ कितना बड़ा जुआ खेल रही है! हाय !यदि इस स्त्री के घर मैं चोरी करूंगा तो वह सर्वथा अनुचित कहलाएगा। ना....यहाँ तो मैं चोरी कर ही नहीं सकता।

पंडितजी माले से नीचे उतर गए। धर्मात्मा पंडितजी की आत्मा चोरी नामक एक भी पाप नहीं कर सकती थी। अत: प्रत्येक प्रसंग में ऐसा पाप नहीं करने का बहाना वह खोजने लगे।

दूसरी ओर पत्नी का भय खाए जा रहा था। खाली हाथ घर वापस लौटने का साहस नहीं था। अत: अब उन्होंने नगर के राजा के महल को चुना। वे महल के तीसरे माले पर बहुत सावधानी के साथ पहुँच गए। रात्री के तीन बज रहे थे। भारी आश्चर्य के साथ पंडित जी ने खिड़की से देखा तो राजा कुछ बड़बड़ाते हुए ;शयनखंड में चक्कर काट रहे थे। पंडितजी ने ठीक से कान देकर सुनने का प्रयत्न किया। राजा बोल रहे थे कि '' तीन–तीन पंक्तियाँ तो बन

गई,लेकिन श्लोक की आखिरी चौथी पंक्ति बन ही नहीं रही है।''

पंडितजी ने दीवार पर देखा ,उस पर काला बोर्ड (श्यामपट) लगा हुआ था। उस पर राजा द्वारा चॉक से लिखित तीन पंक्तियों को पढ़ा। वे इस प्रकार थीं।

चेतोहरा युवतायो,सुहृदोडनुकूला:।

सदबांधवा:प्रणयगर्भगिरश्च भृत्या:

बल्गंति दंतिनिवहास्तरलास्तुरंगा:।

उसका अर्थ यह था कि मुझे मनोहर युवतियाँ मिली हैं;अनुकूल मित्र मिले हैं; सुंदर भाई मिले हैं,मेरी हस्तिशाला में पुष्कल हाथी बंधे हुए हैं और अश्वशाला में चंचल घोड़े भी है...।''

इस श्लोक की चतुर्थ पंक्ति बनाना तो पंडितजी के लिए तो बालसहज चेष्टा थी।

इस तरफ राजा थक–हारकर पलंग पर लेटते ही गहरी नींद सो गया।

पंडितजी ने निर्णय कर लिया कि तत्काल वहाँ पड़े हुए चॉक से चौथी पंक्ति लिख दूँ ,पर उन्हें अचानक विचार आया कि क्या चोर कभी ऐसी बोधदायक पंक्ति लिखने का अधिकारी हो सकता है? बिलकुल नहीं। अत: पहले तो मुझे किसी भी हालत में जीवन में कभी चोरी नहीं करनी है ऐसी प्रतिज्ञा धारण करनी ही होगी।''

पंडितजी ने तदानुसार प्रतिज्ञा धारण कर ली। तत्पश्चात दबे पाँव बोर्ड के पास जाकर निम्न लिखित पंक्ति लिख दी।

संमीलने नयनयोर्नरहि किंचिदस्ति।

हे राजन ! आँखें बंद हो जाने के बाद इनमें से आपके किसी काम आनेवाला नहीं है।

और पंडितजी कुछ भी चोरी किए बिना ही घर वापस लौट गए। पत्नी सोयी हुई थी और स्वयं भी चूपचाप सो गए।

सुबह काफी देर बाद वे जागे। पत्नी को सारी बात बताने पर पत्नी ने बेचारे पंडितजी को बुरी तरह से फटकार दिया।

उसी वक्त नगर के राजा की ओर से पिटा जा रहे ढिंढोरा सुनाई दिया कि गत रात्री वेला में राजा साहब के शयनकक्ष में आकर जिस व्यक्ति ने श्लोक की चौथी पंक्ति लिखी हो वह राजाजी के समक्ष उपस्थित हो जाए। उसे बड़ा पुरस्कार दिया जाएगा।''

पंडितजी राजा के पास गए। राजा ने उसे छाती से लगा लिया। पुष्कल धन देते हुए कहा,''पंडितजी! आपने मेरी आँखें खोल दी हैं। आपने मुझे बहुत सुंदर बोध दिया है। अत: मैं आज ही से इस संसार का त्याग करके संन्यास की राह पर जा रहा हूँ।

राजा तो निहाल हो गए; संसार का त्याग करके। पंडितजी निहाल हो गए,पुष्कल धन प्राप्त करके। धर्मी जीव ! पाप करने के लिए कभी तत्पर नहीं होता। पाप तो करे ही नहीं। करना ही पड़ जाए तो वह कांप ऊठे, रो पड़े, टूट जाए। ''

63. अच्छा, बुरा कुछ है ही नहीं: सुबुद्धि मंत्री

एक राजा था। सुबुद्धि नामक उसका मंत्री था। मंत्री होने के उपरांत राजा का वह जिगरी दोस्त भी था। बड़ी कुशलता के साथ राजा की हित साधना में मंत्री बहुत कुशल थे। कईं बार राजा आवेश में या भोले भाव से उल्टी चाल चलते थे तो मंत्री उसे ठीक कर देते थे।

एक बार राजा ने अपने जन्मदिन निमित्त महाभोज का आयोजन किया। अदभुत व्यंजन तैयार किए गए। अनेक स्वजनों और स्नेहीजनों को आमंत्रित किया गया। सुबुद्धि मंत्री भी पधारे। सभी भोजन ग्रहण करने लगे। मंत्री के अतिरिक्त सब ने राजा के सरस व्यंजनों का भरपेट बखान किया। हाँ, मात्र मंत्रिजी चुप्पी साधे रहे। मंत्रीजी की यह चुप्पी राजा के लिए असह्य हो गई और उन्होंने भोजन के लिए स्पष्ट अभिप्राय जानना चाहा।

मंत्री ने कहा,'' श्रेष्ठ व्यंजनों की अपेक्षा ए व्यंजन तो निम्न कक्षा के कहे जायेंगे पर निम्न स्तरीय व्यंजनों की अपेक्षा यह खाना अति उत्तम कहा जा सकता है।''

ऐसा उत्तर सुनकर राजा को मंत्री के प्रति बहुत गुस्सा आया। उसने कहा कि ''मंत्री में राजकाज चलाने की समझ के अतिरिक्त और कोई समझ है ही नहीं। हमने उससे इस भोजन का अभिप्राय मांगकर बड़ी भूल कर दी है! अस्तु।''

मंत्रीजी ने मौन धारण कर लिया। अपनी बात पर अड़े रहे।

एक बार वे दोनों घोड़े पर सवार होकर सैर के लिए चल पड़े। नगर के चौराहे पर सारे गाँव की नालियों का गंदा पानी जमा हो जाने के कारण अति असह्य गंध आ रही थी। राजा ने तो तुरंत ही रुमाल निकालकर अपने मुंह पर रख दिया लेकिन मंत्रीजी ने ऐसा कुछ नहीं किया। राजा ने मंत्री से पूछा कि , '' क्या इस दुर्गंध का कोई असर आप पर नहीं हो रहा? आप कैसे विचित्र आदमी हैं! आपकी नाक भी कैसी विलक्षण है?''

मंत्री ने कहा , मुझे तो इन सब में कुछ भी खास नही लग रहा। जो कुछ है वह ठीक है।''

राजा ने कहा, ''आप सुबुद्धि नहीं पर बहुत बुद्धू हो। इंद्रिय भोग के बारे में आप नितांत जड़ एवं गंवार हैं।''

मंत्री थोड़ा सा मुस्कुराए। आज मंत्री ने एक बात अपनी गांठ से बांध दी है कि राजा को कुछ बोध तो देना ही चाहिए। अन्यथा ऐसे विषयों में ही उनका तन,मन और जीवन बरबाद हो जाएगा।''

मंत्री ने घर जाकर किसी नौकर के द्वारा वही गंदा जल एक घडे में भरवाकर मँगवा लिया। उसकी बदबू अत्यंत असह्य थी।

इस पानी की शुद्धि के लिए अलग अलग तबकों पर मंत्री ने प्रयोग प्रारम्भ किया। सबसे पहले उसने आठ घड़े इस प्रकार रखे कि गंदे पानी से भरा घड़ा सबसे ऊपर रहे । इस प्रकार सबसे ऊपर के घड़े का पानी टपककर दूसरे घड़े में और क्रमश: रिसते हुए सब से नीचेवाले घड़े में जमा होने लगा। इस प्रकार पानी को शुद्ध किया। तत्पश्चात उस पानी में कतकचूर्ण डालकर उसके रहे–सहे कचरे को घड़े के तल में बिठा दिया। उसके बाद पानी को छान लिया और विविध उपाय करके उसे अत्यंत सुवासित किया।

तत्पश्चात एक दिन मंत्री ने राजा को अपने घर भोजन के लिए आमंत्रित किया। राजा सपरिवार पधारे।

विविध व्यंजन परोसे गए। वह शुद्ध किए गए पानी से भरे प्याले भी सब के सामने रख दिए गए। चारों ओर से

इतनी ज्यादा महक आने लगी कि राजा उस महक के आने की दिशा एवं स्रोत के लिए अटकलें लगाने लगे। जब एक भी अटकल सत्य प्रमाणित नहीं हुई तो मंत्री से पुछे जाने पर कहा कि यह महक तो पानी से आ रही है।

राजा ने कहा, मंत्रिश्वर !यदि आपके पास किसी कूप का इतना सुवासित जल है तो आप मेरे यहाँ क्यों नहीं भेज रहे?''

राजन ! न तो मेरे पास ऐसा कोई कुआँ है और न टंकी, जिसका यह पानी हो ऐसी नदी का कोई झरना भी मेरी स्मृति में नहीं है।''– मंत्री ने कहा।

तो फिर यह पानी आया कहाँ से?''–राजा ने पूछा।

राजन ! यदि आप मुझे अभय वचन प्रदान करें तो सारा किस्सा सुनाऊँ।''–मंत्री ने बिनती की। राजा द्वारा उस बिनती का स्वीकार किए जाने पर मंत्री ने बू मार रहे दूषित पानी की बात कही। राजा तो उस बात का स्वीकार ही नहीं कर पाया कि अति गंदले और दूषित पानी कुछ सुयोजित प्रयत्नों से इतना सुवासित और सुंदर हो जाए! पर अंततोगत्वा इस बात का स्वीकार तो करना ही पड़ा !

मंत्री ने कहा– राजन ! कोई भी पदार्थ अच्छा लगे या खराब ? इसका आधार तो हमारे मन पर है। मनुष्य को शक्कर मीठी लगती है ;गधे को कड़ुई लगती है। संसारी को स्त्री सुंदर लगती है;साधु को गंदगी से भरी देह ! अत: आपके यहाँ योजित महाभोज में मैंने उसे सापेक्ष रूप से अच्छा–खराब दोनों कहा था।''

दूसरी बात यह है कि वस्तुमात्र मूलत: तो द्रव्यरूप है। उसके सुंदर–असुंदर भासित भाव उस द्रव्य के क्षणजीवी पर्याय हैं । पानी मूलत: गंदा भी नहीं है;शुद्ध भी नहीं है। पानी केवल पानी ही है।परंतु कभी कभार उसका गंदा पर्याय होता है तो कभी प्रयत्न करने से वही पानी अत्यंत सुवासित बनता है। यदि हम मात्र द्रव्य की ओर दृष्टिपात करें तो हमें राग या द्वेष,रति या अरति नहीं होगी। ऐसा होने पर हमारा मानवजीवन रति,अरति के परिणामों द्वारा बरबाद होने से बच जाता है।''

मंत्री की यह बोध वाणी सुनकर राजा को संसार के प्रति वैराग्य हो गया !

64. मात्र विचारों के पाप से अविरत बरबाद हो रहा रूपसेन

राजा की सुनन्दा नामक बहुत प्रिय राजकुमारी थी। बारह वर्ष की अवस्था में उसने झरोखे से सामनेवाले घर में एक दृश्य देखा। पति उसकी पत्नी को चोटी से पकड़कर मुक्केबाज़ी कर रहा था। उसका माथा दीवार से बारबार टकराता था। वह स्त्री ज़ोर ज़ोर से चीखती–चिल्लाती थी; बचाओ। बचाओ। ''पर ए सारे निष्फल प्रयत्न थे; उसकी सास ही उसे पिटवा रही थी।

यह दृश्य देखकर सुनन्दा को पुरुष जाति के प्रति धिक्कार हुआ। वह पुरुषद्वेषिणी हुई। उसने पिताजी को हमेशा के लिए शादी करने से इनकार कर दिया। उसकी उम्रह भी तेज गति से बढ़ने लगी।

यौवन तो कामराज की क्रीड़ास्थली! भरी जवानी को प्राप्त सुनन्दा ने अपने ही परिवार में परस्पर कामुकतायुक्त मस्ती करते हुए युगल को देखा। उसे काम जीवन में नही प्रविष्ठ नही हो पाने के कारण पश्चात्ताप अनुभव होने लगा। अब उसका प्रत्येक क्षण कामुकता से पूर्ण बीतने लगा।

एक दिन झरोखे से रास्ते पर दृष्टिपात करने पर उसने अतिरूपवान श्रेष्ठीपुत्र रूपसेन को देखा। दासी के मारफ़त उसके घर का पता लगाकर उसने उसे कौमुदी महोत्सव के दिन की संध्या के बाद राजमहल में आने के लिए आमंत्रण भेजा। श्रेष्ठीपुत्र ने उस आमंत्रण का स्वीकार कर लिया। कौमुदी महोत्सव का आनंद लेने के लिए समग्र प्रजा ने नगर के बाहर विशाल उद्यान में उपस्थित रहना अनिवार्य होने पर भी सुनन्दा शिरदर्द के बहाने महल में ही रह गई। यथासमय रूपसेन महल के नीचे आया। वहाँ पहले से ही रस्सा लटक रहा था; लेकिन उस रस्से के ऊपर नगर का महा दुष्ट जुआरी,महाबल जुआ खेलने के लिए पैसों की जरूरत पड़ने पर महल में चोरी करने के लिए चढ़ रहा था। अत: रूपसेन नीचे ही रह गया।

उसी क्षण उद्यान से पटरानी की दासियाँ आवश्यक वस्तुएँ लेने के लिए सुनन्दा के महल में गईं। अत: सुनन्दा ने सारे दिए बुझा दिए। अंधेरा फैल जाने से सुनन्दा महाबल जुआरी को ही रूपसेन समझ बैठी। दोनों ने संसार मनाया। उस समय नगर में आगे बढ़े रूपसेन के माथे पर किसी पुराने मकान की दीवार के गिरने से उसकी तत्क्षण मौत हो गई। सुनन्दा के गर्भ के रूप में उसका जीव सुनन्दा की कोख में आ गया।

कुमारिका सुनन्दा की दासियों को सुनन्दा के शरीर के बदले हुए लक्षण से गर्भ का ख्याल आ गया और तुरंत गर्भपात करवा दिया। बेचारा रूपसेन तो जन्म लेने से पूर्व ही खत्म हो गया। कुछ समय के बाद सुनन्दा की शादी किसी रजवाड़े के राजकुमार से हुई। इस तरफ रूपसेन का जीव तीसरे भव में सर्प हुआ।

कालांतर में उद्यान में पति के साथ टहल रही सुनन्दा को देखकर मोह जागृत होने पर वह सांप उसे छूने के लिए उसके पीछे पड गया। सुनन्दा डर गई। उसके पति ने बड़ा पत्थर उठाकर सर्प पर फेंकने से तत्काल वह मर गया।

चौथे भव में रूपसेन का जीव कौआ हुआ। सुनन्दा के महल के सामने वाले वृक्ष पर बार बार बैठे जाने के कारण एक दिन उसने सुनन्दा को देखा। पूर्वजन्म का मोह–संस्कार जागृत हुआ उसकी भाषा में वह ज़ोर ज़ोर से का...का...का... करता हुआ अनजाने ही सुनन्दा के प्रति प्यार जताने लगा लेकिन उसकी कर्कश आवाज सुनन्दा के लिए असह्य हो गई। यकायक वह कौआ सुनन्दा की गोद में जा बैठा और उसके अंगों को छूने लगा। अत: एकाएक आवेश में आकर राजा ने उसकी गरदन को मरोड़ दिया। बेचारा वह कौआ तडफ तडफकर मर गया।

रूपसेन का जीव उसी उपवन में पाँचवें भव में हंस हुआ। सुनन्दा को निहारते रहने में उसे बड़ा आनंद आता था पर एकबार कोई कौआ राजा के माथे पर चिरक डालकर उड गया। राजा ने उसे मारने के लिए छोड़ी हुई गोली उस हंस को लग जाने से उसकी मौत हो गई !

छठे भव में वह हंस हिरन हुआ। रानी को उसका मांस खाने की इच्छा होने के कारण उसे पकड़ लिया गया। तत्काल उसे मार डाला गया। उसका मांस अति स्वादिष्ट लगने के कारण राजा और रानी दोनों मांस खाते हुए उस मांस के बखान करते हुए थकते नहीं थे। तब वहाँ से दो मुनि गुजरे। उनमें से एक ज्ञानी मुनि ने सहवर्ती मुनि से कहा की मात्र कामुक मन होने मात्र से रूपसेन का जीव कितने सारे भव करता चलता है! सुनन्दा हिरन के रूप में उसीका मांस खा रही है! हाय! कैसा असार यह संसार है! मन में क्रूट पाप भी कितने कातिल हो सकते हैं!''

इस संवाद के रुक–रुक कर कहे गए शब्द सुनन्दा को सुनाई देने से कुतूहलवश उसने मुनि से सारी बात विस्तार से कहने के लिए बिनती की। मुनि ने सारी बात विस्तार से कहते हुए समझाया कि उस हिरन का जीव अब हाथी होगा और बहन! तुम्हारे ही उपदेश से विराग पाकर वह इस भवचक्र का अंत लाने की दिशा में गति करेगा।''

स्वयं को जोड़नेवाली एक जीव के सात भव की करुण घटना सुनकर सुनन्दा ने संसार के प्रति वैराग्य भाव

अनुभव किया और वह साध्वी हो गई। घोर तप के प्रभाव से उसे अवधिज्ञान प्राप्त हुआ। उस ज्ञानबल से उसने हाथी के स्थल की जानकारी प्राप्त की। गुरु की आज्ञा लेकर उस साध्वीजी ने हाथी को प्रतिबोधित करने के लिए बनगमन किया। तब वहाँ के लोगों ने उन्हें ऐसा कहकर रोका कि हाथी पगलाकर इसी तरफ आ रहा है ; अत: आप इधर–उधर हो जाएं।''लेकिन वह साध्वीजी तो वहीं रुक गई। उनकी आशिष देनेवाली मुद्रा को देखकर हाथी एकदम शांत हो गया। उसे बोध मिलने से जातिस्मरण हुआ। उसे राजा की गजशाला में रखा गया। छठ के पारने छठ हमेशा के लिए कर के देवलोक को प्राप्त हुआ।

वह पश्चात्ताप से पाप मुक्त हुआ, उसे सदगति प्राप्त हुई। मुक्ति समीप आ खड़ी हुई।

65. अविलंब आनेवाले देव आजकल क्यों नहीं आ रहे?

धारा नगरी का राजा भोज वह पंडितों का बहुत सम्मान करता था। उसकी विद्वत सभा में दो महापंडित थे। मयूर और बाण दोनों क्रमश: ससुर और जमाई थे।

एक बार रात्री वेला में मयूर कवि को उसकी पत्नी से भारी कहा–सुनी हो गई। बात तो साधारण–सी थी; पर बात का बतंगड़ हो गया। पति ने मध्यरात्रि तक पत्नी को समझाया पर उसकी रिस कम नही हुई। सुबह हुई। सूर्य आकाश में ऊपर चढ़ने लगा। पत्नी अब तक जगी नहीं थी। अत: बाण ने उसे जगाते हुए कहा, '' हे सुंदर स्त्री ! अब तो मैं तुम्हारे चरण पकड़कर माफी मांगता हूँ। बस...अब तो जग जाओ। घर का काम–काज संभाल लो।''

उसी वक्त मयूर कवि (बाण के ससुर)वहाँ से गुजर रहे थे। बाण के शब्द उनके कान पर पडे। अपनी ही पुत्री उसके पति को पैर पकडवाने तक के लिए विवश कर रही है। यह जानकर उन्हें बहुत पीड़ा हुई। उसके पति को चाहिए कि वह ऐसी स्त्री को कुछ सख्ती के साथ सबक सिखाए। ऐसा सोचकर मयूर ने कविवर बाण से कहा कि कविवर! आप अपनी पत्नी को सुंदरी कहना छोड़ दीजिए। यदि वह क्रुद्ध हुई हो तो उसे चंडी कहकर ही संबोधित

कीजिए।''

पिता की ऐसी कटु सीख सुनकर पुत्री अति क्रोधित हो गई। वह बिछौने पर से पान चबाते हुए आकर बाहर निकली और पिता को श्राप देते हुए बोली कि मेरी इस पान कि पीक से आपके पूरे शरीर पर कोढ़ हो। ''

हाय! बेटी ने पिता को शापित किया। पिता की देह पर पान की पीक छोड़ी।

श्राप सच में सच साबित हुआ। मयूर की सारी देह कोढ़ से प्रभावित हो गई। मयूर बहुत शर्मिंदगी अनुभव करने लगा और बहुत व्यग्रता अनुभव करने लगा।

संयोगवशात जब मयूर ने राजसभा में प्रवेश किया तब बाण कवि ने उनसे कहा: ''आइए, पधारिए, कोढ़ी पंडितजी मर्यू''

इस प्रकार बाण कवि ने ससुरजी को यकायक हुए कोढ़ का स्मरण कराते हुए भोजराज ने मयूर से कोढ़ की वजह पूछते हुए मयूर कवि ने पुत्री द्वारा दिए गए श्राप आदि की बात कही। भोजराज ने मयूर कवि से कहा कि कविराज! आप तो अनेक शास्त्रों के ज्ञाता हैं, मैं चाहता हूँ कि आप यथाशीघ्र इस कोढ़ से मुक्त हो जाइए। मेरी यह आपको चुनौती है। ''

मयूर ने इस चुनौती का स्वीकार कर लिया। परम श्रद्धा के साथ सूर्य मंदिर जाकर सूर्यदेव की विधिवत आराधना की। सूर्यदेव ने प्रकट होकर आशीर्वाद देकर कोढ़ मुक्त करके मयूर कवि की देह को कंचनवर्णी बना दिया।

इससे भोज की राजसभा में कविराज मयूर की महिमा और बढ़ गई। जमाई राजा बाण को मयूर से बहुत ईर्षा हुई। उसने राजा से कहा ,''दैवकृपा से कोढ़ मुक्त हो जाने में कौन सा बड़ा तीर मार लिया। मेरे हाथ और पैर काट डालिए। मैं तीन दिन में अक्षत देह होकर वापस लौटूँगा।''

सारी सभा सकते में आ गई। राजा भोज के आदेश से बाण कवि के दोनों हाथ और दोनों पैर काटकर अलग कर दिए गए। ऐसी स्थिति में बाण ने चंडिका की विधिवत आराधना की। तीसरे दिन चंडिका ने प्रसन्न होकर बाण को अक्षतदेही बना दिया।

अब तो धारानागरी में दोनों कवियों की महिमा बढ़ गई, भोजराज भी उत्तरोत्तर अधिक प्रसन्न हुए। भोजराज ऐसे महान साधक की प्राप्ति से गौरवान्वित हुए।

उस समय जैन धर्म के कट्टर उपासक धनपाल नामक कवि ने राजा भोज से कहा कि जीनधर्म के आचार्य मानतुंगसूरिजी के पास जो साधना है, उसकी तुलना में तो इन कवियों की साधना का कोई मूल्य नहीं।''

यह सुनकर कुतूहलप्रिय भोज ने उन्हें राजसभा में आमंत्रित किया। अपनी इच्छा से अवगत किया। जिनशासन की अत्यंत प्रभावना होने की संभावना को जानकर मानतुंगसूरिजी ने राजा भोज से कहा,''मेरे शरीर पर बयालीस जंजीरें लपेटकर उन पर बयालीस ताले लगवाए और मुझे एक कमरे में बंद कर दीजिए। मैं स्वयं उन से मुक्त होकर बाहर आ जाऊंगा।'' तदनुसार किया गया। अत्यंत भाव विभोर होकर आदिनाथ भगवंत की एक-एक स्तुति-भक्तामर प्रणत मौली...'' आदि का सूरिजी पाठ करते गए। एक एक बेडी टूटती गई। अंततोंगत्वा सारी बेड़ियाँ, ताले और कमरा सब खूल गया। सूरिजी स्वयं राजसभा में राजा के सामने आकर खड़े हो गए। राजा तो आनंद और आश्चर्यचकित हो गया। वह तो सूरिजी का भक्त हो गया।

अजैन पंडित सूरिजी से खूब जलने लगे। एक दिन अजैन पंडित ने सार्वजनिक सभा में सूरिजी से सवाल किया कि,''आपने जो चमत्कार दिखाया,उसमें प्रभाव किसका? यदि स्तोत्र का ही प्रभाव हो तो यदि आपका अन्य कोई भी श्रावक उसका पाठ करे तो भी उसका चमत्कार अनुभव होना चाहिए।''

सूरिजी ने उस पंडित की बात का स्वीकार किया, भक्तामर स्तोत्र के नित्य स्मरणकर्ता हेमराज सेठ को बुलाकर सबकी उपस्थिति में किसी गहरे अंधे कुएँ में सेठ को उतारा गया। सूरिजी ने सेठ से कहा,''स्तोत्र के प्रभाव से तीन दिन में आप बाहर आ जाना।''

कुएँ में रहे सेठ ने भावविभोर होकर अभी तो मात्र दो ही श्लोकों का पाठ किया था कि चक्रेश्वरी देवी प्रकट हुईं और कहा,''मैं आज रात राजा भोज को नींद में ही नागपाश से बांध दूँगी। आप बाहर आकर इस स्तोत्र का पाठ करके उस पर जल छिड़कना,जिससे राजा पाश मुक्त हो जाएगा।''

दूसरे दिन उठते समय राजा नागपाश से बंधा हुआ था। उसमें से छूटने के लिए सभी धर्मों के मांत्रिक-तांत्रिकों के सारे प्रयत्न व्यर्थ हुए। उस वक्त देववाणी हुई कि इस पाश से मात्र हेमराज सेठ ही आपको छुड़ा सकेंगे।''

राजा ने उस कुएँ की दिशा में चौकीदारों को रवाना किया पर इस तरफ सेठ आकाश मार्ग से नीचे उतरे। राजा के समक्ष आकर खड़े हो गए। स्तोत्रपाठ करके पानी छिड़कते ही राजा पाशमुक्त हो गए।

सर्वत्र भक्तामर स्तोत्र की महिमा व्याप्त हो गई। सर्वत्र जैनधर्म की जयजयकार हो गई।

कैसा वह काल !शीघ्रता से देव दौड़े चले आए।

आज ? स्वप्न में भी कोई न मिले।

मलिन देव–देवियों से सारा आकाश मण्डल छा गया हो वहाँ अच्छे देव–देवता कैसे दौड़े चले आयें! अधम की अधम गाली, अधम रीति के साथ अधम होना उन्हें कैसे गंवारा हो सकता है भला?

66. बुद्धि से काम करे वह बनिय

एक गाँव था। उसकी आबादी करीब बीसहजार की थी।

हिन्दू और मुस्लिम दोनों की आबादी बराबर बराबर की थी। हिन्दू प्रजा आमतौर पर शांत प्रजा थी;मुस्लिम गरीब होने पर भी स्वभावतया कुछ जुनूनी थे। इसीलिए हिन्दू लोग उनके साथ भाईचारे के साथ जीना पसंद करते थे।

गाँव में एक मुहल्ले में बनिए और मुसलमान का घर ठीक आमने सामने था।

बनिया इतना खास धनिक नहीं था लेकिन संतोषप्रद जीवन जी रहा था। पत्नी आदि के साथ उसका स्नेहपूर्ण व्यवहार होने के कारण पारिवारिक मेल भी अच्छा था।

वह मुसलमान हर बात में अधीर था। अत: घर में हर बात पर तकरार चलती रहती थी। अत: उसे पारिवारिक सुख मिलता नहीं था। उसकी पत्नी भी हर बात पर चिल्ला उठती थी।

ऐसे हालात में उस मुसलमान को वणिक के जीवन में दृष्टिगोचर होते सुख और शांति से ईर्षा होने लगी। वह उसे

गालीगलौज करने तो कभी, झगड़ा और कभी कभी लड़ने पर भी उतारू होने लगा।

बनिया उस मुसलमान के ऐसे व्यवहार से अत्यंत त्रस्त हो गया। उससे झगड़ा करने में समझदारीवाली बात नहीं थी। यह बात वह भलीभांति समझता था। यदि टकराया भी जाए तो बनिए की पराजय निश्चित थी लेकिन बनिया बहुत बुद्धिमान था। जबकि मुसलमान बुद्धि के नाम पर दिवालिया था।

बनिए ने बुद्धिपूर्वक ऐसी योजना की कि उसमें उस मुसलमान का सारा धन खत्म हो जाए। यदि वह धन से बारबाद हो जाए तो वह एकदम सीधा हो जाए। उसके बाद तो तकरार या मारपीट कुछ भी नहीं कर सकेगा।

दूसरी रात ग्यारह बजे बनिए ने उस मुसलमान को सुनायी दे ऐसी ऊंची आवाज में पत्नी से कहा ''अरी! सो रही हो या जग रही हो। जग रही हो ना? मैं एक गंभीर बात तुमसे कहना चाहता हूँ।'' तुम ध्यान से सुनो। यदि तुमने किसी को बता दिया तो मेरी बाजी पलट जाएगी।

बात ऐसी है कि हमारे सामने जो मुसलमान रहता है, वह मुझे बहुत परेशान कर रहा है। राह चलते चलते मिल जाता है तो मुझे बहुत गंदी गंदी गालियां सुनाता है। मुझे पीटने तथा मार डालने की धमकी अक्सर देता रहता है। इस स्थिति को देखते हुए मैंने आज चार गुंडों को भाड़े पर रख लिया है। वे गुप्त रूप से मेरे आसपास रहेंगे और मेरी हिफाजत करेंगे। इस बात की भनक उस मुसलमान को नही होनी चाहिए। तुम सावधान रहना। तुम अपनी सखी से भी यह बात नही कहना।''

उस मुसलमान ने यह सारी बात अपनी खिड़की में खड़े खड़े बराबर ध्यान से सुनी। वह तो अंदर ही अंदर जल उठा। दूसरे ही दिन उसने आठ गुंडे भाड़े पर रख लिए,वह भी ऊंचा वेतन देकर वैसे वह मुसलमान कुछ ज्यादा पैसेवाला था। इसलिए उसे ज्यादा पैसे खर्च करने में कोई परेशानी होनेवाली नहीं थी। इन आठ गुंडों ने तो पहले ही दिन उस मुसलमान को दांट–फटकारकर तनख्वाह से दुगुने पैसे शराब पीने तथा होटल का खाने के लिए ऐंठ लिए। यह खर्च उसे भारी पड गया।

चार दिन बीत गए। पुन: रात्री के ग्यारह बजे बनिए ने अपनी पत्नी से कहा, '' अरे ! तुम जग रही हो या सो रही हो? जरा ध्यान से सुनना। पता नही, उस मुसलमान ने हमारी बात कैसे सुन ली और उसने तो गजब ढा लिया। हमने चार गुंडे रखे तो उसने आठ गुंडे रख लिए। अब तो मेरे लिए भारी मुसीबत हो गई है! वह तो ठहरा धनवान और

हम तो रहे गरीब! पर अब तो कर्ज उठाकर भी गुंडों की तादाद बढानी होगी। आज मैंने कर्ज उठाकर पैसे पहले देकर बारह गुंडे रख लिए हैं। देखना;तुम यह बात नींद में भी नहीं बोल देना अन्यथा वह चौबीस गुंडे रख लेगा क्योंकि उसे पैसों की तनिक भी दरकार नहीं है।सुना है ,वह तो गुंडों को औरत और शराब दोनों देता है!''

ए सारी बातें बनिया जानबूझकर खूब ऊंची आवाज में बोलता था। इसलिए उस मुसलमान ने सब सुन लिया। उसने मूंछों पर ताव दिया। बाद में अपनी दाढ़ी को हाथ से सहलाते हुए बोला,''हम भी किसी से कम नहीं हैं।''

दूसरे ही दिन उसने गुंडों की तादाद चौबीस कर दी। उसका रोज का खर्च बढ़ गया। आठ दिन बाद बनिए ने पुन: उसी नाटक को दोहराया और बत्तीस गुंडे रख लेने की बात पत्नी से कही।

उस मुसलमान ने गुंडों की संख्या चौसठ की कर दी। लगातार छह महीने तक चौसठ गुंडों की चढ़ती हुई तनख्वाह और औरतखोरी तथा शराब आदि की बादशाही सुविधा देने के प्रयत्न में तिजौरी खाली कर दी और कर्जदार हो गया।

एक दिन वह व्यग्र हुआ। बनिया लड़ता नहीं है और सैनिकों की तादाद बढ़ाए जा रहा है। यह बात मुसलमान के लिए असह्य थी। सारा धन खर्च हो जाने के कारण वह ढीला पड़ गया। उसका रुआब तो पता नही कहाँ दफन हो गया। उसने एक दिन अधीर होकर रास्ते में बनिए की गरदन पकड़कर पूछा,''आओ बनिया! लड़ना है? अब तो बहुत समय बीत गया। बेकार में क्यों डरा रहा है? आ जा मैदान में और बुला अपने गुंडों को?''

बनिए ने कहा,'' मियाजी! कैसे गुंडे और कैसी बात? मैंने तो एक भी गुंडे को किराए पर नही रखा है। यह तो मैं अपनी पत्नी को यूंही कह रहा था। अन्यथा ऐसा कुछ नहीं है। हम दोनों तो मित्र हैं।''

बेचारा वह मुसलमान! अब करे तो भी क्या? गुंडों को छोड़ दिया उसकी पूरी जिंदगी कर्ज चुकाने में ही बरबाद हो गई और हमेशा के लिए निरुपद्रवी हो गया।

67. सात्विक सेठ सुदर्शन

एक नगरी थी। उसका नाम चंपावती था। उस नगरी में ऋषभदास नामक सेठ रहते थे। उनके नौकर का नाम सुभग था। वह सेठ की बकरियाँ,गाय तथा भेड़ें चराने का काम करता था।

एक दिन वह जंगल में मवेशियों को चराने के लिए गया था। माघ महिने की कड़ाके की ठंड थी। रोज जिस पेड़ के नीचे वह डिब्बा खोलकर रोटी और मिर्च खाकर आराम करता था, उस पेड़ के नीचे किसी मुनि को ध्यानस्थ अवस्था में खड़े देखा। उनकी देह पर बहुत कम और फटे वस्त्रों को देख उसे इस कड़ाके की ठंड को सहन कर रहे मुनि के प्रति परम बहुमान का भाव अनुभव किया।

दूसरे दिन जब वह पुन: उन मवेशियों को लेकर वहाँ गया तब भी उस मुनि को वहीं खड़े देख वह तो चकित रह गया। सारी रात तेज बर्फीली हवा वाली ठंड में वे अचल खड़े रहे। यह देखकर सुभग उनके सामने बैठकर अविरत प्रणाम करता रहा।

एकाएक नमो अरिहंताणम' बोलकर बोलकर उस मुनि ने आकाश में उड़ान भरी। यह देखकर सुभग तो आश्चर्यमुग्ध हो गया। वह पद उसे बराबर याद रह गया। शाम को जब अपने घर पहुंचा तब तक वह उस पद का लगातार स्मरण करता रहा। ऋषभदास जैन थे। उन्होंने सुभग से पूछा कि यह मंत्र तुम कहाँ से सीखे? सुभग ने सारी बात खुलकर बताते हुए कहा कि इस मंत्र से उड़ने की शक्ति मिलती हो ऐसा लगता है। वह साधु तो उस मंत्र का पाठ करके आकाश में उड गया।

ऋषभदास ने उसे नवकार मंत्र सिखाया और समझाया कि वह इस मंत्र का विशुद्ध कपड़ों में ही पाठ करे। सेठ ने उसे समझाया कि इस मंत्र में तो मोक्ष दिलाने की बड़ी ताकत है ;मात्र आकाश में उड़ने की ही नहीं।''

सुभग को तो इस मंत्र की आदत लग गई। अजपाजप सा वह मंत्र हो गया।

एक समय की बात है। भरपूर बरसाती मौसम था। नदी के एक किनारे मवेशियों को दूर खुले चरते छोडकर सुभग दूसरे किनारे पर पेड़ के नीचे आराम कर रहा था कि भारी बरसात होने लगी। देखते ही देखते नदी तो दो किनारे बहने लगी। सुभग तो सामनेवाले किनारे पर चारा चर रहे मवेशियों को लेकर चिंता में पड़ गया। अब वहाँ कैसे पहुंचा जाए? उसने सोचा कि मेरे मंत्र में उडाने की शक्ति है। तो इसी मंत्र का पाठ करके आकाश में कूद जाऊँ और नदी को पार करके समानेवाले किनारे पहुँच जाऊँ।

उसने हकीकत में ऐसा किया। बेचारा सुभग उड तो नहीं सका लेकिन नदी की बाढ़ में जा गिरा। उस वक्त वह लोहे की खींचे जा रहे तीखी धारवाले लकड़े पर जा गिरा और उसका पेट चीर गया। उस वक्त भी वह आखिर तक

नमो अरिहंताणम' पद का अविरत स्मरण करता रहा और मर गया।

शुभ ध्यान में मरकर सुभग ने अब उत्तम कोटि के किसी जैन कुल में सुदर्शन के नाम से जन्म लिया। उसका जीवन सदाचारयुक्त था। वह अत्यंत रूपवान था। उसका एक जिगरी मित्र था–उसका नाम कपिल था। कपिल अपने इस मित्र के प्रति इतना तो खुश था कि उसके गुण गाते हुए,उसके रूप लावण्यका वर्णन करते हुए वह कभी भी अघाता नहीं था।

उसने बारंबार अपनी पत्नी कपिला के समक्ष सुदर्शन के रूप और लावण्य के जब बहुत बखान किए तब कपिला उसके प्रति कामुक हो गई। एक दिन दोपहर में वह मौका देखकर अकेली सुदर्शन के घर गई। गंभीरता के भाव धारण करके उसने कहा कि आप जल्दी मेरे घर चलिए। तुम्हारे भाई यकायक ही आखिरी सांस ले रहे हैं।''

इस बात को सत्य मानकर सुदर्शन कपिला के साथ बेतहासा दौड़ता हुआ कपिला के घर पहुंचा कपिला उसे घर के भीतरी कमरे में ले गई। अंदर से दरवाजा बंद किया। खुलकर हंसते हुए उसने कहा कि,'' तुम्हारे भाई तो स्वस्थ हैं। दुकान गए हैं। मैं ही मन से बीमार हुई हूँ। मेरे मन में आपके प्रति तीव्र वासना तीव्र वासना जागी है। आओ। अब हम दिल खोलकर मस्ती करें। ''

यह नाटक देखकर सुदर्शन तो एकदम स्तब्ध रह गया। उसे यह दुराचार किसी भी दशा में स्वीकार्य नहीं था।

एकाएक उसके मन में विचार आया। उसने गंभीरता होकर कपिला से कहा कि 'अरी ! ऐसी बात थी तो मुझे पहले से ही कहना चाहिए था ना? परेशानी तो नहीं होती।'' ऐसा कहकर उसने कपिला के कान में कहा,'' मैं तो एकदम नपुंसक हूँ। तुम मेरे साथ क्या मस्ती करोगी।''

यह सुनकर कपिला सुस्त पड़ गई!

एक ही क्षण में उसने सुदर्शन को बिदा कर दिया!

क्या सुदर्शन ने झूठ कहा था ! ना...सुदर्शन सच में परस्त्री के लिए नपुंसक था। उसने कपिला से सच ही कहा था। उस दिन के कटु अनुभव को लक्ष्य में लेकर सुदर्शन ने प्रतिज्ञा की कि मैं किसी भी पराए घर अकेला नहीं जाऊंगा।''

एकबार नगर में इंद्रमहोत्सव था। सारे नगरजन सपरिवार सुंदर वस्त्रों में सज्ज होकर उद्यान आदि में घूमने के लिए निकले थे।

सुदर्शन भी अपनी पत्नी मनोरमा और उसकी छह संतानों के साथ घूमने के लिए निकला था। उस समय बग्गी पर आरूढ़ होकर रानी अभया; उस कपिला दासी के साथ सामने से आ रही थी। कपिला ने सुदर्शन को देखा पर ठीक से पहचान नही पाने पर उसने रानी से परिचय पाया। रानी अभया ने कहा कि ए तो हमारे गाँव के बहुत महान सेठ सुदर्शन हैं। उनके साथ उनकी पत्नी मनोरमा और उनकी संतानें हैं।''

यह वाकई सुनकर कपिला चौंक गई। उसका मन विह्वल हो उठा। वह मन ही मन बोली ,'' अरे ! क्या नपुंसक के संतान हो सकती है?''

कपिला के मुख पर मूढ़ता के भाव देखकर अभया ने उससे पूछा कि,'' किस सोच में पड़ गई हो?''

कपिला ने अपने मन की बात कही। स्वयं रचित फरेब की बात भी कही। अभया हंस दी। उसने कहा कि सुदर्शन तुम्हें उल्लू बना गया।

कपिला ने कहा कि तो क्या आप में इतनी ताकत है?आप यदि उसे उल्लू बना दो तो मानूँ। वह भी खुडूस है। मेरे आपके जैसे अनेकों को म्हात कर दे ऐसा है।

उसी क्षण अभया ने सुदर्शन को फँसाकर शीलभ्रष्ट करने का निर्णय कर लिया। उसने कपिला से कहा कि यदि मैंने सुदर्शन को अत्यल्प समय में भ्रष्ट नहीं किया तो मैं अग्निप्रवेश कर लूँगी।''

अभया रानी ने सारी बात धायमाँ से कही। कोई प्रपंच रचाकर सुदर्शन को उसमें फंसा देने की उसने बहुत जिद की तो उसने मजबूर होकर वह काम हाथ पर लिया। निकट भविष्य में ही कौमुदी महोत्सव और अमावसी चतुर्दशी एक ही दिन पड़ रहे थे। धायमाता ने उस दिन इस काम को अंजाम देने का विचार किया क्योंकि सुदर्शन उस दिन कौमुदी महोत्सव में भाग नहीं लेता और अकेले ही घर में रहकर पौषध व्रत में रहता है, यह बात निश्चित थी। धायमाता ने रोज बनावटी मूर्तियाँ कपड़े में लपेटकर –यक्षपूजा के बहाने अंत:पुर में लाने–ले जाना शुरू किया। चौकीदारों ने इस बात को गंभीरता से नही लिया।

कौमुदी महोत्सव के दिन रानी अभया ने अपनी शिरोवेदना का बहाना करके उसने राजा के साथ उद्यान में न जाकर अकेली ही अंत:पुर में रही।

पौषध में कायोत्सर्ग की ध्यानमुद्रा मे खड़े सेठ को बांधकर,चारों ओर से कपडों में लपेटकर अंत:पुर में लाया गया। अभया और सुदर्शन एक ही कमरे में बंद हुए। सेठ तो काउसग्ग की मुद्रा में खड़े रहे। न कुछ बोलते ही थे या कुछ करते ही थे। अभया ने काम

–वासना से प्रेरित होकर न करने जैसा सब कर दिया लेकिन उसे निष्फलता हाथ लगी। सेठ टस से मस नही हुए।

अब अभया का काम क्रोध में रूपांतरित हुआ। सेठ को कलंकित करने का उसने संकल्प किया और अपने चेहरे आदि को खुद ही खुरचकर चीखने–चिल्लाने लगी, '' बचाओ,बचाओ। सुदर्शन मेरे साथ बलात्कार करने की कोशिश कर रहा है।'' यह सुनकर चौकीदार दौड़े चले आए। सेठ को कसकर बांध लिया। राजा के आ जाने पर सेठ को राजसभा में हाजिर किया गया। राजा तो इस घटना को मान ही नहीं रहे थे क्योंकि वे सेठ की सदाचारिता से भलीभाँति परिचित थे। चौकीदारों ने सारी बात बताई तब राजा ने सेठ से पूछा कि सेठ क्या तुमने हकीकत में ऐसा अकार्य किया है?

तुम किस लिए अंत:पुर मे आए। तुम्हारे बारे में ए सारी बातें मानी नहीं जा सकती।''पर सेठ ने कोई जवाब देने के बदले मौन रहना पसंद किया क्योंकि सेठ जानते थे कि सच बोलने से राजा अभया को जान से मार डालेंगे। सेठ के दिल में अभया के लिए अपर करुणा भाव छलक रहा था !

राजा ने बारबार उलटा–उलटकर पूछा,पर सेठ ने तो मौन ही धारण कर लिया। तब राजा ने कहा कि,''अब तो मुझे न्याय करना ही होगा, तुम मौन रहकर अपने कुकर्म का स्वीकार कर रहे हो। तुम्हारे ऐसे कर्म के लिए मैं तुम्हें फांसी का दंड दे रहा हूँ।''

इस दण्ड की खबर जब सारे नगर में फैलते ही सारे नगर में सन्नाटा छा गया। एक भी नगरजन सेठ के ऐसे कुकर्म की संभावना का स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था। लोग राजा के विरुद्ध बगावत कर दे ऐसी स्थिति का निर्माण हो गया था।

अत: जब सेठ को राजमार्ग पर से वध–स्तम्भ ले जाया गया तब राजा के कर्मचारी लगातार एक ही बात प्रजाजनों से चीख चीखकर कहते रहे कि सेठ सुदर्शन के चारित्र में ऐसी कोई बात संभव नहीं है;लेकिन सेठ सच कहने के लिए राजी ही नहीं है। मौन रहते हैं। अत: न्याय को अपने ढंग से काम करने के लिए कोई चारा ही नहीं रहा है,राजा साहब भी सेठ के मौन से बहुत दु:खी हैं।''

इस तरफ सुदर्शन की शीलवती पत्नी मनोरमा ने,पति जबतक आफत से मुक्त नहीं हो जाते तब तक काऊसग्ग चालु कर दिया। शीलवती मनोरमा की तन्मयता के भाव सहित काऊसग्ग से शासनदेवी का सिंहासन चलायमन होने लगा। ज्ञानबल से सारी बात जानकार शासनदेवी दौड़ी चली आयीं। शूली पर अभी अभी चढाए गए सुदर्शन सेठ सिंहासन पर आरूढ हो गए। शूली से सिंहासन हो गया। राजा को खून की ऊलटी के साथ जमीन पर पटक दिया गया।

प्रजा ने सुदर्शन का जय जयकर किया। अभया रानी को अंत:पुर में इस चमत्कार की खबर मिलते ही घबड़ा गई और उसने फांसा खाकर आत्महत्या कर ली। राजा के आग्रहवश होकर सुदर्शन ने सिलसिलावर सारा घटनाक्रम सुनाया।

महासत्वशाली जीवों को शासन अवहेलना का भी भय नहीं होता क्योंकि उनका सत्व शासन अवहेलना को उपेक्षित कर शासन प्रभावना के शिखर को स्पर्शित कर लेता है। अन्यथा अल्पसत्वी जीवों से सुदर्शन का दृष्टांत लेने का साहस नही किया जा सकता।

68. महाकवि माघ

कवि माघ के पिता खर्बोपति थे। उन्होंने स्वर्ग को धरती पर उतार दिया था। ऐसे समय में माघ का जन्म हुआ था। जन्म के कुछ महीनों बाद उनके पिता ने भारत विख्यात चार महाज्योतिषियों को बुलाकर माघ की जन्म कुंडली देकर फलादेश सुनाने की बिनती की।

ज्योतिषियों ने कुंडली को देखा। जैसे जैसे वे कुंडली देखते गए वैसे वैसे उसके शुभ ग्रहों का अत्यंत उत्कट

बल देखकर अति प्रसन्न होने के साथ साथ आश्चर्यमुग्ध होते गए।कुंडली के विषय में वे परस्पर जो चर्चा वे कर रहे थे उससे उसके पिता को यह अहसास हो गया था कि मेरी संतान दुनिया में मेरा नाम रोशन करेगी।

एकाध घंटा बीत गया। सूक्ष्म गणित तैयार हुआ। यकायक एक ज्योतिषी ने अपने मित्रों को सुझाव देते हुए एक स्थान पर अपनी ऊँगली रखकर उसके बारे में सोचने के लिए कहा और...उस विचार में आगे बढ़ने पर चारों ज्योतिषियों के मुख पर अकल ऐसी गंभीरता छा गई। उनके मन पर उद्वेग छा गया! कुछ देर बाद निश्वास डाला!

बालक के पिता ने उनसे पूछा कि क्या लगता है? यकायक आपकी खुशी में कमी क्यों आ गई। जो भी हो, मुझे स्पष्ट भाषा में कहें। मेरे उद्वेग की आप तनिक भी चिंता किए बिना अच्छा–बुरा सारा फलादेश मुझे बताओ।''

मुख्य ज्योतिषी ने अन्य सभी ज्योतिषियों की ओर से बात का प्रारम्भ करते हुए कहा कि यह बालक विश्वविख्यात कवि होगा। वह अपने युग का बेजोड़ कवि होगा। उसे अपूर्व आदर,सम्मान,यश,कीर्ति सब कुछ विपुल मात्रा में मिलेगा। वह आपकी बेशुमार संपत्ति का भोक्ता होगा। स्वर्ग के इंद्र सा वैभवी जीवन वह हमेशा जिएगा। उसका जीवन हर तरह से आनंदमाय होगा। उसे उसकी जीवनसंगिनी तथा संतानों की ओर से सम्पूर्ण सुख मिलेगा परंतु इस जातक का जब अंत समय आएगा तब वह नितांत भिखारी सी दशा में होगा तब उसके दोनों पैर के घुटनों में वातव्याधि होगी। किसी आघात के कारण उसकी मृत्यु एक ही क्षण में हो जाएगी।''

ज्योतिषी ने कहा,''भाई! सब कुछ अच्छा फिरभी अंत जरा भी ठीक नहीं है।'' दरिद्रता,वातव्याधि और ठेस...उसके अंत समय में उसके पास खड़े होंगे। बस, इस भावी को ग्रहों में देखकर हमारी उछलती–कूदती प्रसन्नता एकदम कम हो गई। इसके अतिरिक्त और कोई वजह नहीं है।

यह सुनकर माघ के पिता खड़खडाकर हंस दिए। उन्होंने ज्योतिषियों से पहले तो यह कहा कि वे कोई सर्वज्ञ तो हैं नहीं कि उनकी कही गई सारी बातें अक्षरस: सच ही निकलें। उपरांत इस बात के सत्य होने की संभावना इस लिए नहीं है कि उसके पास जो धन है,वह अपार धन है। बेटा चाहे कितना ही धन उड़ाए तथापि उसकी सौ वर्ष की अवस्था तक कम नहीं होनेवाला।

उन्होंने ज्योतिषियों से सवाल किया किइस जातक का आयुष्य कितने बरसों का है?''

ज्योतिषियों ने सोच–विचारकर जवाब दिया– पचहत्तर से अस्सी वर्ष तक''

तो बस...अब मुझे कोई चिंता नहीं। आपके द्वारा देखे गए इस जातक के ललाट के लेख पर मैं उल्टा कर दूंगा।'' संपत्ति के नशे में मत्त पिता ने फट से कह दिया।

प्रणाम करके खड़े होते हुए ज्योतिषियों ने कहा,'' ठीक है, होनी तो होकर रहेगी ही उसे कोई नहीं टाल सकता लेकिन हम भी कोई आलतू–फालतू ज्योतिषी नहीं हैं। हमारी देखी हुई नियति को मिथ्या करने का काम यदि कोई संपत्ति के बल पर करना चाहता हो तो यह उसका अतिरेकी आत्मविश्वास है!''

भारी खुमारी के साथ इतना कहकर ज्योतिषियों ने बिदा ली। बालक तो बड़ा होने लगा। समय को बीतते कहाँ देर लगती है। माघ सोलह वर्षीय किशोर हो गया। पिता ने मृत्युशैय्या पकड़ ली। मृत्यु एकदम निकट देखकर पिता ने माघ को बुलाकर कहा।बेटा! तुम्हारी कुण्डलीके आधार पर ज्योतिषियों ने तुम्हारा अंतसमय अत्यंत खराब बताया है। इसके लिए मैंने जो व्यवस्था की है ,उसे तुम ठीक से सुन–समझ लो।'' अपने बड़े खेत में खास जगह पर मैंने छत्तीसहजार कुम्भ गाड़े हैं। हरएक कुम्भ में लाखों रुपयों की ज़र–जवाहिरात तथा सोना आदि है। यदि तुम्हारी आयु एकसौ वर्ष की हो तो उसके छत्तीसहजार दिन होते हैं। तुम यदि रोज एक कुम्भ निकालो और उसमें रही सारी संपत्ति एक ही दिन में खर्च कर दो तो भी तुम्हारे नहीं रहने के बाद अनेक कुम्भ जमीन में गाड़े हुए अकबंद शेष रहेंगे। इस प्रकार तुम्हारे अंतकाल की भिखारी जैसी हालत का पूर्वानुमान असंभव हो जाए। तुम आनंदपूर्वक जीना। ऐसा कहकर आशीर्वाद देकर पिता ने प्राण त्याग कर दिए।

अति धनवान पिता के गर्भश्रीमंत लाडले बेटे माघ का संसार वैभवी जीवन में आकंठ डूब गया।

पर सबूर! वह जितना भोगी था,उससे कहीं ज्यादा दानी था। गरीबों का वह मसीहा था। उसमें जो करुणाभाव था, वह स्वाभाविक था वह आत्मसात हो गया था। चाहे कैसी भी मूल्यवान वस्तु हो उसे दे देने में देर नहीं लगती थी।

उसकी रसोई में नितनए अपूर्व व्यंजन पकते थे। उसका महल तत्कालीन राजा भोज के महल से कईं गुना बढ़कर था। उसके उपवन में छहों ऋतु के फूल होते थे। इत्र के हौज में वह स्नान करता था। गुलाब की शैय्या पर वह शयन करता था। पसीना क्या चीज है, उसका तो उसे कोई अंदाज ही नहीं था।

उसके ऐसे अभेद्य वैभव के बारे में जानकर, उसे देखने के लिए राजा भोज उसका मेहमान हुआ। दो ही दिन के लिए आए भोज पूरे पंद्रह दिन रहे। बिदा के वक्त राजन ने उसे अपने महल का आतिथ्य स्वीकार करने के लिए आग्रह किया। माघ ने उसका अनमने भाव से स्वीकार किया लेकिन राजा भोज के महल की मदमस्त वैभवी हवा में माघ रात्री के दो बजे तक सो नहीं पाया। मेहमान को देखने के लिए रात्री वेला में आए राजा भोज ने माघ को शैय्या पर करवटें बदलते देख पूछा कि माघ क्या अभी तक नींद नहीं आ रही है?

जी ना...मुझे अभी अपने घर जाने देने की कृपा करें। मुझे यहाँ बिलकुल नहीं जमेगा।''

आश्चर्यचकित हुए राजा ने माघ को दु:खी मन से बिदा किया। उसकी दौड़ी जा रही बग्गी को देखकर उन्होंने मन ही मन कहा,''वाह रे कमाल...मेरे राजसी ठाट का वैभव भी इस पुण्यशाली को फीका लगता है।''

ऐसा धनवान था माघ!

वह दयावान था। उसके पास अनेक याचक आते थे। माघ को वे अपने पिता समान मानते थे। याचक जो चाहे मांगता था और माघ उसे जितना चाहे दे देता था। यदि इस संसार में कोई दाता है तो लेनेवालों की कमी नहीं होती।

दैवी वैभवों में जीते और दान की असखलित धारा बहा रहे माघ के लिए प्रतिदिन एकाध, दो कुम्भ तो कम ही पड़ते थे! शुरुआती दौर में पाँच,बाद में दस–बीस,और बाद में तो पचास साठ कुम्भ धरती से निकलते गए। पिता के क्रमबद्ध गणित को माघ ने भविष्य की चिंता किए बिना ऊल्टा कर दिया।

विपुल वैभव और स्वभावसिद्ध करुणा के साथ माघ में कवित्व शक्ति बचपन से ही खिल चुकी थी। उम्र के बढ़ते यह शक्ति बहुत विकसीत हुई। वह अनुपम और अदभूत काव्यों का शृंखलाबद्ध रूप से सृजन करते गए विद्वज्जन उनके काव्यों का रसपान करने के लिए सदैव अतृप्त रहते थे पर आखिरकार उस नियति ने तो द्वार पर दस्तक दे ही दी।

छत्तीसहजार कुम्भ तो धरती से निकाल लिए गए और सब खत्म भी हो गया। वैभवी महल को भी बेच डाला। पत्नी के सोने के दो कंकणों के अतिरिक्त सबकुछ याचकों को दे दिया गया।

एक बार मध्यकालीन रात्री वेला में दौड़े चले आए आँसू बहा रहे याचक की याचना के समक्ष (आर्द्र)गदगद हुए

कविराज ने गहरी नींद सोयी पत्नी का एक हाथ धीरे से ऊपर उठाकर एक सुवर्ण कंकण निकालकर उस याचक को दे दिया। एकाएक चौंक उठी पत्नी की समझ में आ जाने पर उसने अपने पति से कहा कि प्रियतम! एक सुवर्ण कंकण से वह याचक अपनी पुत्री की शादी का व्यवहार कैसे कर पाएगा? लीजिए,यह दूसरा कंकण भी उसे दे दीजिए।''

और इस प्रकार अनुपम वैभव के शेष रहे अवशेष भी नामशेष हो गए।

अब खाने के लिए अनाज नहीं है। बच्चों को पिलाने के लिए दूध भी नहीं है। पत्नी ने सारी बात समझा दी।

कविवर ने एक रास्ता निकाला। राजा भोज पंडितों की काव्य रचना का आदर–सम्मान बहुत करते थे। अभी अभी कविराज ने शिशुपाल वध' नामक संस्कृत काव्य का सृजन किया था। वे उस काव्य की पाण्डुलिपि लेकर सपत्नीक बड़ी मुश्किल से धारा नगरी गए। दोनों पैरों के घुटनों में वातव्याधि हुई थी। चलने में बड़ा कष्ट होता था।

कविवर ने पत्नी को राजसभा में भेजा। खुद नगर के बाहर की धर्मशाला में रहे।

माघपत्नी को दूर से देखते ही ,उनके घर पंद्रह दिन के आतिथ्य का आनंद लूट चुके भोज ने ऊंची आवाज में कहा ,'' अरे माँ! आप! आप यहाँ कैसे?''

सभा में मंद–मंथर गति से चली आ रही माघपत्नी की ओर नखशिख नजर डालते हुए राजा भोज की समझ में आ गया कि वे गरीबी की भयानक मार के शिकार हैं!

माघपत्नी ने पाण्डुलिपि राजा के हाथ में रखी। राजा ने पूछा– कविराज कहाँ हैं?''

बाहर की धर्मशाला में हैं। वे यहाँ नहीं आएंगे।'' माघपत्नी के इन शब्दों को सुनकर राजा के दिल पर बड़ा धक्का पहुंचा।अरे! बात यहाँ तक बिगड़ गई है और मैंने कोई दरकार नही की।''राजा का मन राजा को पीड़ा पहुँचाने लगा।

राजा ने पंडित सभा को वह पाण्डुलिपि देते हुए कहा कि ,'' महाकवि माघ की यह रचना है। उसका सम्मान कैसे किया जाए,यह मुझे समझाइए।''

महापंडितों ने आगे–पीछे के श्लोक देखे। रचना का अदभुत कौशल देखकर उनके मस्तक डोलने लगे। राजा से कहा कि '' इस कवि की कद्रदानी करनी हो तो आपका पूरा खजाना भी कम पड़ेगा।'' तो अब क्या किया जाए?

मुझे रास्ता दिखाइए।'' आश्चर्यचकित हुए राजा ने पंडितों से कहा।

राजन! इस काव्य के किसी एक श्लोक के लिए आपका खजाना भेंट किया तो जा सकता है परंतु उसके बाद तो आपको भगवे वस्त्र धारण करने पड़ेंगे; जो ठीक नहीं है। अत: आप उदय रश्मि'श्लोक के चौथे चरण–हत–विधिलसितानाम हि विचित्रो विपाक:''में जिस ढंग से हि' अव्यय की गज़ब की योजना करके श्लोक के अर्थ में जिस धमक का प्रकाशन किया है , उसकी कद्र कीजिए। कद्र के रूप में माघ पत्नी को चारलाख सोनामुहरें समर्पित करना सर्वथा उचित कहलाएगा।''और तुरंत माघपत्नी के चरणों में चारलाख सोनामुहरें अर्पित की गईं !

सेवकों द्वारा थैलियाँ उठवाकर माघपत्नी ने बिदा ली। नगर के बाहर आई धर्मशाला की दिशा में पति से सानंद मिलने के लिए प्रस्थान कर लिया। राजमहल के बाहर निकलते ही सैंकड़ों याचक खड़े मिले। माँ! माँ! मुझे दीजिए... मुझे दीजिए''की आवाजें चारोओर से आने लगी। माँ दिल खोलकर अंजुरी भर भरकर सोनामुहरें देने लगीं। ऐसा करते करते जब वे धर्मशाला के पास आ गईं तब एक भी सोनामुहर बची नहीं थी। कविराज चौकी पर सहारा लिए खड़े खड़े देख रहे थे की पत्नी गरीबों को बेफहम होकर दे रही हैं। वे बहुत प्रसन्न हुए। ज़ोर ज़ोर से हंसने लगे और कहने लगे ,''वाह ! बहुत अच्छा ! दे दो,बराबर देना। एक भी याचक वंचित नहीं चाहिए।'' हमें तो और बहुत कहीं से भी मिल जाएगा पर इन लोगों का कौन?

पत्नी खाली हाथ धर्मशाला की चौकी पर चढ़ी, दोनों इस रिक्तता को लेकर अफसोस मुक्त थे।

दोनों पतिपत्नी धर्मशाला के कमरे में बैठे, कविराज ने कमरे का दरवाजा अंदर से बंद किया। पत्नी से आराम करने के लिए कहा। पेट के गड्ढे को दो–तीन लोटे पानी डालकर भर लिया! और किसी ने दरवाजा खटखटाया।माँ ! ओ माँ! मैं तो वंचित रह गया। बाहर गाँव जाने के कारण मुझे कुछ भी मिला नहीं है। मुझे कुछ दो। मैं बहुत गरीब हूँ।''

कविराज पत्नी की ओर देखने लगा। तन को छिपाने के लिए फटे हुए वस्त्र के अतिरिक्त और कुछ बचा नहीं था। कविराज को बहुत दु:ख हुआ। उसने प्राणों को संबोधित करते हुए कहा,''हे प्राण! यदि यह याचक मुझ से कुछ पाए बिना मेरे कमरे से बाहर निकलनेवाला है तो बेहतर यह होगा कि उससे पहले आप ही मेरी देह से बाहर निकाल लो!'' और दूसरे ही क्षण महाकवि माघ की देह अचेत होकर जमीन पर ढल गई।

हंस उड गया। पिंजड़ा रह गया !

69. भोगादि चार योग

फ्रांस देश की यह घटना है। एकबार उस देश पर भारी मुसीबत आ गई। विदेश जा रहे जहाज समुद्र में यूरी नामक टापू के पास आते ही उसका कोई पत्ता नहीं लगता था। पता नहीं ए जहाज कहाँ गायब हो जाते होंगे?

फ्रांस का राजा चिंताग्रसित हो गया। व्यापारियों को समुद्र पार माल–सामग्री भरकर बेचने के लिए जाना बंद कर देने से प्रजा का व्यवसाय खत्म हो गया। राजा की आय भी बंद पड गई।

राजा ने नगर के बुद्धिमान और साहसी लोग तथा मल्लाहों को इकट्ठा किया। सब के समक्ष बात रखी गई। एक बुजुर्ग मल्लाह ने कहा कि,''वह इतना तो अवश्य जानता है कि समुद्र में जो यूरी टापू है, वहाँ अदभूत संगीत चलता है। शायद उस संगीत के आकर्षण से नाविक उस टापू की ओर जाने के लिए लालायित होते हों और बाद में उनको पकड़ लिया जाता हो,या मौत के हवाले कर दिए जाते हों।''

मल्लाह बूढ़ा आदमी था लेकिन बड़ा पहुंचा हुआ था। उसने सैकड़ो बार समुद्र यात्रा की थी। उपरांत वह बहुत चालाक,गंभीर और चतुर था। अत: सबने उसकी बात का स्वीकार कर लेने के साथ विचार–विमर्श शुरू किया।

काफी सोच विचार के उपरांत यह निश्चित हुआ कि कुछ साहसी तैयार होकर उस टापू से गुजरें और वहाँ से गुजरते समय क्या घटना घटती है? कैसी अनुभूति होती है! इत्यादि सारी जानकारी प्राप्त की जाए। उस संगीत से जरा भी ललचाए नहीं या उसके प्रभाव में बहें नहीं और टापू पार करके सामनेवाले किनारे पर जाकर वापस स्वदेश लौट आ जायें।

इस प्रकार सफल होनेवाले साहसियों के एक समूह के लिए राजा ने एकलाख सोनामुहरों का पुरस्कार घोषित किया। सारे फ्रांस में यह बात फैल गई। जेसन नामक एक साहसी तैयार हुआ। उसने दस लोगों की टुकड़ी तैयार की। जब उसने फ्रांस के समुद्र तट से बिदा ली तब राजा तथा नगर के कईं श्रेष्ठी–वर्य, पढे–लिखे लोग, साहसी तथा मल्लाह उपस्थित रहे। जेसन की टुकड़ी को भावभीनी बिदाई दी गई। टुकड़ी के प्रत्येक सदस्य का विशाल परिवार भी उसकी बिदाई के लिए उपस्थित रहा था।

जहाज चलने लगा। पाल को खोल देने से जहाज गति में आ गया। सारे साहसी सानुकूल पवन के कारण

अत्यंत आनंदित थे। गीत गाते थे,गपशप भी हो रही थी। खाना–खुना भी चल रहा था।

और...चौथे दिन यूरी टापू दूर से दिखाई देने लगा। सारे सतर्क हो गए। टापू के काफी नजदीक पहुँचे कि टापू पर से मधुर–अति मधुर संगीत सुनाई देने लगा। इस संगीत की मधुरता के वर्णन के लिए कोई शब्द मिल नहीं रहा था, ऐसा यह दिव्य संगीत था।

बात ऐसी थी कि उस द्वीप की जो रानी थी वह स्वर्गलोक की व्यंतरी(भूतनी) कक्षा की देवी थी। वह अतिशय कामुक और मांसलोलुप थी। उस व्यंतरी ने ऐसा यह बेमिसाल संगीत अपने गन्धर्वों के पास तैयार करवाया था। जब भी टापू के पास कोई जहाज दिखे कि तुरंत यह संगीत छेड़ा जाता था। उसके मदमस्त स्वरों में सब आकर्षित होकर खो जाते थे। ए लोग उस द्वीप पर जाने के लिए अधीर हो जाते थे। द्वीप पर जहाज के लंगर डाले जाते ही व्यंतरी के सेवक सबको व्यंतरी के राजमहल में ले जाते थे। वहाँ उनका स्वागत किया जाता था। तत्पश्चात वह व्यंतरी भयावह और विकृत प्रकार की कामुकता से युक्त एक के बाद एक सब से क्रूरतापूर्ण बलात्कार करती थी। अंत में उन सब को जिंदा काटकर उनके खून और मांस की जियाफत उडाती थी और कोई बचता नहीं था।

बेचारा जेसन और बेचारे उसके साथी! संगीत के मधुर स्वरों की आहलादकता को भरसक मनाने के लिए यूरी द्वीप की ओर खींचे चले गए। सब के मन में एक ही विचार था कि संगीत के पूरा आनंद से तृप्त हो जाने के बाद उस द्वीप से बिदा हो जाना है। पर ना....यह असंभव था। पहले बताए अनुसार, व्यंतरी ने सबका उत्कृष्ट स्वागत करके खत्म कर डाला। कई दिन बीत गए। फ्रांस के राजा को जेसन की कोई खबर नहीं मिलने से उसने पुन:पूर्ववत साहसियों को इकट्ठा किया। एकलाख सोनामुहरों के लालच में पड़कर यूलीसीस नामक एक साहसी युवा इस साहस के लिए तत्पर हो गया। उसने दस युवा तैराकों की एक टुकड़ी तैयार की।

यूलीसीस ने जहाज में पर्याप्त मोम ले लिया। हरएक साहसी के दिल में एक बात बैठा दी कि द्वीप के पास संगीत सुनाई पड़ते ही सब अपने अपने कानों में अनिवार्य रूप से मोम भर लेगा। तूंस तूंसकर मोम भर लें। जिससे संगीत की आवाज सुनाई न दे।

और जहाज द्वीप के पास पहुंचा कि तुरंत संगीत की सुरावलियाँ बजने लगी। सब ने उन सुरावलियों को सुना। ए इतनी तो मधुर थी कि सब के मन में उसे सुनने और उस द्वीप की ओर जाने की तीव्र इच्छा जगी। यूलीसीस भी मन

सेविचलित हो तो गया पर वह अटल –अडिग रहा। उसने सब को अपने अपने कानों में फरजियात रूप से मोम भरवा लिया।

वह जहाज उस द्वीप को पार कर गया। सामनेवाले किनारे पर जाकर दूसरे रास्ते से वापस लौट आया।

हजारों लोगों ने यूलीसीस की टुकड़ी का स्वागत किया। यूलीसीस ने सारी बात बताई। सब इस बात से विश्वस्त हो गए कि द्वीप के सुमधुर संगीत के सुरों का आकर्षण ही सब के लिए मौत का कुआं बना हुआ है।

राजा ने यूलीसीस को एकलाख सोनामुहरों का पुरस्कार बहुत सम्मान के साथ दिया लेकिन सम्मान कार्यक्रम पूरा होने के वक्त राजा ने प्रजाजनों से कहा कि यूलीसीस ने काम तो अवश्य किया है। इसीलिए वह इनाम का हकदार हुआ है; परंतु कान में मोम भरकर, मन को मारकर यह जो काम किया है, उससे मुझे थोड़ा सा असंतोष रहा है।

जेसन तो पूरा आनंद लेने में खत्म हुआ; जबकि यूलीसीस अपनी मनोवृत्ति का दमन करके पार उतरा है। यह अंतर है अवश्य पर क्या ऐसा दमन किए बिना द्वीप के पास से नहीं निकला जा सकता? यदि ऐसा कोई उपाय है तो मैं उसे दोलाख सोनामुहरें इनाम के रूप में दूंगा।

और ...कुछ दिनों बाद आर्किमीडीस तैयार हुआ। उसने चार महीने तक फ्रांस के उस्ताद वाद्यवादकों से विशिष्ट प्रकार से रियाज कराया। अति उत्कृष्ट प्रकार के राग–रागिनियों के आधार पर कुछ गीत तैयार करवाए और सारे साजिन्दों के साथ दस उस्तादों कि टुकड़ी को लेकर वह बिदा हुआ। उसका जहाज जैसे ही उस द्वीप के निकट गया कि तुरंत उन्होंने अपना संगीत बजाना शुरू कर दिया। सारे उसमें मशगूल हो गए। उस व्यंतरी का संगीत कब शुरू हुआ उसका अंदाजा तक किसी को नहीं हुआ। जहाज सहीसलामत रूपसे द्वीप से आगे निकल गया। दूसरी दिशा से वह पुन: फ्रांस वापस लौट आया।

राजा और नगर के श्रेष्ठीवर्यों ने आर्किमीडीस का भव्य स्वागत किया। राजा ने उसे दोलाख सोनामुहरों की थैली उपहार के रूप में दी लेकिन राजा ने कहा,ऋऋबात तो बहुत सुंदर हो गई। जेसन के भोग प्रयोग और यूलीसीस के दमन प्रयोग से विषयांतर का यह भक्ति प्रयोग बेशक सुंदर है परंतु यदि ऐसा न किया जाए और द्वीप के संगीत के आकर्षण से सहज रूप से बचा जा सके ऐसा कोई रास्ता हो तो मैं उसे तीनलाख सोनामुहरें दूँ।'' और...इस काम के लिए नोस्ट्राडोमस नामक एक दार्शनिक तैयार हुआ। उसने देश के सर्वोपरि दार्शनिकों को एकत्र करके तीन

महिने तक तत्वचिंतन में व्यस्त रखा। द्वीप की व्यंतरी की दाहकता को समझाया। उसके संगीत के सुरों में मौत का अंधाकुआं दिखलाया। अपने स्वजनों को हमेशा के लिए अनाश्रित कर देने की पीड़ा को समझाया। इस प्रकार संगीत की असारता आदि सबके मन में भर दी।

उनका जहाज बिदा हुआ। द्वीप के निकट आते ही संगीत बजना शुरू हो गया। अपूर्व,अभूतपूर्व,सर्वथा अनोखे ऐसे उसके सुर थे पर सुरों का आनंद लेने के पीछे रहे विषपायी खंजर जैसे अत्यंत कटु विपाकों के अनन्य ज्ञाता (ज्ञानयोगी) थे। अत: वे आराम से तत्वचिंतन में लीन होकर ,स्वरूपरमण होकर होकर वहाँ से गुजर गए।

राजा ने नोस्ट्राडोमस का सर्वोत्कृष्ट सम्मान किया।

जेसन भोगयोगी था।

यूलीसीस दमनयोगी था।

आर्किमीडीस भक्तियोगी था।

नोस्ट्राडोमस ज्ञानयोगी था। प्रथम दो कनिष्ठ हैं। तीसरा सरल है। चौथा श्रेष्ठ है।

70. कामलक्ष्मी

एक नगर था। आर्यावर्त्त की संस्कृति के दीप उस नगर के प्रत्येक घर में प्रज्वलित हुए थे। अत्यंत ऊंचे संस्कारों से सुवासित वहाँ के युवक और युवतियाँ थीं।

उस नगर में एक ब्राह्मण परिवार रहता था। ब्राह्मण की पत्नी का नाम कामलक्ष्मी था और छोटे बेटे का नाम वेदव्यास था। तीन लोगों के इस परिवार में कुछ गरीबी अवश्य थी तो संस्कार भी थे;शांति थी;मेल था और मर्यादाएँ थीं।

कामलक्ष्मी तो आर्यवर्त्त की गौरवशाली नारी थी। उसकी पतिसेवा, घर का रख–रखाव और उसका बालसंस्करण बेजोड़ था पर कर्मराजा को ऐसा सुखपूर्ण जीवन जी रहे तीन जीवों के प्रति मानों ईर्षा हुई हो ऐसे

उनके सुख को आग लगा दी !

एक दिन की बात है। कामलक्ष्मी गाँव के बाहर कुएँ पर अपने नित्य क्रमानुसार पानी भरने के लिए गई। उसके साथ अनेक पनिहारियाँ थी। कुएँ पर से अभी पानी भरने का काम चल ही रहा था कि वहाँ यकायक दसेक हजार लोगों के अश्वारोही सैनिक दल ने आकर नगर के किले को घेर लिया। नगर के राजा ने खबर मिलते ही किले के द्वार भीतर से बंद कर लिए।

अंदर के अंदर रह गए ।

बाहर के बाहर रह गए।

वेदव्यास और उसके पिता अंदर रह गए।

कामलक्ष्मी बाहर रह गई। कर्म ने कामलक्ष्मी को अदभूत रूप दिया था। उसके अंग अंग से लावण्य टपक रहा था। इसी रूप ने उसे पछाड़ा। उसे मारा; उसके परिवार के अनूठे सुख को छिन्न–भिन्न कर दिया।

शत्रुराजा के सैनिकों ने उसे देखते ही पकड़कर राजा के समक्ष खड़ा कर दिया। राजा उससे मोहित हो गया। उसे रातोंरात भ्रष्ट कर दिया। अपनी प्रिय रानी बना दिया! शुरुआत में तो कामलक्ष्मी को उसका पति और पुत्र दोनों खूब याद आए पर वक्त ने सब भुला दिया। कामलक्ष्मी ने अपने मन को मना लिया। नियति की इच्छा का स्वीकार करते हुए उसका वैभव विलास से युक्त अत्यंत सुंदर, मोहक और मनमाना संसार चलने लगा।

बीस बरस बीत गए! भोगविलास के राजसी सुखों में आकंठ डूबी रही कामलक्ष्मी को पुन: पति और पुत्र की याद आने लगी। उनके स्मरण ने उसकी नींद को हराम कर दिया।

उसे पूरा विश्वास था कि ब्राह्मण तो अयाचकव्रत के पालक होते हैं। अत: कभी ऊपर ऊठ ही नहीं पाता। बड़ा वैभव तो स्वप्न में भी दिखाई नहीं देता। अत: उसने बड़ा सदाव्रत खुलवाया। हजारों याचक वहाँ आकर भोजनादि करते थे। लोग दूर दूर से आने लगे।

कामलक्ष्मी नित्यप्रति चार घंटे स्वयं ब्राहमनों की पूजा करने के साथ भोजनादि से उनका अतिथि सत्कार करती थी।

और...एक दिन आ गया। सैंकड़ों याचकों में उसने अपने पति तथा जवान बेटे को देखा। उसने परम संतोष अनुभव किया। अपनी मेहनत को सार्थक होने का अहसास किया।

जब पति और पुत्र कामलक्ष्मी के हाथों अनपका अन्न और अन्य सामान लेने लगे तब कामलक्ष्मी ने उनको संकेत देकर भीतर बुलाया। वे तो ऐसी महारानी के स्वरूप में कामलक्ष्मी को कैसे खोज पाते? कामलक्ष्मी ने खुद अपनी पहेचान दी। आज ही बीस बरस पहले घटी घटना के बारे में पति और पुत्र को खबर हुई। तीनों की आँखों से अश्रुधारा बह चली। पति के पैरों में गिरकर कामलक्ष्मी ने अपने अक्षम्य अपराधों के लिए माफी चाही।

भागकर कहीं मिलकर हमेशा के लिए पूर्ववत साथ रहने का निर्णय किया। रात्री के बारह बजे नगर के बाहर आए महाकाली के मंदिर के बगलवाले कमरे में मिलकर पलायन कर लेने की योजना बनाई।

शाम के वक्त कामलक्ष्मी ने राजा से कहा कि कुछ समय पूर्व आपको असह्य शरदर्द हुआ था। तब मैंने महाकाली माता की मिन्नत मानी थी कि यदि मेरे प्राणनाथ कि शिरोव्याधि कल शाम तक शांत हो जाएगी तो हम दोनों आपके दर्शनार्थ आएंगे और चुनरी ओढाएँगे। उसके बाद दूसरे ही दिन आपकी पीड़ा शांत हो गई थी तो आज रात हम महाकाली जी के समक्ष लिए गए संकल्प के अनुसार उनके मंदिर जाएंगे। ''

राजा ने सम्मति दी। दोनों घोड़े पर सवार होकर रात्री वेला में मंदिर गये। रानी राजा का आज ही जीवनांत कर देने के दृढ़ संकल्प के साथ आई थी। अत: जैसे ही राजा माताजी के प्रणाम करने के लिए झुका कि विद्युतगति से कामलक्ष्मी ने राजा के म्यान से तलवार निकालकर राजा के गले पर वार कर दिया। राजा एक ही वार से जमीन पर जा गिरा। देखते ही देखते राजा मरण की शरण में पहुँच गया।

रानी तुरंत बगलवाले कमरे में गई। दिया लेकर चारोंओर देखा तो एक पुरुष पीठ के बल सोया हुआ था। ध्यान से देखने पर पता चला कि वह सोया हुआ आदमी उसका पति था लेकिन सर्पदंश के कारण उसके शरीर में विष फैल जाने के कारण एकदम हरा पड़ गया था। पति मर चुका था।

क्षण

एकाध क्षण के लिए तो कामलक्ष्मी कर्तव्यमुढ हो गई। अब क्या किया जाए? दोनों पति तो गए। कहाँ जाया

जाए? पर वहाँ से भागे बिना कोई चारा नहीं था। अत: आभूषणों से लदे हुए शरीरवाली उस रानी ने घोड़े पर सवार होकर एडी मारकर घोड़े को वेग से दौड़ा दिया। सुबह होते होते वह वह किसी अंजान स्थान पर पहुँच गई।

सुबह होने पर उसने किसी गाँव में प्रवेश किया। सामने से एक वयस्का आ रही थी। वह चक्का थी। वह वेश्यावाड़ा चलती थी। उसने लाखों रुपयों के आभूषणों से सजी अत्यंत सुंदर कामलक्ष्मी को देखा। अपने बाड़े में यदि उसे रख लिया जाए तो भरपूर कमाई होने की संभावना उसने उसमें देखी। वह तुरंत उसके पास गई। उसे घर ले गई। स्नानादिपूर्वक उसका स्वागत किया। कामलक्ष्मी को सहारे की आवश्यकता तो थी ही। अत: वह वहाँ रह गई।

हाय! कामलक्ष्मी वेश्या हुई। दिन,महीने और साल बीत गए। एक दिन एक युवक वहाँ गया। उसकी अवस्था तीस वर्ष की थी। वह कामलक्ष्मी को पसंद आ गया। उसे कामलक्ष्मी पसंद आ गई। छह महीने तक रोज उसने कामलक्ष्मी को शैय्यासंगिनी बनाया।

अब उसको वहाँ से निकले बिना चारा नहीं था। आखिरी रात दोनों बैठे। एक दूसरे के जीवन की सम्पूर्ण कथा कह सुनाना तय हुआ। पहले कामलक्ष्मी के जार पुरुष ने अपनी जीवनकथा कहना शुरू किया। मेरा नाम वेदव्यास। मेरी माता का नाम कामलक्ष्मी...!!!''

इतना सुनते ही कामलक्ष्मी तो बिखर गई। हाय! मेरा ही पुत्र! उसके साथ व्यभिचार! धरती यदि रास्ता दे तो मैं अभी उसमें समा जाऊँ। कामलक्ष्मी को गहरी चोट लगी। बात कुछ आगे बढ़ी कि उसने कहाऋऋ मुझे बहुत शरदर्द हो रहा है। तुम जाओ,शेष सारी बातें बाद में करेंगे।''

वेदव्यास गया।

कामलक्ष्मी घर से निकलकर स्मशानघाट गई। लकड़ियाँ इकट्ठा करके उसमें आग लगाकर खुद पीठ के बल सो गई! अब उसके लिए जीना असह्य हो गया था। उसने आत्महत्या कर लेने का संकल्प किया था लेकिन कर्मराजा को मंजूर नहीं था। वह अभी भी उस नारी को सताना चाहता था। अत: उस समय आकाश में घिरे आषाढ़ी काले मेघ उसी वक्त टूट पड़े। आग बुझ गई। अधजली कामलक्ष्मी बेहोश हो गई थी। पानी का एक जोरदार रेला वहाँ आया। वह कामलक्ष्मी को अपने साथ बहा ले गया। कहीं दूर जाकर वह किसी गाँव के रहावन में जा पड़ी।

किसी ग्वाले ने उसे देखा। उसे घर ले गया। उसकी बहुत सेवा करके कामलक्ष्मी को पुन: सौन्दर्यरानी बना दिया! उसे अपनी प्रिय ग्वालिन बना दिया।

वह रोज सुबह माथे पर घी का घड़ा माथे पर रखकर बेचने के लिए निकलती थी और शाम होने पर घर वापस लौटती थी।

एक दिन मध्याहनवेला में माथे पर घड़ा रखकर वह जा रही थी कि एक पगलाये हुए सांड ने कामलक्ष्मी को चपेट में ले लिया। वह जमीन पर गिरी। घड़ा फुट गया। सारा घी रेती में बह गया। लोग वहाँ जमा हो गए। वह एकदम उठकर खड़खड़ाकर हंसने लगी। लोग विचार में पड़ गए कि ऐसी दु:खद दशा में भी यह स्त्री क्यों हंस रही है।

जमावड़े में खड़े एक युवक ने उससे पूछा कि घी बह जाने पर भी तुम्हें जरा भी दु:ख क्यों नहीं हो रहा है? तुम क्यों हंस रही हो?

उसने कहा, भाई ! मेरा तो सारा जीवन ही नष्ट हो गया है। अब घी के बह जाने का क्या अफसोस करना! या क्यों रोना! भाई! यदि तुम मेरी बात विस्तार से सुनना चाहते हो तो सुनो।''

ऐसा कहकर वह उसे घटादार नीम वृक्ष के नीचे ले गई।

सारी बात विस्तार से कही....और हाय! वह युवक कोई और नहीं था पर था उसीका बेटा वेदव्यास ही था !

जीवन–कथा की छूटती कड़ियाँ दोनों ने जोड़ीं। अब जीवनकथा अखंड हुई। दोनों ने अपने आप पर भयंकर धिक्कार भाव अनुभव किया।

पश्चात्ताप की अग्नि धधक उठी । चारों आँखों से अश्रुधारा असखलित रूप से बहने लगी।

पाँव के नीचे की जमीन खिसकती हुई अनुभव हुई। माथे पर मानो आकाश ही टूट पड़ा हो।

वेद्ग्रंथों का अध्ययन वेदव्यास को इस समय काम आया। दोनों ने धर्ममय राह पकड़ी। आत्मकल्याण की पगडंडी पकड़कर विषाक्त संसार को मधुर बनाया।

जब कर्म ही रूठ जाए तो क्या हो सकता है? वह सुखी को दु:खी बनाता है।

धर्मनिष्ठ को बुद्धिभ्रष्ट करके पापी बना देता है।

71. महाज्ञानी स्कंदक को क्रोध ने मारा

परमात्मा मुनिसुव्रत स्वामीजी के एक शिष्य का नाम था : स्कंदकसूरिजी। बहुत ज्ञानी और अनन्य प्रभावक वे पाँचसौ शिष्यों के गुरु थे।

एकबार एक ऐसे प्रदेश में वे चले गए;जहां का राजा जैनों के कट्टर द्वेषी ऐसे मंत्री से प्रभावित था। अपने राज्य की सीमा में पाँचसों जैन साधुओं के प्रवेश की बात जानकर मंत्री तो नखशिख जलभून उठा। एक फरेब रचकर उसने सभी साधुओं पर राज्यद्रोह का आरोप लगाया और उन सबको घानी में डालकर कुचल देने की सजा पर राजा की मुहर लगवा ली।

एक के बाद एक साधु को कुचलने का अति रौद्र कार्य उसने शुरू हुआ। गुरु का यह कर्तव्य होता है कि उसे अपने शिष्य को मरण के समय अपूर्व समाधि में लीन कर दे। गुरु स्कंदकसूरिजी ने अपने उस कर्तव्यनुसार वह कर्तव्य 499 साधुओं तक तो सुचारु रूप से अदा किया। ना, वह कार्य उनके लिए बहुत विकट था। घानी के पत्थर के चलते ही जहां सारा शरीर कुचलकर चूर–चूर हो जाए। खून का फ़ौव्वारा उड़ने लगे। सारी हड्डियाँ चूर चूर हो जाएँ ऐसी शिष्य की मरणान्त दशा में उसकी आत्मा को परमात्मा की शरण में रख देना; मंत्री के प्रति तनिक भी द्वेषभाव उत्पन्न नहीं होने देना –यह कितना कठिन कार्य है! पर स्कंदकसूरिजी तो ज्ञान के अगाध सागर थे। महान निर्यामक

(समाधिदता)थे।उन्होंने अपनी सारी शक्ति को काम में लगा दिया पर सबूर....पाँचसौ नंबर

वाला जो शिष्य था,वह तो बाल साधु था। स्कंदकसूरिजी ने मंत्री से बिनती की थी कि पहले मुझे कुचल दे, उसके बाद उस बालमुनि को कुचले लेकिन मंत्री ने उनकी बात का अस्वीकार कर दिया। अत: सूरिजी आगबबूला हो गए। पाँचसौवे शिष्य ने समाधिदान तो कर दिया पर स्वयं अति क्रोधावेश में आकर कुचले जाकर देवलोक में गए और उस राजा, मंत्री और उसकी लाखों की प्रजा सबको आग लगाकर जला दिया। तब से उस प्रदेश का नाम दण्डकारण्य' हो गया।

72. हिंसक व्यवसाय का करूण अंजाम

राजस्थान के एक शहर की बात है। वहाँ कोई अजैन रहता था। परिवार के वडील ने लगभग दसेक लाख रुपयों का नुकसान कर दिया। व्याज अदा करते करते वडील थक गए। चार वर्ष निकल गए। बड़ा पुत्र अब बड़ा हो गया था। उसने किसी मित्र की सिफ़ारिश से सारे राज्य की कीटनाशक दवाई की एजेंसी प्राप्त कर ली। कारोबार बहुत अच्छा चल पड़ा। देखते ही देखते पैतृक कर्ज भी अदा हो गया। बड़ा बंगलो भी बन गया।

लेकिन यह सब होते हुए भी उसके मातापिता बहुत उद्विग्न रहते थे। खेत के असंख्य किटाणुओं का संहार करनेवाले इस व्यवसाय से हो रही खूब कमाई उन्हें मंजूर नहीं थी। पुत्र को अनेकों बार समझाया पर वह नहीं माना। उसने धर्म और व्यापार को अलग समझ रखा था।

इस पुत्र के यहाँ क्रमशः एक पुत्र और एक पुत्री का जन्म हुआ। वे जब छः और आठ वर्ष के थे तब उसके घर एक जैन मुनि पधारे। वडील ने तो उनके पैर पकड़कर ज़ोर ज़ोर से रोना शुरू कर दिया। अपने पुत्र को उस व्यापार से मुक्त करने के लिए उपदेश देने की बिनती की। मुनि ने सारे घर के लोगों को जमा किया।

बड़े पुत्र की माता खूब रोने लगी। कीटनाशक दवाई से असंख्य जंतुओं की जो हाय मिली थी उसका परचा(चमत्कार) कैसा मिला है? यह दिखाने के लिए उसने अपने पोते और पोती को बुलाकर उन दोनों की आँख के नीचे निकली हुई गांठ दिखते हुए कहा,'' महाराज ! यह है ; कैंसर की गांठ। मेरा बेटा अपनी इन दोनों संतानों की इस दशा से बहुत गहरा आघात अनुभव करके जीवन का सारा आनंद खो चुका है! नर्क तो उसे जब मिलेगी तब मिलेगी ;पर यह भव ही उसके लिए जिंदा दोज़ख हो गया है।''

बहुत समझाने के बाद मुनि को सफलता मिली। पुत्र ने वह घातक व्यवसाय हमेशा के लिए छोड़ दिया। कुछ ही बरसों में दोनों बच्चों ने परलोकगमन कर लिया।

73. गर्भपात! कैसी शयतानियत!

माँ स्वयं अपनी संतान के टुकड़े कराए; खोपड़ी का चूरा कराए–यह सब देखकर शायद बाईबल का शैतान भी कहता होगा कि ऐसी नीचता तो मैं भी न करूँ।''

मुंबई में एक बहन का गर्भ सात महीने का हुआ था। उसी वक्त उसकी देवरानी के भी गर्भ रहा। उनकी धनिक सास ने जेठानी से कहा,''दो बच्चे तो हमें एकसाथ नहीं चाहिए। और तुम्हारी तो यह दूसरी संतान है तो तुम इस भृण को गिरा दो।''

जेठानी अस्पताल गई। किसी कसाई से मिली। उसने कहा,''गर्भ को काफी समय हो गया है। अत: अभी गर्भपात करना उचित नहीं है।

पर हाथ में बहुत रुपए देखकर वह मजबूर हुआ। उसने गर्भपात कर दिया। बाहर पड़ा हुआ जीव अभी भी असह्य वेदना के कारण करुणतापूर्ण सूक्ष्म रुदन कर रहा था। डॉक्टर ने आया से कहा उसे उठाकर पांचवें माले से पिछेवाली गटर में फेंक दे।''

उस औरत के दिल में राम बसे हुए थे। उसने कहा कि बच्चा अभी भी जिंदा हो ऐसा लगता है।'' मैं उसे कैसे गटर में फेंक दूँ? मेरा राम मुझे ऐसा करने से इन्कार करता है।

यह शब्द सुनकर डॉक्टर हंस दिया। एक ही पल में स्वस्थता धारण करके उसने उस बालक को हाथ में लेकर जमीन पर ज़ोर से पछाड़ा। तत्काल उस बच्चे की खोपड़ी के टुकड़े हो गए। बालक मर गया।

डॉक्टर ने आया से कहा ,'' ले, इसे अब उठाकर गटर में डाल दे। अब तो तुम्हारा रामला ना नही कहेगा ना!''

ऐसे हीन कोटि के डॉक्टरों ने ऐसा विज्ञापन–प्रचार शुरू कर दिया है कि पांचसौ रुपैया खर्च करके (गर्भपात में) पाँच लाख रुपए (शादी का खर्च) बचाओ।'' गर्भ में यदि पुत्री हो तो उस गर्भ को खत्म कर देने के लिए। हाय! अति घोर कलियुग !

74. बड़ों का बडप्पन

आखिरकार अंग्रेजों ने नेपोलियन को हराया। उसे पकड़कर सेंट हेलिना द्वीप पर रख दिया। उस वक्त एक घटना घटी।

एकबार नेपोलियन मैदान में एक तरफ से दूसरी ओर कहीं जा रहा था। उसके साथ जैलर भी था। दोनों बतियाते हुए आगे बढ़ रहे थे।

ऐसे में उम्र को प्राप्त एक स्त्री माथे पर लकड़ी की भारी गठरी उठाए आती हुई दिखाई दी। नेपोलियन जिस रास्ते पर जा रहा था उसी रास्ते पर वह औरत सामने से आ रही थी। आगे बढ़ने के लिए किसी को तो पगडंडी की बाजू में हटना पड़े ऐसा था।

जेलर ने इस स्थिति को देखकर ऊंची आवाज में उस औरत से कहा कि बाई ! परे हट लो। तुम्हें यह मालूम नहीं है कि तुम्हारे सामने जो चले आ रहे हैं वह फ्रांस के भाग्य विधाता नेपोलियन स्वयं है।''

ये शब्द सुनते ही नेपोलियन ने जेलर से कहा,'' भाई! यह बात मत करो। मैं एकबार अवश्य सम्राट नेपोलियन था परंतु अब तो सेन हेलिना द्वीप का नाचीज़ कैदी हूँ। मेरे खातिर तुम इस बाई पर परे हट जाने का हुक्म मत छोडो।'' इतना कहकर नेपोलियन ने उस स्त्री की ओर मुड़कर कहा,''आओ माँ ! तुम सीधे अपने रास्ते पर चली चलो। पगडंडी पर से मैं ही परे हट जाता हूँ और तुम्हारी राह आसान कर देता हूँ।''

75. सिकंदर माँ से ही नहीं मिल सका

जब सिकंदर आखिरी सांसें गिन रहा था तब उसने जीने के सारे प्रयास किए। कोई कसर नहीं छोड़ी लेकिन जब उसे पता चला कि मौत तो तेज रफ्तार से आ रही है और उसके सारे प्रयत्न व्यर्थ हुए हैं तब उसने अपने स्वजन एवं स्नेहीजनों को इकट्ठा करके अपनी कुछ भावनाएँ (इच्छाएँ) व्यक्त की थी। उसमें उसने कहा कि आप मृत्यु को प्राप्त मेरे हाथ खुले रखना। जिससे जगत को यह पता चले कि सम्राट सिकंदर जिस तरह खाली हाथ इस

संसार में आया था उसी तरह खाली हाथ अपनी सारी उपार्जित संपत्ति यहाँ छोडकर धरती पर से बिदा हो गया है।''

उपरांत मेरी अरथी बैद्यों से उठवाना। जिससे लोगों को खबर हो कि इतने सारे बैद्यों के रहते सिकंदर को यमराजा उठा ले गए।

ऐसी अनेक बातें उसने कही थी पर उसके अंतकाल की एक बात जानने योग्य है। उसने एकबार दूर गाँव में रह रही अपनी माँ ने एक बिनती की थी कि तुम मुझे एकबार अवश्य आकर मिलो। उसने माँ की इस बिनती का स्वीकार किया था, वचन भी दिया था पर वह इस वचन का पालन नहीं कर सका था। इस आशय से अपने आयुष्य की डोर को कुछ और बढ़ाने के लिए उसने वैद्यों से कहा कि उसके लिए आप यथासंभव प्रयत्न कीजिए। बैद्यों ने अपनी सारी समझ और शक्ति को काम में लगाया पर अफसोस! सिकंदर उस वचन का पालन नहीं कर सका।

हे आत्मन ! तुम कहलाते हो सर्वशक्तिमान! पर तुम्हारे हाथ में कुछ भी नहीं आएगा। तुम तो सर्वथा कर्म के अधीन हो!

76. स्वधर्मपालन के वक्त शत्रु कौन!

(अजैन रामायण प्रसंग)

सारा संसार जानता है कि सीताजी का अपहरण होने के कारण राम और रावण के बीच शत्रुता ने जन्म लिया था।

सिताजी को पाने के लिए राम ने लंका ऊपर आक्रमण किया। बीच में समुद्र आया। उस पर सेतु बांधना था। उसके भूमिपुजन के समय कोई ब्राह्मण नहीं मिला। रावण के भय से किसी भी ब्राह्मण का वह क्रिया कराने के लिए तैयार न हो यह सहज था।

इस बात की खबर रावण को हुई। वह स्वयं भी ब्राह्मण था। उसने सोचा कि यह तो ब्राह्मण का धर्म है। यदि कोई ब्राहमण न करे और मैं भी न करूँ तो हमारा ब्राह्मणत्व कलंकित होगा।

रावण ने स्वयं वह कार्य कर देने का संकल्प कर लिया। रावण उस स्थान पर पुरोहित बनकर पहुँच गया। उसने समस्त संस्कार करा दिया। परंपरा के अनुसार रामचंद्रजी पुरोहित के चरणों में झुके और पहिरवानी दी।

उस समय पुरोहित को यह आशीर्वाद देना होता है कि आपने मुझे जिस काम के लिए बुलाया है,वह कार्य परिपूर्ण हो और आपके द्वारा आचरित कार्य में सम्पूर्ण यश की प्राप्ति हो।''

सचमुच उन शब्दों में, भावविभोर होकर रावण ने राम को आशीर्वाद भी दिए !!!

कैसा घोर कलियुग आया है कि जहां भाई भाई को खत्म करने के लिए, मित्र मित्र को बारबाद कर देने के लिए दांवपेच कर रहा है। रे ! आध्यात्मिक क्षेत्र के गुरु–शिष्य भी आपस में लड़–झगड़ रहे हैं !!!

77. तुलसी! हाय गरीब की

प्रयोगवीर विदेशियों ने एक प्रयोग किया। वे जानना चाहते थे कि किसी के कलपते हुए दिल की आह का किसी ओर पर कोई असर होता है या नहीं !

भारत इत्यादि पूर्वीय देशों की इस मान्यता में कितना तथ्य है, उन्हें यह जानना था। अत: उन्होंने इस प्रकार एक काम किया।

अतिशय छोटे अपराध के निमित्त गाँव की एक औरत को उन्होंने जैल में बंद करवाया। जज़साहब ने उसे सात दिन की सजा की थी। तीन दिन बीत जाने पर ये प्रयोगवीर जैल में गए। उस औरत से कहा कि,''तुम्हारी सजा में परिवर्तन करके तुम्हें फांसी की सजा देने का निर्णय किया गया है।''

अनगढ़ और अनपढ़ बेचारी वह औरत ! ऐसी बात के लिए किसी वकील द्वारा कानूनी कार्यवाही करने के बदले

चीख चीखकर रोने लगी। छाती पीटने लगी, माथा पीटने लगी। वह बहुत गुस्सा करने लगी। उसको इस दशा में कुछ देर तक देखकर प्रयोगवीर वापस लौट गए। कुछ देर बाद वापस आकर आदेशात्मक कठोर भाषा में कहा कि क्या तुम खाना पकाना जानती हो? तो तुम अभी हमारे इस जैल के निरीक्षण के लिए आए हुए सात साहबों के लिए खाना पका दो। देखो जरा भी देर नहीं करना। साहबों को जल्दी वापस लौटना भी है।''

सत्ता के आगे सभी लाचार हैं! अत्यंत दु:खी मन से उसने खाना पकाया। यह खाना कुछ गरीब लोगों को उन प्रयोगवीरों ने खिलाया। उनके आश्चर्य के सामने वे सारे गरीब भारी दस्त और वमन करने लगे।

प्रयोगवीरों ने फैसला किया कि किसी की भी हाय हो ,वह प्रभावित किए बिना रहती नहीं है। लाखों की लागत से की गई रिसर्च (खोज) के बाद उन प्रयोगवीरों ने जो निष्कर्ष निकालते हैं वह तो हमारे अनपढ़ माने जानेवाले तुलसीदास जी बिना पैसा खर्च किए गा लेते हैं– तुलसी हाय गरीब की.....''

78. हत्या ने मचाया कहर

त्रिखंडाधिपति महाराजा श्रीकृष्ण का छोटा भाई ! गजसुकुमाल ! अति प्रिय भाई! देवकी का अत्यंत दुलारा लाल !

सोमिल नामक ब्राह्मण की अति सौन्दर्यवान कन्या से गजसुकुमाल का श्रीकृष्ण द्वारा विवाह करवाए अभी मेंहदी का रंग भी फीका पड़ा नहीं था कि भगवान नेमीनाथजी की देशना सुनकर गजसुकुमाल ने संयमधर्म का स्वीकार कर लिया।

बहुत आनाकानी के बाद माता देवकी ने उसे सम्मति तो प्रदान की पर एक शर्त भी रखी कि इस संसार में अब मैं ही तुम्हारी माँ बनूँ ऐसा करना :अर्थात अब इस संसार में तुम्हें किसी के पेट से जन्म न लेना पड़े इसलिए सीधे मोक्ष पहुँच जाना। जाओ ! तुम्हें मेरे आशीर्वाद हैं।

और....मानो माता की इच्छा को शिघ्रातिशीघ्र पूर्ण करने के लिए गजसुकुमाल वन में जाकर ध्यानस्थ हो गए।

आजीवन अनशन का स्वीकार किया।

उसके ससुर सोमिल को इस बात का पता चला। अपनी बेटी के संसार के खराब होने की कल्पना से उसे अतिशय क्रोध आया। उसने ध्यानस्थ खड़े गजसुकुमाल के मस्तक पर मिट्टी की आड़ करके दहकते अंगारे भर दिए ! कुछ ही घंटों में महात्मा ने मोक्ष प्राप्त कर लिया। हाँ ...मन में यह भावना करते हुए कि मुझे कितने महान ससुरजी मिले हैं कि जिन्होंने मोक्ष की दिशा में प्रयाण करते समय मेरे माथे पर लाल पघडी बांध दी !

इस बात की खबर राजमहल में होने पर श्रीकृष्ण की अनेक रानियों ने गहरी दु:ख अनुभव किया। संसार की असारता का उन्होंने चाक्षुष दर्शन किया। उन्होने तुरंत असार इस संसार का त्याग करके दीक्षा का मार्ग पकड़ लिया !

आघात से कैसा प्रत्याघात जन्मा!

अन्य के दु:ख से बहुत दु:खी हुए!

कैसा कृतघ्न है यह संसार !

79. वनस्पति भी शत्रु-मित्र को पहचानाती है

कुछ बरसों पूर्व विदेश में वनस्पति के जीवत्व और उसकी संवेदनाओं पर प्रयोग हुए। उन प्रयोगों में एक प्रयोग ऐसा भी रहा।

एक ही वनस्पति के पौधे के पाँच गमले एक कमरे में क्रम से रखे गए। उस कमरे में पाँच पुरुषों ने प्रवेश किया। एक पुरुष के हाथ में छुरी थी। शेष के हाथों में कोई हथियार नहीं था।

ये चारों एक बार पांचों गमलों से गुजर गए। हरेक ने प्यार से उस पौधे को सहलाया। उन पौधों के सामने रखे गए यंत्र के काँच पर तरंगें तरंगित होने लगी। उनका संकेत यह था कि प्रत्येक पौधा बहुत आनंदानुभव कर रहा है।

अब उन प्रयोगवीरों ने दूसरा राउंड शुरू किया। जिसके पास छूरी थी, उसने तीसरे नंबर के पौधे पर छुरी से

वार कर दिया। तब उस यंत्र के काँच पर जो तरंग तरंगित(प्राप्त) हुआ,उसका संकेत यह था कि एक पौधे पर छुरी का वार होते ही पांचों पौधे मारे भय के कांप उठे हैं।

अब जो तीसरा राउंड शुरू हुआ उसमें उस कमरे में बारी बारी से एक –एक पुरुष गुजरने लगा। उस वक्त तो पौधे में व्यथा का भाव महसूस नहीं हुआ; पर जब छुरी से प्रहार करनेवाला व्यक्ति बिना छुरी लिए चुपचाप,हँसता हुआ कमरे में गया कि तुरंत सारे पौधों के तरंग तीव्रता से उठने–बैठने लगे। उन्होंने संकेत दिया कि सारे पौधे चीखने–चिल्लाने लगे हैं। कहो, विज्ञान भक्तो! अब आपको वनस्पति में जीवतत्व तथा उसकी संवेदनाओं के प्रति क्या कोई शंका रह जाती है ?

80. कभी कभार तो साधु को भी नीचे उतरना पड़ता हैं

बनासकांठा क्षेत्र का वह गाँव। नवाबी शासनकाल की यह बात है। एकबार राधनपुर के माली मुहल्ले में भयानक आगजनी हुई। तेज बह रहे पवन के कारण आग ने भयानक स्वरूप पकड़ लिया। मुहल्ले के लोग चीखने लगे और यहाँ वहाँ भागने लगे।

नवाब को इस घटना की खबर हुई। अपनी प्रजा की इस दशा के बारे में जानकर वे महल की राजगद्दी पर बैठ नही सके। घरेलू कपड़ों में ही नवाब खड़े हो गए और घोडा बग्गी का इंतजार किए बिना ही तेज गति से पैदल चल दिए।

राधनपुर की प्रजा ने अपने तारक को इस प्रकार बदहवास दौड़ते हुए देखकर लोग भी उनके पीछे हो लिए। देखते ही देखते सैकड़ों लोग जमा हो गए। नवाब साहब माली मुहल्ले पहुँच गए। सदभाग्य से वहाँ गर्द का बड़ा ढेर पड़ा हुआ था। तसले भी वहाँ पड़े हुए थे। नवाब साहब ने तसला उठाया और उसमें धूल भरकर आग की लपटों पर डाल दी।

फिर तो देखना ही क्या? प्रजा थोड़े ही हाथ पर हाथ धरे बैठी रहती? हजारों हाथ हरकत में आ गए। दमकल आने से पहले तो महदांश आग नियंत्रण में आ गई। सब के दिल में नवाब साहब का प्रजाभिमुख दायित्वपूर्ण अभिगम

चिरंजीव हो गया। ऐसे वक्त में नवाब ने अपनी नवाबी,बग्गी,कपड़े,मुकुट आदि की चिंता की होती तो? अपने पद की गरिमा की दरकार की होती तो!

अरे! तब तो सारा राधनपुर आग में जलकर खाक हो गया होता! फिर किस पर अपनी नवाबी का रुआब दिखाते! गृहस्थों ने जिसकी रक्षा की सरेआम उपेक्षा की है ऐसे धर्म और संस्कृति के दहन के समय में क्या साधु–संतों को नवाब ने जैसा किया, वैसा करने की आवश्यकता महसूस नहीं होती?

81. ईर्षालु कुम्हार

उसका नाम पंकप्रिय था ।

जाति से कुम्हार था। ईर्षा का पाप तो इतना कातिल था कि उसका शिकार यह कुम्हार भांति–भांति के मिट्टी के बर्तन बनाने में कुशल था तथापि अपने काम में उसका दिल लगता नही था। अत: वह कभी भी धन जमा नहीं कर सका। मुश्किल से दो रोटियां कमा पाता था।

वह बहुत ईर्षालु था। जहां उसने अच्छे वस्त्रों से विभूषित स्त्री को देखा, घोड़े पर आरूढ़ किसी रुआबदार राज्य कर्मचारी को देखा, विवाह के मंडप से मधुर गीत सुनाई दिये या किसी स्त्री के सुंदर बच्चे को देखते ही वह कुम्हार चीख उठता था और वहीं पर बैठकर अपना सिर या अपनी छाती कूटने लगता था। वह ऐसी ही दशा में घर की राह में दौड़ पड़ता था और घर में जाकर घर का दरवाजा बंद कर देता था और बाद में बड़ी मुश्किल से स्वस्थता धारण करता था।

ऐसी ही दशा में कुम्हार की जिंदगी के काफी बरस व्यतीत हो गए। उसके चार छोटे बेटे थे, वे भी अब बड़े हो गए। ये सयाने बच्चे अपने पिता की यह दशा देखकर बहुत बेचैन रहते थे। एक दिन इन सब ने मिलकर बहुत सोच–विचार किया और यह निर्णय किया कि पिताजी को किसी दूर दराज के जंगल में भेज दिया जाए। वहाँ सुंदर रहने योग्य घर बनवा दिया जाए। उसके चारों ओर बाड़ बना दी जाए जिससे कि कोई हिंसक प्राणी घर में आ न जाए।

उनकी सेवा में एक नौकर रख दिया जाए, जो उनको वक्त पर भोजन कराये ,कपड़े धोए और सैर के समय उनके साथ जाए।

इस योजना को लागू किया गया। शुभ मुहूर्त में पिताजी को बन में निर्मित नए घर में पहुंचा दिया।

प्रति माह बेटे अपने पिता से मिलते थे और उनकी जरूरत की चीज–वस्तुएँ मुहैया करा देते थे। पिताजी भी इस प्रकार वहाँ खुश रहते थे पर यकायक एक कमनसीब दिन आ ही गया। पंकप्रिय कुम्हार का असमय ही बहुत बुरी तरह से अवसान हुआ। घटना कुछ ऐसी घटी।

पंकप्रिय कुम्हार के पुत्रों ने जंगल के बनवासी लोगों से कह रखा था कि इस अरण्य में किसी ऐसी व्यक्ति को प्रविष्ट न होने दिया जाए जिसने सुंदर वस्त्र धारण किए हों और जो अश्वारूढ़ हुआ हो।

वैसे तो आमतौर पर बन में ऐसी किसी घटना के घटने की कोई संभावना ही नहीं थी क्योंकि इस अरण्य में कुछ भी दर्शनीय, रमणीय या सुंदर था ही नहीं।

पर एक दिन, पास के किसी नगर का युवा राजा अपनी युवा रानी के साथ चार घोड़ों के रथ पर आरूढ़ होकर आ गया। वह मार्ग भूला हुआ था। राजा अत्यंत शानदार वस्त्राभूषणों में सज्ञ था। उसकी रानी भी अनिंद्य सुंदरी थी।

कमनसीबी से यह बग्गी कुम्हार के घर के आगे से गुजरी। शाम का समय होने के कारण वह अपने नौकर के साथ टहलने के लिए निकला हुआ था। ये दोनों पत्थर की बड़ी शिला पर बैठे हुए थे। राजा की बग्गी वहाँ जा पहुँची।

घोड़ों की चाल और उनकी सजावट आदि को देखकर पंकप्रिय के चेहरे के भाव बदल गए। नौकर ने भविष्य के संकेत को समझ लिया था लेकिन बात बहुत तेज गति से आगे बढ़ रही थी। बेचारा नौकर कुछ कर पाये उससे पहले तो बाजी खत्म हो गई।

पंकप्रिय जहां बैठा था, उसी शिला के पास बग्गी आकर रुक गई। रुआबदार राजा–रानी बग्गी से नीचे उतरे। पंकप्रिय से पानी मांगा और भूख भी लगी है ऐसा भी बताया लेकिन उसने सुना–अनसुना किया और चीखता–चिल्लाता हुआ बन की दिशा में दौड़ पड़ा। नौकर ने अतिथि सत्कार किया। राजा जब भोजन आदि करके घर से बाहर आए तब हड़बड़ी में आकर वहाँ खडा पंकप्रिय ज़ोर से चिल्लाया। राजा कुछ सोच पाये उससे पहले तो नौकर

ने भविष्य के इशारे को समझते हुए तेज दौड़ लगाई लेकिन अब तो वह भी वक्त की दौड़ के मुक़ाबले में पीछे रह गया था। कुम्हार उस पाषाणी शिला से ज़ोर से जा टकराया। शिला से टकराते ही उसकी खोपड़ी चूर चूर हो गई। क्षणमात्र में ही उसके प्राण अनंत के यात्री हो गए।

राजा–राजी तो अवाक रह गए। उनकी समझ में कुछ आया नहीं। नौकर ने सारी बात समझा दी। उसने कहा कि ईर्षा की विषैली आग में यह कमनसीब जीव बलि चढ़ गया।

राजा–रानी को इस घटना से बहुत धक्का लगा क्यों कि उनका दमाम ही उसकी ईर्षा की आग के लिए निमित्त हो गया था।

82. दो बहनों की बलिदान - गाथा

अतिरेकपूर्ण अंधश्रद्धा का कितना भयानक परिणाम आया? अति तीव्र ऐसे इस कलियुग में स्वर्ग के देवता धर्मीजनों की सहायतार्थ अवश्य दौड़े चले आते हैं ऐसी मान्यता महदांश भ्रामक है। कलियुग अर्थात जहाँ ऐसी गुप्त सहाय मिलने की बात से निराशा ही हाथ लगती है। यहाँ तो स्वपुरुषार्थ से ही सारे विजय प्राप्त करने हैं और यश–कीर्ति को प्राप्त करना है।

ज्योतिष के प्रति अतिरेकी अंधश्रद्धा का कितना दुरुपयोग किया गया! और उसमें अंततोगत्वा दो आर्यकन्याओं ने आत्म बलिदान कर दिया –इस बात का इस कहानी में संकेत मिलता है।

इराक का बगदाद शह

उसके खलीफा ने महम्मद बिन कासिम को बड़ी सेना सहित हिंदुस्तान के सिंध प्रांत पर विजय प्राप्त करने के लिए भेज दिया। सिंध प्रदेश की प्रजा को सीधी तरह से जीत पाना अत्यंत मुश्किल काम था क्योंकि सिंध की प्रजा बहुत बहादुर थी।

बिन कासिम ने सिंध की प्रजा और उसके नेता की दुखती हुई रग को पकडा। वहाँ की प्रजा ज्योतिष के प्रति अंधश्रद्धा रखती थी।

महमद बिन कासिम ने सिंध के ज्योतिषियों को भ्रष्ट तरीके से अपने पक्ष में कर लिया। (भारत का यही भयानक दुर्भाग्य है।) ज्योतिषियों के द्वारा उसने वहाँ की प्रजा को अवगत किया कि सिंध देश का अभी बहुत प्रतिकूल समय चल रहा है। यदि विदेशियों से जंग हुई तो सिंध की शर्मनाक पराजय होगी। ''

यह आगाही लगातार एक महीने तक चलती रही। सिंध की प्रजा हताश–निराश हो गई। उनका जोश और उत्साह खत्म हो गया।

एक महीने बाद महमद ने सिंध पर आक्रमण कर दिया। सिंध के हिन्दू राजा दाहिर ने वीरतापूर्ण ढंग से आक्रमण का प्रत्युत्तर दिया लेकिन आखिर में उसकी पराजय हुई, उसे बंदी बना लिया गया और उसकी मृत्यु हो गई।

महमद के सिपाहियों ने दाहिर की दो सुंदर बेटियों को पकड़ लिया। बड़े इनाम की उम्मीद के साथ उन सिपाहियों ने उन कन्याओं को बगदाद के खलीफा के समक्ष पेश कर दिया। खलीफ़ा तो उनकी सुंदरता को देखकर मुग्ध हो गया। उसने उन कन्याओं से अपनी बेगम बन जाने के लिए बिनती की ।

ये कन्याएँ तो अपने पिता दाहीर की मौत का प्रतिशोध लेने के लिए तड़पती क्षत्राणियाँ थी। उन्होंने बहुत सावधानी के साथ,गंभीरता धारण की। बड़ी कन्या ने खलीफा से कहा : बादशाह ! आप हमें बेगम बनाकर क्या करेंगे ! आपके सरदार बिन कासिम ने तो हमारी देह को बहुत पहले ही भ्रष्ट कर दिया है।''

ये शब्द सुनते ही खलीफा तो बिन कासिम पर बहुत क्रोधित हुआ। उसी क्षण उसने सैनिकों को आदेश किया कि सिंध विजेता सरदार महमद बिन कासिम को पशु की खाल से बांधकर बगदाद ले आओ।''

इस हुक्म का ठीक से पालन हुआ। इस प्रकार बड़ी क्रूरतापूर्वक उसे बांधकर लाने से घोर असह्य पीड़ा के कारण वह बीच राह ही बेमौत मर गया।

एक दिन उसका शव बगदाद के राजमहल में लाया गया। खलीफा ने उस सिंध विजेता के शव को लात मारी। उस समय राजा दाहिर की दोनों क्षत्राणी बेटियाँ वहाँ उपस्थित थी। पिता की हत्या का प्रतिशोध वह ले सकी, इस

बात का उन्हें बहुत संतोष था। उन्होंने अब जीवन का अंत लाकर अपनी देह को हमेशा के लिए निर्मल–निष्कलंक रखने का संकल्प कर लिया था। आगे क्या करना है? उसकी योजना पहले ही से सोच रखी थी।

उन राजपुतानियों ने खलीफा से कहा , बादशाह सलामत ! क्षमा करें। हमने आपके समक्ष असत्य बात कही हैं। आपके इस सरदार ने तो हमारी देह का स्पर्श तक नही किया है लेकिन हमें हमारे पिता के धोखेबाज हत्यारे का खून से प्रतिशोध लेना था। अत: हमने आप से असत्य कहा।''

बगदाद का यह खलीफा तो ये शब्द सुनकर आग बबूला हो गया।

वे क्षत्राणियाँ तो ज़ोर ज़ोर से हंस रही थीं। दोनों ने पलक झपकते ही अपनी कमर मे छिपाई कटारें खींच निकाली और एक दूसरे के पेट में उतार दी। वहाँ लहू बहने लगा। दोनों की मृत्यु हो गई। ऐसा लग रहा था मानों उनके मरने के बाद भी उन दोनों की आँखें मुस्कुरा रही थी।

खलीफा उन राजपुतानियों को दंड नहीं दे सका इस वजह से तथा सिंध पर ज्वलंत विजय प्राप्त करा देनेवाले सरदार का सम्मान– बहुमान करने के बजाय उसे क्रूरतापूर्ण ढंग से मरवा देने के कारण जीवन पर्यंत दु:ख अनुभव करता रहा।

83. गुणसेन और अग्निशर्मा

क्षितिप्रतिष्ठित नगर का राजकुमार गुणसेन और राजपुरोहित यज्ञदत्त का एकमेव पुत्र अग्निशर्मा।

राजपुत्र और पुरोहितपुत्र दोनों लगभग हमउम्र थे पर कभी एक दूसरे से मिले नहीं थे। पुरोहितपुत्र अग्निशर्मा कर्मदोष के कारण शरीर से बहुत भद्दा दिखाता था। वह पूरी तरह से अष्टावक्री था। अतिशय भद्देपन के कारण नगर के बच्चे उसे बहुत तंग करते थे।

एकबार राजकुमार गुणसेन टहलने के लिए निकला था तब उसने अग्निशर्मा को देखा। गुणसेन ने उसे राजमहल में बुलाया। राजकुमार ने उसके साथ बहुत विचित्र खेल खेले (शायद आज की भाषा के संदर्भ में रेगिंग' होगा।)

बेचारे अग्निशर्मा को राजकुमार के इस आतंक को सहे बिना कोई चारा नहीं था। गुणसेन के बढ़ते जाते आतंक से त्रस्त होकर अपने ही कर्मों का दोष मानकर अग्निशर्मा ने क्षितिप्रतिष्ठित नगर का त्याग किया। वसंतपुर नगर के सीमांत पर बसे एक तपोवन के ऋषि आजेव कौंडीन्य की शरण में गया। मेरे ही कर्म खराब हैं। मेरे कर्मों का क्षय हो ऐसा कोई उपाय बताइए ;ऋषिराज !

गुणशर्मा ने चरण पकड़कर बिनती की । ऋषि आजेव कौंडीन्य ने कहा , वत्स ! संन्यास धर्म का स्वीकार कर ले। उग्र तप का अनुष्ठान करो। तुम्हारे बहुत सारे पाप जल जाएंगे।''

अग्निशर्मा ने संन्यासधर्म का स्वीकार किया। मासक्षमण के पारने पर घोर तप प्रारम्भ किया। पारने के दिन भी एक ही घर भिक्षा ग्रहण करने के लिए जाकर ,जो भी मिले उसका स्वीकार कर दूसरे दिन से मासक्षमण (तीस दिन का उपवास)शुरू कर देना होता है।

अग्निशर्मा तापस के घोर तप की कथा धीरे धीरे राजा गुणसेन के कानों तक पहुंची। वह तापस के दर्शनार्थ गया,पर ना..... उस तापस को वह पहचान नहीं पाया ;लेकिन तापस ने उसे पहचान लिया। उसे जिस आतंक से गुजरना पड़ा था उसकी दृश्यावली उसकी नजरों के सामने से तेजी से गुजरने लगी।

पैरों में झुके हुए राजा गुणसेन से अग्निशर्मा ने कहा, आप मेरे पैरों में मत पडो ,क्योंकि अप तो मेरे परम उपकारी हैं। यदि आपने मुझे तंग नही किया होता तो मैंने इस संन्यासधर्म का कभी स्वीकार नही किया होता। इस प्रकार आप मेरे कल्याण मित्र हैं।''

यह बात सुनकर राजा गुणसेन बहुत शर्मिंदा हो गया। उसे अपने पर धिक्कार हुआ। उसने उन कृत्यों की क्षमा याचना की और इस बार के तप के पारने का लाभ देने के लिए बिनती की ।

तपस ने कहा : कल की किसे है खबर ! तथापि हे राजन ! मैं आपकी इस बिनती को अवश्य याद रखूँगा।''

पारने का दिन आ गया। तापस राजमहल पहुंचे पर बदकिस्मती से उसी दिन राजा गुणसेन को असह्य शिरोवेदना होने लगी थी। वैद्य दौड़धूप कर रहे थे। सैंकड़ों नागरिक राजा की स्वास्थ्यपृच्छा के लिए आ रहे थे। रानियाँ चिंता में पड़ गई थीं। ऐसी दशा में तापस अग्निशर्मा के आगमन की ओर किसी का ध्यान गया नहीं। कुछ देर रुककर तापस

वहाँ से चल दिये। वह तो तपोवन में जाकर ध्यानस्थ हो गए।

दूसरे दिन राजा की वेदना शांत हुई। उन्हें तुरंत तापस के पारने की बात का स्मरण हुआ। तलाश करवाई। समाचार मिलने पर राजा को बहुत दु:ख हुआ। वह फौरन तपोवन गए। कुलपति जी से क्षमायाचना की। अग्निशर्मा के चरण पकड़कर क्षमा याचना की।

अग्निशर्मा ने उदारतापूर्वक कहा : राजन ! इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। मैंने तुम्हारी शिरोवेदना जनित राजमहल में सृजित चितातुर अवस्था को देखा है न?

तुम तनिक भी चिंता मत करो। मुझे तो तपोवृद्धि का लाभ हुआ है।''

यह सुनकर राजा को राहत हुई। वह दूसरे माह के पारने का लाभ देने की साग्रह बिनती करके गए।

दूसरे पारने पर अग्निशर्मा पुन: राजमहल गए पर अफसोस ! इस बार भी पारना नहीं हो पाया। नगर के बाहर आए हुए शत्रु का मुक़ाबला करने के लिए युद्ध की पूर्व तैयारी में समस्त राजमहल जुड़ गया था। राजा का वही पश्चात्ताप! वही क्षमायाचना! अग्निशर्मा की वही उदार मनोवृत्ति !

तीसरे पारने की पुन: बिनती ! अग्निशर्मा का ऐसा ही आश्वासन !

पर तीसरे पारने पर भी वैसी ही स्थिति निर्मित हुई! राजा के घर उसी दिन पुत्र जन्म हुआ। उसकी बधाई देने में सारा नगर पागल हुआ।

खतम !अब तो अग्निशर्मा क्रोधित हो गए। भीषण भूख ने उनके सारे आत्म प्रदेशों में आग लगा दी ! उन्हें अब ऐसा लगा कि राजा ने जानबूझकर तीनों पारनों में बरसों पुरानी परेशान करने की वृत्ति का पुनरावर्तन ही किया था।

तपोवन वापस लौटकर आमरण अनशन का अग्निशर्मा ने संकल्प कर लिया। ,उसी के साथ नियाणा(संकल्प) कर लिया कि अपने घोर तप के प्रभाव से मैं इस राजा के जीव को भवोभव मारनेवाला बना रहूँ।''

सारे तपोवन में हाहाकार हो गया। नखशिख क्रोधाग्नि में जल उठे अग्निशर्मा को कुलपतिजी भी शांत नहीं कर सके। राजा गुणसेन को जब खबर हुई कि इस बार भी तापस वापस लौट गए हैं तो वह कुलपतिजी के पास दौड़ा चला आया। उसने खूब माफी मांगी। कुलपति ने तो माफी प्रदान कर दी लेकिन अब उसे अग्निशर्मा के पास जाने से

रोक दिया। कुलपति ने अग्निशर्मा को राजा की सारी बातें समझाई पर अग्निशर्मा टस से मस नहीं हुए। उसने कहा कुलपति जी! उस दुष्ट ने जान–बूझकर यह सब किया है। मैंने तो अपने तप का जुआ खेल लिया है। तीर निकल गया है। अब कुछ नहीं हो सकता।''

कुलपति से हकीकत जानकर राजा अत्यंत हतोत्साह हो गया। वह राजमहल लौट गया पर उसे कहीं चैन नहीं आया। उसने अपने चंद्रसेन नामक राजकुमार को राज्य सौंपकर राजा गुणसेन आचार्य देव श्री विजयसेन सूरि जी के पास गया। रास्ते में रात हो जाने के कारण राजा एक पेड़ के नीचे ध्यानस्थ अवस्था में खड़े रहे।

इस तरफ तापस अग्निशर्मा का देहावसान हुआ और वह देव विद्युतकुमार हुआ। देव होने के साथ ही उसने अपने ज्ञान के बल से अपने शत्रु को खोज निकाला। उसे पेड़ के नीचे ध्यानस्थ मुद्रा में देख वहाँ चला आया। भयंकर क्रोधावेग में आकर चीखते–चिल्लाते हुए उस देवता ने राजा पर गरम रेती की वृष्टि की। राजा उस अग्नि से तप्त रेती के ढेर के नीचे दब गया और कुछ ही देर में जलकर खाक हो गया और देव हो गया।

बड़े लोगों से कभी दृष्टिदोष (स्मृतिदोष) के कारण कुछ भूल हो जाए और यदि बारबार हो तो उसका परिणाम कितना भयानक आ सकता है? यह बात इस कथा के माध्यम से हमारे एक कान में कही गई है।

और साधना भी कितनी दुष्कर चीज है। यह बात हमें यह कथा हमारे दूसरे कान में कह जाती है।

84. वल्कन चिरी

रानी धारिणी ने राजा सोमचन्द्र के माथे में से एक श्वेत बाल निकालकर दिखाया इससे शर्म अनुभव करते हुए राजा सोमचन्द्र ने कहा : कहाँ तो मेरे पूर्वज! वे श्वेतकेशी होने से पूर्व ही संसार त्याग कर चुके थे! और कहाँ मैं? वासना का कीड़ा !'' रानी की प्रेरणा से राजा–रानी ने संन्यास का स्वीकार कर लिया। युवराज प्रसन्नचन्द्र को राजा बनाया गया। रानी धारिणी सगर्भा थी।

इस बात को बाहर लाने से संन्यास ग्रहण करने में तकलीफ हो सकती है, इस भय से उसने इस बात को गुप्त

रखा। समय होने पर प्रसव हुआ। बालक का जन्म हुआ्। वल्कल वस्त्र पहनने के कारण उसके पिताजी ने उसका नाम वल्कलचिरी रखा। इस तरफ सन्यासिनी धारिणी का देहावसान हो गया।

अपने राज्य पोतनपुर से पंद्रह कोश दूर आए हुए बन में कुटीर बनाकर तापस सोमचन्द्र के लिए वल्कलचिरी के पालन–पोषण की साधना में व्यस्त होना अनिवार्य हो गया।

बन की ही परिभाषा, बन के जीवों के साथ के संबंध की अत्यंत कोमलता और तात' के अतिरिक्त किसी शब्द के ज्ञान के अभाव में वल्कलचिरी बड़ा हो गया।

उसके बड़े भाई राजा प्रसन्नचन्द्र को एक दिन माता की मृत्यु और वल्कलचिरी के जन्म के समाचार मिलने से वह अत्यंत उद्विग्न हुए। उन्हें लगा कि 'मैं राजमहल के वैभवी सुखों को भोगूँ और मेरा अनुज बनबासी जीवन बिताए! यह तो बहुत ही अनुचित कहलाए!

भाई को पोतनपुर लाना सरल काम नहीं था क्योंकि पिता उसे अपने से अलग नहीं होने देनेवाले थे। तथापि राजा ने चार वेश्याओं को तपोवन में भेजा।

तपोवन की सीमा पर खड़ी रहकर वल्कलचिरी के आने का इंतजार कर रही थी। उन्हें ज्यादा वक्त इंतजार नहीं करना पड़ा। फलादि लाने के लिए वल्कलचिरी यकायक उस तरफ आ गया। वेश्याओं से तात' सम्बोधन के साथ पूछा कि आप कौन हैं ?क्या आप मेरे ये फल खाएँगी ?''

वेश्याओं ने कहा हम पोतन नामक आश्रम में रहती हैं। हम आपके फल अवश्य खाएंगी ।''ऐसा कहकर उन्होंने वे फल खाये। तत्पश्चात वेश्याओं ने वल्कल को जब अपनी मिठाइयाँ खाने के लिए दी तो उसके अति मधुर स्वाद के कारण अति हर्षित हो गया। पोतन आश्रम की मिठाइयां रोज खाने के लिए मिलेंगी, इस आशय से वह पोतन आश्रम जाने के लिए तैयार हो गया पर उसी वक्त पिता सोमचन्द्र को दूर से आते देखकर वेश्याएँ वहाँ से नदारद हो गईं।

पिताजी से मिलकर पुन; वल्कलचिरी वहाँ से भागा और किसी रथ पर आरूढ़ होकर पोतनपुर पहुँच गया। वह वहाँ के लोगों को तात कहकर बुलाते हुए आगे बढ़ने लगा। उसकी अति रूपवान काया से मोहित होकर एक वेश्या

उसे अपने घर ले गई। उसके वल्कल आदि उतारकर स्नानादि करवाकर उसे अत्यंत सुशोभित करके उसके साथ अपनी कन्या की शादी करवा दी।

ऐसा दामाद मिलने पर वेश्या अति हर्षित हो गई थी। इस शादी में उसने बहुत धन खर्च किया। यह समाचार पाकर राजा प्रसन्नचन्द्र ने इस वेश्या के घर उन चार वेश्याओं को यह जानने के लिए भेजा कि उसके घर इतने हर्ष का कारण क्या है ?

वहाँ देवकुमार जैसे वल्कलचिरी को देखकर वेश्याओ ने राजा को यह खबर सुनाई। राजा अपने छोटे भाई को राजमहल ले आया और अति उल्लसित हो गया।

बारह वर्ष बीत गए। वल्कलचिरी की अनेक राजकन्याओं से शादियाँ हुईं। वह भोगसुख में आकण्ठ डूब गया।

इस तरफ वल्कल ! बेटा वल्कल ! बेटा वल्कल ! प्यारा वल्कल!'' पुकारता हुआ जंगल में चारोंओर भटकते हुए उसके पिता ने रो–रोकर बारह वर्ष बिताए। आँखें ऐसी चिपट गई कि मानो वह अंध हो गए हों। उन्होंने वल्कल के मिलने की उम्मीद छोड़ दी।

पर पिता के दु:ख और दर्द की बात जब दोनों भाइयों तक गई तब उन्हें पिताजी की उपेक्षा की जाने के कारण बहुत दु:ख हुआ।

दोनों भाई फौरन पिताजी के पास गए। पिताजी ने तो वल्कल को देखते ही उसे अपने गले से लगा लिया। उस वक्त उनकी आंखों से बही अश्रुधारा ने आंखों पर जमे मैल के थर को धो डाला,जिससे पिताजी पून: देखने लगे।उन लोगों में बहुत सी बातें हुई ,तत्पश्चात वल्कल कुटिया के सामान पर जमी गर्द को हटा रहे थे तब उन्हें ऐसे अनेक काम किए होने की बातें स्मृत हुईं। उसमें उन्हें यकायक जाति स्मरण भी हुआ। उसमें उन्होंने पूर्वभव का अपना साधुत्व भी देखा।

झोंपड़ी के उपकरणों पर जमी धूल को हटाते हुए जीवदया के तीव्र भावों में ही उन्होंने आत्मा पर जमी कर्म रूपी गर्द को दूर कर दिया। वल्कलचिरी वीतराग हुए,सर्वज्ञ हुए,भगवंत हुए।

85. क्यवन्न सेठ का सौभाग्य हो

दीपावली के दिन बही–पूजा(शारदा पूजन) करते समय जैन लोग लिखते हैं :ऋक्यवन्न सेठ का सौभाग्य हो।' पढ़िये इस सेठ की कहानी। अति धनिक माता–पिता। अपने एकमेव पुत्र को धर्मोन्मुख हुआ देखकर वे बहुत चिंतित हो गए। धन्या नामक धनवान परिवार की युवती से उसकी शादी करवाई पर जब उसकी पत्नी ने अपने सास–ससुर को बताया कि उसे (क्यवन्न को) विषयसुख में कोई रुचि नहीं है तब उनकी चिंता और बढ़ गई। आखिरकार उसे धर्म से विमुख करने के लिए अनंगसेना नामक वेश्या से सोहबत करवायी और माँबाप की युक्ति काम कर गई। अनंगसेना ने कृतपुण्य को अपना बना लिया।

अब, बात हाथ से निकल गई। अक्का धन मांगती गई और माँबाप लाखों रुपये भेजते रहे। कृतपुण्य घर वापस लौटने के लिए विवश था। बेशुमार धन संपत्ति गई, बेटा गया–उसके गम में कुछ ही समयान्तराल में माता–पिता दोनों परलोक सिधार गए। अब विशाल हवेली में अपने पति की प्रतीक्षा में खोयी अकेली धन्या रह गई।

और...एक दिन कृतपुण्य घर लौटा। जब धन्या धन भेजने की स्थिति में नहीं रही तब अक्का ने अनंगसेना की उपेक्षा करके कृतपुण्य को दासियों के व्यंग्यबाणों की सहाय से बिदा कर दिया।

बेहाल हुए पति का धन्या ने बहुत प्रेमपूर्वक स्वागत किया। उसने कहा :आप तनिक भी चिंता न करें। आप हैं तो लक्ष्मी को आने में देर नही लगेगी।''

घर की खस्ताहाल परिस्थिति में कुछ दिन बिताते ही कृतपुण्य की समझ में आ गया कि इस प्रकार तो घर संसार ज्यादा दिन चलनेवाला नहीं है। तब उसने अपना भाग्य आजमाने के लिए विदेश जाने का विचार किया। पत्नी तथा अपने ग्यारह महिने के पुत्र को प्यार से मिलकर उसने बिदा ली।

पहली रात को तो वह बहुत थक गया था। अत: कहीं पलंग पर जाकर सो गया। सुबह होने पर उसे लगा कि वह पलंग समेत ऊठकर किसी धनवान की हवेली में आ गया है।

बात ऐसी हुई कि इस परिवार का मुखिया नि:संतान मर गया था। राज्य के कानून के अनुसार उसकी सारी संपत्ति जब्त हो जाए ऐसा था। मृत: सेठ की चार युवा पत्नियाँ थीं। उसकी माता भी जिंदा थीं। राजा संपत्ति को जब्त

न कर ले इसलिए माता ने कृतपुण्य को लाकर अपने पुत्र के रूप में घोषित कर दिया। चार विधवाओं को उसकी पत्नियाँ बना दिया।

कृतपुण्य पुन: विपुल लक्ष्मी के सुख का बरसों तक आनंद लेता रहा पर जब चारों पत्नियों ने चार पुत्रों को जन्म दिया तब घर की मुख्य सेठानी ने कृतपुण्य को बिदा कर दिया। इससे चारों पत्नियों को बहुत दु:ख हुआ पर वे अपनी सास के आगे कुछ बोल नही पायी। बिदाई के समय कृतपुण्य को जो पाथेय दिया गया था, उसमें जलकांत आदि मूल्यवान मणिवाले चार लड्डू भी रख दिये गए। पाथेय को अकबंद रखकर कृतपुण्य वापस घर लौटा। धन्या ने उसी उत्साहित आदर भाव के साथ पति का सत्कार किया। उस दिन शाम होने पर पाठशाला से वापस लौटे बेटे ने माँ धन्या से कुछ खाने के लिए मांगा तो उसने उन चार लड्डुओं में से एक लड्डू खाने के लिए दिया। लड्डू खाते समय जलकांत मणि निकला। उसे लेकर वह अपने मित्रों के साथ खेलने के लिए गया। इस मणि को मामूली समझकर लड़के ने हलवाई से मिठाई ली। हलवाई को इस मणि का खयाल आ गया।

उसी वक्त राजा श्रेणिक का प्रियतम हाथी सेचनक नदी के जल में फंस गया। उसका पैर किसी जलचर प्राणी ने पकड़ लिया था। जलकांत मणि के बिना पानी दो भागों में बंट नहीं सकता था। उसके बिना हाथी के पैर को जलचर के सिकंजे से छुडवाना असंभव था। अत: राजा ने ढिढोरा पिटवाया कि जो भी व्यक्ति जलकांत मणि देगा, राजा उसे अपना जमाई बनाएगा।'' हलवाई ने यह काम किया पर अभयकुमार द्वारा जब मणि के असली मालिक का पता लगवाया तब राजा ने कृतपुण्य को अपना जमाई बनाया।

चार मणि द्वारा और राजा के जमाईराजा बनाकर कृतपुण्य विपुल वैभव का पुन: भोक्ता हुआ। उसकी सारी पूर्व पत्नियाँ घर आकर रहने लगी। एकबार उसने परमात्मा महावीरदेव से अपनी बात पुछी कि बिना किसी परिश्रम के वैभव के शिखर पर चढ़कर एकाएक दो–दो बार जमीन पर आ जाने का कारण क्या है ?प्रभु ने कहा :पूर्वभव में तुमने तपस्वी मुनि को खीर बहुत भाव के साथ बोहराई थी लेकिन तुम बीच में दो–चार भव अटक गए थे। इसलिए तुमने बहुत वैभव प्राप्त किया और वहीं से तुम धराशायी हुए।''

यह बात सुनकर कृतपुण्य को जाति स्मरण हुआ। संसार से विरक्त होकर दीक्षा लेकर उसने आत्मकल्याण किया।

86. मुनिवर ढंढण का प्रचण्ड सत्व

हे परमात्मन! आपश्री जी के उत्कृष्ट कोटी के शिष्यों में भी उत्कृष्ट कौन हैं ?''श्रीकृष्ण ने परमात्मा नेमिनाथजी से सवाल पूछा?

प्रभु ने कहा :जो संसारी संबंध में आपके पुत्र हैं, वह ढ़ंढन मुनि उत्कृष्टभाव से संयम का पालन कर रहे हैं। हे श्रीकृष्ण! वह उग्र तपस्वी है। अरे! तपस्वी तो मेरे और भी अनेक शिष्य हैं परंतु पूर्णरुपेण अपनी लब्धि से निर्दोष भिक्षा पाने में ढंढण मुनि को परिश्रम करना पड रहा है तथापि पूर्वभव में बंधे हुए अंतरायकर्म से जब भिक्षा नहीं मिल रही हो तब भी उनके मुख पर सदाबहार प्रसन्नता निसृत होती रहती है, ऐसा तो किसी भी अन्य साधु में दिखाई नहीं देता है। वे आज भी आपकी द्वारिका नगरी में भिक्षार्थ निकले हुए हैं।''

श्रीकृष्ण ने सोचा कि यह भी कैसी अजीब बात है कि मेरे जैसे तीन खंड के राजन का वह पुत्र ! जिसे संसार में किसी चीज की कमी नहीं, उसे आज खाने के लिए अन्न के दो कण भी नसीब न हो और जैसे कि सुना है, इस बात को छ: महीने व्यतीत हो गए हैं ,छ: महीनों के उपवास हो गए हैं तथापि भिक्षा के लिए विहार कर रहे उस महामुनि के अंतर में जरा भी रंज नहीं है! किसी महात्मा ने श्रीकृष्ण से कहा कि ,मुनि ढंढण का अंतराय कर्म इतना उग्र रूप से उदय में है कि उसके साथ जो भी साधु भिक्षा लेने के लिए जाए, उस साधु को भी भिक्षा नहीं मिलती।''

यह सुनकर श्रीकृष्ण का दिमाग चकराने लगा। कर्म की प्रचण्ड शक्ति का उन्हें खयाल आया। स्वयं भी ऐसी ही अतिभयानक कर्मसत्ता की आज्ञा के अधीन जी रहे हैं ,उस विचार मात्र से फड़फड़ा गए।

ऐसे विचार करते हुए श्रीकृष्ण ने प्रभु से बिदा ली। हाथी पर सवार होकर द्वारिका नगरी के राजमार्ग से वे गुजर रहे थे तब योगनुयोग सामने से ढंढण मुनि को देखा। उनकी देह ताप के कारण क्षीण हो गई थी। अत: पिता को अपने ही पुत्र को पहचानने में बड़ी तकलीफ हुई। जब मुनिराज के पास आ गए तब श्रीकृष्ण ने हाथी उपर से नीचे ऊतरकर भावविभोर होकर कृष्ण उनके पास चलकर गए। अत्यंत उत्कृष्ट भावपूर्वक विधि–पूर्वक वंदना की। आसपास के पादचारी सैंकड़ों लोग वहाँ एकत्र हो गए क्योंकि द्वारिका के स्वामी पैर से चले जा रहे एक मुनिराज की जिस तरह से वंदना कर रहे थे, उसे देखकर सारे वहाँ दौड़ गए।

इस तरफ मुनिराज !

वैसे सांसरिक संबंध से अपनी ढंढना रानी के सगे बेटे!

इस प्रकार उत्कृष्ट रूप में प्रभु के श्रीमुख पर बास कर रहे अणगार !

वंदना करके मुनि के मुख से धर्मलाभ' शब्द के आशीर्वाद प्राप्त करने के बाद वासुदेव ने कहा : मुनिराज ! आपके दर्शन करके आज मेरा जीवन पावन हो गया है। आपके विषय में परमात्मा के श्रीमुख से सुनकर आपके संसारी पिता के रूप में मेरी छाती गज गज फूल रही है। आपने हमारे कुल का यश बढाया है। आपकी मैं कोटि कोटि बार भावयुक्त वंदना कर रहा हूँ।''

मुनि अर्थात मौन ! अनेक विध रूप से मौन !''उस परिभाषा को आत्मसात कर चूके मुनिवर ने पुन: मात्र धर्मलाभ' कहा। कुछ भी बोले बिना आगे बढ़ गए।

उनके वदन पर झलकती विशुद्ध संयम की छाया को देखकर कृष्ण कृतकृत्य होकर हाथी पर आरूढ़ होकर राजमहल की दिशा में आगे बढ़े।

यह दृश्य देखकर किसी वणिक के मन में ढंढण मुनि के प्रति विशेष भाव जगा। वह उन्हें अपने घर बोहरने के लिए ले गया। उसने लड्डू बोहराए। अपने परिमित ज्ञानबल से मुनि को ऐसा लगा कि यह भिक्षा उन्हें अपनी लब्धि से प्राप्त हुई है।''

पर जब वे परमात्मा के पास पहुंचे और अपना अनुमान बताया तब प्रभु ने कहा:ऋऋढंढण मुनि! यह भिक्षा आपको अपनी लब्धि से नहीं पर श्रीकृष्ण की लब्धि से मिली है। उन्होंने जो आपकी वंदना की है,उससे भावविभोर हुए उस श्रावक ने आपको यह भिक्षा बोहराई है। ''

छह मास के उपवास तो हो चुके थे। प्राप्त लड्डू भी परलब्धि के होने के कारण अब खप के नहीं थे तथापि मन में तनिक भी उद्वेग लाये बिना मुनि गाँव के बाहर गए। रजकणों में लड्डू को मिलकर विसर्जित करते हुए स्वयं ने कितने चिकने कर्मों का बंध किया है, उसका प्रायश्चित करते हुए और ऐसा मजेदार तप करने का लाभ मिल गया है, उसकी अनुमोदना करते हुए उस मुनि ने सारे घातीकर्मों का ध्वंश करके केवलज्ञान को प्राप्त किया ।

87. मात्र तीन ही शब्दों में परिवर्तन

राजगृही नगरी। धनावह सेठ्। सेठानी भद्रा। चिलाती नामक दासी।

दासी ने बालक को जन्म दिया। उसका नाम चिलाती पुत्र रखा गया।

कुछ वर्ष बाद सेठानी ने भी बालिका को जन्म दिया। नाम रखा गया सुसीमा।

सेठानी ने सुसीमा को खेलाने तथा जतनपूर्वक रखने की ज़िम्मेदारी दासीपुत्र चिलातीपुत्र को दी। देखते ही देखते सुसीमा बड़ी हो गई।

एक दिन उसके साथ कुचेष्टा करते हुए चिलाती सेठानी की नजर में आ गया। उसने सेठ को सारी बात बता दी। सेठ ने उसकी पिटाई करके घर से निकाल बाहर कर दिया पर चिलाती और सुसीमा के बीच ऐसा स्नेह विकसित हो गया था कि वे एकदूसरे को भूल ही नहीं पाते थे। कईं बरस व्यतीत हुए। इस तरफ कद्दावर देह–गठनवाला चिलाती बन की किसी पल्ली का स्वामी हुआ्। सुसीमा को खोजने और पाने के उपायों में ही उसके बरस बीते जा रहे थे। सेठ के घर में प्रविष्ट होकर सुसीमा को प्राप्त करना लोहे के चने चबाने जैसा कार्य था।

पर आखिरकार सहायकों को ठीक से तैयार किया। सेठ के घर लूट चलाना और उस लूट से जो भी विपुल धन–दौलत मिले वह सारी सहायकों की और सुसीमा चिलाती की। इस प्रकार भाग बंटाई निश्चित हुई।

पूरे ज़ोर के साथ चिलाती ने धावा बोल दिया। उसने सुसीमा को ऊठा लिया और भागा। सेठ और उनके पाँच पुत्रों ने पीछा किया। चिलाती पूरी ताकत लगाकर दौड़ रहा था और सुसीमा को मजबूती से पकड़कर उसे भी दौड़ा रहा था कि अचानक सुसीमा के पैर में कांटा गड गया। उसे निकालने में चिलाती का काफी वक्त बरबाद हो गया और सेठ और उनके पांचों बेटे नजदीक पहुँच गए।

अब चिलाती ने सुसीमा को ऊठा लिया लेकिन उसके वजन के कारण वह ज्यादा तेज गति से दौड़ नहीं सका। शत्रु खूब नजदीक पहुँच गए थे। सेठ चीख–चिल्लाकर बोल रहे थे ;अरे,ओ पापी! रूक जा। मेरे घर का एक समय का तू नौकर ! ओ नमकहराम ! तुम यह क्या कर रहे हो ?मेरी प्रिय बेटी मुझे सौंप दे। मुझे और कुछ नहीं चाहिए्। पर ना....यदि सुसीमा मेरी नहीं होगी तो सेठ की भी नहीं हो सकती। '' यह था ,चिलाती के मन का निश्चय!

और जब उसे ऐसा लगा कि अब तो सेठ और उनके पुत्र छलांग मारकर सुसीमा को छिन लेंगे तब उसने तुरंत म्यान से तलवार निकालकर सुसीमा का शिरोच्छेद कर दिया। मात्र सुसीमा का मस्तक हाथ में लिए तीव्र गति से दौड़ता रहा। सेठ और उनके पुत्र अब क्या आगे बढ़े ?किसके लिए आगे बढ़े ?सुसीमा की कटी हुई रक्तरंजीत देह के पास बैठकर अनहद कल्पांत करते रहे। सब लोग धड़ को लेकर घर की ओर बिदा हुए।

इस तरफ लहू से लथपथ वस्त्र वाला चिलाती हाथ में कटा शिर लेकर दौड़ रहा था कि उसे किसी वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ मुद्रा में मुनि दिखाई दिये। वह उनके पास जाकर खड़ा हो गया।

ओ साधु ! मैंने बहुत पाप किए हैं। तुम मुझे बचा लो। मेरे पापों का प्रक्षालन कर दो। अब मुझे परलोक में दुर्गति होने का बहुत डर लग रहा है। मैं जीवन से हार गया हूँ।''

वह आगे कहने लगा –और ओ साधु! यदि तुम कुछ नहीं बोलोगे,मेरा उद्धार हो ऐसा कोई मार्ग नहीं दिखाओगे तो इस नंगी तलवार से तत्काल तुम्हारे शिर को कलम कर दूंगा। ठीक है एक पाप के साथ एक और पाप....भले ही हो जाए....भले ही मेरी दुर्गति हो!'' साधु ने देखा कि यह जीव तो अच्छा है पर कर्म की झपट में आया हुआ है, दिशाहीन हो गया है तो उसे धर्म की प्राप्ति तो करानी चाहिए। '' उसी समय साधु ने तीन शब्द कहे। उपशम, विवेक, संवर'' इतना कहकर वह आकाशगामिनी विद्या के सहारे उड़कर आकाश में चले गए और वह चिलाती तो देखते ही रह गया। बाद में वह उन तीन शब्दों पर चिंतन करने लगा ।

सही है ।यदि मैंने दिमाग का उपशम रखा होता तो इनमें से कुछ भी घटित नही होता।

मैंने यदि देह से अपनी आत्मा की जुदाई (विवेक) को जाना–समझा होता तो देह सुख दे रही सुसीमा के पीछे पागल न हुआ होता। और यदि मैंने संवर अर्थात विलम्ब–अपनी इंद्रियों के अमर्याद भटकने के आचरण ऊपर कुछ किया होता तो आज ये दु;ख के दिन देखने नहीं पड़ते।''

ऐसा सोचकर सुसीमा की गरदन को दूर रखकर मुनि जिस मुद्रा में पेड़ के नीचे ध्यानस्थ खड़े थे उसी तरह चिलाती लकड़ी की तरह खड़ा हो गया। जंगली चींटियाँ उसके खून की जियाफत मनाने लगी। उन चींटियों के दंश की असह्य वेदना भुगतते हुए चिलाती ने विपुल कर्म क्षय करते हुए सदगति प्राप्त की ।

88. मरकर कहाँ जाना है, वह हमारे ही हाथ में है

अपनी हवेली के बगलवाले मकान में भद्रा सेठानी ने आचार्य भगवंत सुहस्तिसूरि जी महाराज के विराम की व्यवस्था की थी। रात्री वेला में वे शास्त्र के ऐसे भाग का पाठ करते थे जिसमें नलिनीगुल्म विमान (देवलोक का विमान) का विस्तृत वर्णन आता था। यह वर्णन सुनकर भद्रा सेठानी के पुत्र अवनति सुकुमाल को जाति स्मरण ज्ञान हुआ। अपने पूर्वभव में वह वहाँ ही था, उस बात का उसे स्पष्ट खयाल आ गया था। उसने इस विषय में आचार्यश्रीजी से जानकारी प्राप्त की। यह जानकारी अक्षरश: यथार्थ थी।

कुमार ने आचार्याश्री से अपने पूर्व भववाली सारी बात बताकर कहा कि भगवंत ! उसी स्थान पर यदि मुझे पुन: जन्म लेना हो तो उसका कोई उपाय है क्या ?''

कुमार ! वीतराग परमात्मा द्वारा इंगित संयम जीवन का स्वीकार करने से उसी स्थान पर तो जन्म मिले ही पर उससे भी ऊंचे स्थान पर–मोक्ष में भी जन्म मिल सकता है। उस विमान में जाकर तुच्छ एवं क्षणिक भोगसुखों को भोगने की इच्छा करना ही अपनेआप में पाप है। भोगों को भोगना –यह तो बहुत ही बड़ा पाप है। ऐसे भोग सुख की इच्छा करने से अच्छा तो तुम मोक्ष सुख की भावना रख। उसे पाने के लिए तुम संयम जीवन का स्वीकार कर लो।''

वत्स ! जिस संयम से मोक्ष प्राप्त हो सके उसी संयम जीवन से स्वर्ग मिले तो उसमें कोई परेशानीवाली बात नहीं परंतु यह स्वर्ग वह संसार है जिसका सुख वांछनीय नहीं है। इसी प्रकार धर्म (संयम धर्म) के पास स्वर्ग सुख मांगना यह तो सौदेबाजी हुई। जुआ कहलाए। यह तो ऐसी बात हुई जैसे गधा लेने के लिए कुम्हार को हाथी की भेंट दे देना या एरंडल बोने की जगह न मिलने के कारण कल्पवृक्ष को ऊखाड़ फेंकने की बेवकूफी कहलाए।''

भगवंत ! आपकी बात एकदम सही है। मैं इसका अक्षरश: स्वीकार करता हूँ। कभी भी भोगसुखों की प्राप्ति हेतु धर्म नहीं किया जा सकता। इससे तो धर्म विषाक्त बन जाता है। परंतु प्रभु ! मेरा जीव अतिपापी है। पता नहीं पर अभी भी मुझ में मोक्ष प्राप्ति का उल्लास ही जग नहीं रहा। जहां से आया हूँ, उस नलिनीगुल्म नामक विमान का स्मरण मुझे बहुत पीड़ित कर रहा है। प्रभु! मुझे दीक्षा दान दीजिये। आप मुझ पर कृपा कीजिए।–कुमार ने कहा और अपनी बात को स्पष्ट रूप से कह दी जाने का संतोष अनुभव करते हुए तथा कुमार का भी सच्ची बात के प्रति पक्षपात देखकर

आचार्यश्री ने कुमार को दीक्षा प्रदान की और दीक्षित हुए अयवन्ती सुकुमाल मुनि कुछ ही समय में गुरुदेव से आज्ञा प्राप्त कर आजीवन अनशनपुरवक ध्यानस्थ हो जाने के लिए स्मशान में जाकर खड़े हो गए। वह स्मशान बहुत भयानक था। चारोंओर से भूत–प्रेत आदि कई डुगडुगियों की आवाजें आ रही थीं। भैरव आवाजें आ रही थीं पर दृढ़ संकल्पवाले कुमार मुनि को तनिक भी भय नहीं हुआ। वह तो निश्चल होकर खड़े रहे।

कुछ ही घंटों में एक भूखी स्यारनी अपने बच्चों समेत वहाँ पहुँच गई। उसे कुमार मुनि का शिकार आसानी से मिल गया। शिकार भागमभागी नहीं कर रहा है,बचने के लिए जरा भी प्रयत्न नहीं कर रहा है। अत: स्यारनी को तो मजा आ गया। उसने अपने बच्चों के साथ मुनि के पैरों को चबाकर खाना शुरू किया। कुमार मुनि के पैर,जांघ,पेट,हाथ और अंत में गला सबकुछ उसने चबा लिया। धीमी पर असह्य वेदना की स्थिति में भी कुमार के मुख से उफ़्फ़ तक नहीं निकला। वे ध्यान में ऐसे लीन हो गए कि देह का होश तक भूल गए। मरकर अयवन्ती सुकुमाल मुनि अपने संकल्प के अनुसार नलिनीगुल्म विमान में पहुँच गए। भोगसुख के लिए धर्म करना बेशक विष स्वरूप नहीं हुआ क्योंकि वे इस बात को लेकर सतर्क थे कि ऐसा करना जरा भी उचित नहीं है। इस सतर्कता ने जहर को खत्म कर दिया। कच्चा जहर मारता है, मरा हुआ जहर कैसे मार सकता है ?

89. ईलाची! तुम कहाँ से कहाँ?

इलावर्द्धन नगर के धनदत्त सेठ का पुत्र इलाचीकुमार आज गाँव में आई हुई नट मंडली का नाटक देखने के लिए मित्रों के साथ गया है। रात के चार बजे नाटक खत्म हुआ। सब लोग घर जाकर सोने लगे। इलाची की नींद तो हमेशा के लिए हराम हो गई।

नट कंपनी की अत्यंत रूपवती सत्रह वर्ष की नटी में उसका मन लग गया था। उसकी आँखों को उस नटी के सिवाय कुछ सुहाता नहीं था। उसको छोड़ वह किसी ओर के बारे में सोच ही नहीं पाता था।

चौबीस घण्टे की उसकी उद्विग्नता उसके माता पिता से अनजान नहीं रही। उन्होंने इलाची से उद्वेग की वजह पुछी।

बड़ी मुश्किल से उसके पास से सारी सच्चाई जानने को मिली।

करोडाधिपति का, कुलीन परिवार का, अत्यंत धर्मिष्ठ वड़ीलों का यह अत्यंत शुभस्कर पुत्र था ! उसकी ऐसी दशा पर मातापिता को गहरी ठेस पहुंची। मन को बहुत कडा करके उन्होने पुत्र को उस मार्ग से वापस लौट आने के लिए बहुत समझाया पर वह टस से मस नहीं हुआ।

नट कंपनी की बिदाई की रात्री को ईलाची घर छोडकर भाग गया। वह भी नट बन गया। कुछ ही दिनों में तो वह अव्वल कक्षा के, हेरतंगेज़ खेल खेलने लगा। नटी के पिता की शर्त थी कि मेरी बेटी की शादी उसीसे करवाऊँगा जो नट–कला में कुशल हो; जो घरजमाई बनकर रहने के लिए राजी हो; जो किसी राजा को प्रसन्न करके उससे बड़ी –बड़ी भेंट –सौगातें प्राप्त करने में भाग्यशाली हुआ हो ।

अब ईलाची को मात्र आखिरी शर्त को पूरा करना शेष था। उसके लिए भी वह सज्ज हो गया। बेन्नातट नगर के राजा को उसने अपनी अभिनय कला से रिझाने का संकल्प किया।

खेल शुरू हुआ। वहाँ उस रात सारा नगर जमा हुआ था। राजा अपने स्थान पर सपरिवार बैठ गया।

ईलाची को वह नटी बहुत प्रिय थी। नटी को वह नट बहुत प्रिय था। दोनों ने आज अपनी कला में जान डाल देने का निर्णय करके अभिनय शुरू किया ।

पर कमनसीब ईलाची ! वह जिस पर अपने जान की बाजी लगा रहा था, उसी नटी के अनन्य लावण्य को देखकर राजा उस पर प्रथम दृष्टि में ही मुग्ध हो गया था । उसके मन की ऐसी बुरी मुराद थी कि बांस पर चढकर जब ईलाची खेल दिखा रहा हो तब वह बांस पर से गिरे और मर जाए। इसके अतिरिक्त वह रूपसि हाथ लग जाय।

एकबार ऐसा हैरतअंगेज खेल दिखाकर बांस से ऊतरकर ईलाची ने राजा के सम्मुख आकर कमर से झूककर तीन बार प्रणाम किए। उसे बड़ी बक्षिस की उम्मीद थी पर अफसोस ! कुटिल मन के राजा ने ईलाची से कहा , दोस्त ! मैं राज्य के किसी काम की चिंता में पड गया था। इसलिए तुम्हारा खेल मैंने देखा ही नहीं है। पुन: एकबार दिखाओ। ''

दूसरा खेल पहले खेल से भी उत्कृष्ट ! पुन: नमस्कार ! फिर ऐसी ही कोई बात !

और तीसरी बार खेल प्रारम्भ हुआ। नटी मृदंग बजा रही थी। उसने आँख से संकेत दिया कि ईलाची! इस बार तो उस पार या इस पार, हौसला बनाए रखना !''और ...उसके उत्साह प्रेरक संकेत से ईलाची ने ऐसे दाँव दिखाना शुरू किया कि कभी तो प्रेक्षक चिंता में पड जाते थे। सबको ऐसा लगता था कि यह नटराज इस रस्से पर से नियंत्रण गँवाकर लूढ़क जाएगा।

राजा की नजर तो नटकन्या की ओर ही थी। उसका अजपा जप चल ही रहा था कि : ईलाची जल्दी से नीचे गिरे और मर जाए। अब तो सुबह हो गई थी। सूर्य भी ऊपर चढ़ने लगा था। उसी क्षण बगलवाले घर की रसोई में उसने एक दृश्य देखा। किसी अवसरवश बाहर गई हुई करोड़पति की पुत्रवधू सोलह शृंगार सजकर अभी तो घर में कदम ही रख रही थी कि यकायक एक हृष्टपृष्ट शरीरवाले जैन मुनिराज धर्मलाभ' कहते हुए उस घर में पधारे। अत्यंत धर्मनिष्ठ पुत्रवधू ने अतिहर्षित होकर पधारिए पधारिए' कहकर मुनिराज का सत्कार किया।

उनको रसोई में ले आई। केवल दो ही लोग थे। दोनों अत्यंत रूपवान! मनोहर ! मोहक! बहू ने लड्डू से भरा थाल उठाकर ऐसा लाभ प्राप्त होने के कारण भावविभोर होकर वह बहुत आग्रहपूर्वक अधिक लड्डू बहोरने के लिए बिनती करने लगी। उसी वक्त उसकी नजर वहाँ गई। नटी तो इस पुत्रवधू की सुंदरता के आगे कुछ भी नहीं थी ,पर उसने देखा कि उस अणगार की नजर तो उसे देखने के लिए जरा भी उल्लसित नहीं थी। दो पलकों के ऊपर दो पत्थरों का भार रखा हो ऐसे दोनों पलकें नीचे झुकी हुई थीं। ज्यादा लड्डू लेने के उस स्त्री के आग्रह को गंभीर मुद्रा से दृढ़तापूर्वक नकार दिया और कुछ ही क्षण में वे वहाँ से बिदा हो गए।

ईलाची के खून में रही खानदानी कुलबुलाहट अनुभव करने लगी। उसने अपनेआप से धिक्कार अनुभव किया। अति घोर पश्चात्ताप से उसके सारे आत्मप्रदेश जल ऊठे और उस आग में अनंतानंत कर्म चूर होने लगे। पलक झपकते ही ईलाची ने घातीकर्मों का नाश करके वीतरागदशा और सर्वज्ञता को प्राप्त कर लिया। देवों को सूचना मिलते ही उन्होने सिंहासन की रचना कर के भगवान को उस पर बिठा दिया। रंगमंडप अब देशनामंडप बन गया।

ईलाची ने धर्मदेशना प्रदान की, नश्वर के प्रति राग से होनेवाली आत्मा की बरबादी का प्रत्यक्ष दर्शन राजा इत्यादि को करवाया। राजा भी निर्विकार हुआ। नटी श्राविका हुई। उसका सारा परिवार धर्मप्राण हुआ।

90. पितृमोह वश अरनिक बरबाद!

तगरा नगरी में एक परिवार था। माता भद्रा,पिता दत्त !और एकमात्र पुत्र अरणिक (अर्हन्नक) ।

वीतराग वाणी सुनकर दत्त एवं भद्रा को संसार से वैराग्य हुआ पर अरणिक अभी छोटा सा बालक था। किसे सौंपा जाए ? यह समस्या थी। आखिरकार ऐसा तय हुआ कि बालक है तो बालक पर उसे भी साथ में दीक्षा दी जाए। इस प्रकार सारे परिवार ने दीक्षा अंगीकार की। अरणिक मुनि तो बालक थे इसलिए उन्हें पिता दत्त मुनि को उसके प्रति बहुत मोह था। उसका सारा काम दत्त मुनि ही कर लेते थे। उसे कुछ भी करने नहीं देते थे। समय बीतते अरणिक मुनि बालक से कुमार हो गए। अन्य मुनियों ने पिता–मुनि को समझाया कि अब अरणिक मुनि को मुनि जीवन की भिक्षाचर्या आदि सभी तालीम में जोड़ना चाहिए अन्यथा यह अतिरेकी लाड और अतिरेकी अनुकूलताऑ की सोहबत उन्हें नुकसान पहुंचाएगी।'' परंतु काश! पिता मुनि को यह बात जंची नहीं। उन्होंने अपना वही रवैया जारी रखा।

और ....एक दिन अचानक पितामुनि का स्वर्गवास हो गया। अरणिक मुनि को बहुत दुःख पहुंचा। स्वयं एकाएक ऐसी अनाथ परिस्थिति में आ जाने के कारण बहुत चिंतीत हो गए।

कुछ समय तो मुनि उनके लिए भिक्षा आदि लाये पर बाद में उन्होंने स्पष्ट शब्दों में अरणिक मुनि को बता दिया कि आपको भोजन बापरना है तो भिक्षा के पात्र लेकर हमारे साथ भिक्षार्थ आना पड़ेगा। ''

जीवन में पहली बार अरणिक मुनि पात्रों का भार उठाए मुनियों के साथ भिक्षा के लिए निकले।

वह था बैशाख महिना। धरती तो ऐसी तप रही थी कि उस पर पैर भी न रखा जा सके। सुंदर कोमल काया के स्वामी अरणिक मुनि उस तप्त धरती पर अपना पैर भी नहीं धर पा रहे हैं। जहां कहीं भी पैर रखने जितनी छांह दिख जाए, वहाँ दौड़ जाते थे। कुछ देर खड़े रहकर आगे बढ़ते थे। इस स्थिति में उनके साथी साधु तो आगे निकल गए। अरणिक मुनि किसी दुकान के छपरे के नीचे खड़े हो गए।

उसके ठीक सामने एक हवेली थी। झरुखे में खड़ी धनिक युवती ने सुंदर मुनि को देखा। भिक्षार्थ दासी द्वारा बुला लिया। मुनि के मुख पर बेचैनी के भावों को उस औरत ने पढ़ लिया। उसका पति काफी समय से घर से दूर था।

अत: वह अति वासना पीड़ित थी। उसने मुनि से खुलकर बात की: लुभाया : लिपटाया : वासनाप्रेरित कटाक्ष करके बेचैनी में डाल दिया...

और.... मुनि का पतन हुआ। संसार सुख मनाने में अरणिक के बहुत दिन महीने बीत गए।

एक दिन यह युगल झरोखे में बैठकर प्रेमकेलि कर रहा था कि उन्होंने एक करुणापूरित दृश्य देखा।

एक वृद्ध साध्वीजी महाराज पगलाई हुई सी ज़ोर ज़ोर से चीखती चिल्लाती हुई आगे बढ़ रही थीं। तमाशे के लिए किसी बुलावे की जरूरत नहीं रहती। इस न्याय से सैंकड़ों लोग उनके पीछे दौड़ रहे थे।

साध्वीजी के शब्द थे :ओ अरणिक ! ओ मेरे प्रिय अरणिक मुनिवर ! आप कहाँ हैं ? क्या आपने साधुवेश का त्याग कर दिया है ! ओ अरणिया ! क्या किसी कामिनी ने तुम्हारे साधुजीवन का पतन कर दिया है ? ओ बेटा ! तुम्हारा यह पतन तुम्हारी साध्वी माता के लिए असह्य है। वह पागल तो नहीं ही होगी पर वह बेचैनी की अवस्था में रहकर ही मर जाएगी। ओ बेटा ! तुम जहां भी हो, मेरे पास आ जाओ।''

इन शब्दों ने अरणिक को हिलाकर रख दिया। अपनी भूल के लिए वह भयानक पश्चात्ताप अनुभव करने लगा। खुद के द्वारा आचरित नीचता के कारण वह अपने आप पर धिक्कार भाव अनुभव करने लगा।

प्रेयसी की सम्मति से वह एकदम तेजी से अपनी साध्वीजी माता के पास जाकर माता के पैर पकड़ लिए। वह बहुत रोया। उसकी यह हालत देखकर साध्वी माता को बहुत ठेस लगी। वह भी बहुत रोने लगी।

उन्होंने अरणिक को हितशिक्षा देते हुए कहा :बेटा ! जो हुआ सो हुआ। तुम अपने सारे पापों के प्रायश्चित रूप पुन: दीक्षा ग्रहण कर लो।''

अरणिक ने कहा : माता साध्वीजी! मुनि–जीवन का मार्ग अति कठिन है। मैं संयम का पालन करने में असमर्थ हूँ। तुम यदि कहो तो मैं मुनि तो हो जाऊंगा पर तुरंत ही अनशन करके प्राणत्याग कर दूंगा।''

माता साध्वीजी ने कहा :बेटा ! संयम धर्म के स्वीकार के बिना कोई चारा नहीं है। तुम्हारे द्वारा बाँधे गए काले कर्मों को धोने का एकमात्र यही उपाय है। तुम यदि दीर्घ कालीन साधुधर्म का पालन नहीं कर सकते हो तो मुझे तुम्हारी एक बात स्वीकार्य है कि दीक्षा ले लेने के बाद अनशन कर दिया जाए। इस प्रकार भी तुम साधुत्व का

स्वीकार कर लो। तुम्हारा यह संसारी वेष, तुम्हारा यह पतित जीवन मुझ से नहीं देखा जा रहा।'

माता साध्वीजी की भावना को अरणिक ने पूर्ण किया। संयम जीवन का स्वीकार करके तुरंत अतितप्त पर्वत–शीला पर उसने संथारा (शयन) कर लिया। कुछ ही घंटों में उसकी देह मोम की तरह पिघल गई। अरणिक मुनि को सदगति हुई। जब माता को इस बात की खबर हुई तब उसके दिल को बड़ी शाता हुई।

91. चक्रवर्ती सनतकुमार

अरे विप्रो ! आप क्या देखकर आश्चर्यमुग्ध हो गए हैं?'' युवा चक्रवर्ती सनतकुमार ने दरवाजे पर आकर खड़े दो ब्राह्मणों से पूछा।

उन विप्रों ने कहा, राजन ! हमने आपके मोहक सौन्दर्य की बहुत प्रशंसा सुनी है। अत: उस प्रशंसा को सुनकर उस सौन्दर्य को साक्षात देखने के लिए आए हैं। अब तो ऐसा लग रहा है कि जिसने आपकी देह–शोभा का वर्णन किया है, वह बहुत ही कम किया है। आपका जो सौन्दर्य है वह उस वर्णित सौन्दर्य से तो कहीं ज्यादा बढ़ चढ़कर है।''

मन ही मन मुस्कुरा रहे चक्री ने उनसे कहा, अरे ,यह तो कुछ भी नहीं है। अभी तो मैं नींद से जगकर पलंग पर बैठा हूँ। जब मैं स्नान कर लूँ, आभूषण आदि से सज्ज हो जाऊँ और राजसिंहासन पर बैठूँ तब मेरी शोभा को देखने के लिए आप पुन: आइए, उसकी तो आप कल्पना भी नहीं कर सकते।

सनत की यह बात सुनकर विप्रों ने बिदाई ली।

बात यह थी कि ये विप्र धरती पर उतरे हुए विजय और वैजयंत नामक दो देव थे। देवसभा में देवों के राजा इंद्र के पास संगम नामक अति तेजस्वी देव जब आया तब उसका तेज देखकर सारे देव दंग रह गए थे। देवों ने देवेन्द्र से ऐसे तेजस्वी रूप की प्राप्ति के कारण स्वरूप सत्कर्म की जिज्ञासा व्यक्त की तब देवेन्द्र ने फरमाया कि इस आत्मा ने अपने मानव भव में वर्द्धमान तप की ओली का घोर तप करने का सत्कर्म किया है ,इसी लिए उसे स्वर्ग में ऐसा

तेजस्वी रूप प्राप्त हुआ है।''

देवों ने पुन: सवाल किया कि क्या कोई इससे भी बढ़कर रूपवान वर्तमान में होगा?''

देवेन्द्र ने कहा ,मर्त्यलोक की धरती ऊपर चक्रवर्ती सनतकुमार है। उसके रूप के आगे इस संगमदेव का रूप तो कुछ भी नहीं है।''

बस...देवेन्द्र के ये शब्द सुनकर विजय और वैजयंत सनत चक्री का रूप देखने के लिए आए थे। सनत ने पुन; आने के लिए कहा होने के कारण वे पुन: आए हैं। राजा सनत सिंहासन पर सज–सँवरकर बैठे हुए थे पर पता नही कौन जाने? उनका रूप देखकर देवों का मुख पर निराशा छा गई। कोई आश्चर्यमुग्धता नजर नहीं आई।

इससे कुछ गहरे विचार में पडे सनत ने ब्राह्मण रुपधारियों से पूछा,अरे विप्रो ! आपको मेरा इस समय का रूप कैसा लगा? '' विप्रों ने कहा :राजन ! आपके शरीर में अभी तेज गति से सोलह भयानक रोग एकसाथ प्रवेश करने में लगे हैं। इससे आपकी कांति कुम्हलाने लगी है और देह से दुर्गंध आने लगी है।''

ये शब्द सुनते ही सनत को जागर्ती आ गई। देह की क्षणभंगुरता का अहसास होते ही समग्र संसार की असारता की समझ आ गई।

अक्लमंद को इशारा ही काफी है। चक्रवर्ती सनतकुमार ने तत्क्षण संसार का परित्याग किया। उन्होने मुनिवेष धारण करने के लिए दीक्षा अंगीकार की।

छह महिने तक उनके स्वजन,स्नेहीजन तथा लाखो प्रजाजन उनके पीछे चलते रहे ,रोते रहे : संसार में वापस लौट आने के लिए सब आजिजी करते रहे पर सारी बिनतियाँ

व्यर्थ होने पर सब वापस लौट गए।

सनत अब साधक हुए। सोलह भयानक रोग –शूल,,दाह,कुष्ट रोग (कोढ़) आदि से वे पूरी तरह से घिर गए पर अपार समता से लगातार सातसौ वर्ष तक उन्होंने उस पीड़ा को इस प्रकार सहा कि उनकी आत्मा में अनेक लब्धियाँ उत्पन्न हो गई।

एकबार वही दोनों देव ,औषधी और उपाय का थैला कंधे पर रखकर वैद्य के रूप में सनतमुनी के पास आए

और संपूर्ण रुप से रोगमुक्त कर देने के लिए औषधियों के लेप आदि प्रयोग करने कि आज्ञा चाही।

सनत मुनि ने कहा : यह जो बाहरी रोग हैं, वे तो प्रत्येक समय मेरे अनंत कर्मों का नाश करते हैं। अत: वे तो मेरे उपकारी हैं। उनको दूर करने की बात बिलकुल न करें पर सबूर! यदि तुम्हारे अंदर ताकत हो तो मेरी आत्मा में एकसौ अड्ठावन रोग (158 कर्म प्रकृतियां) हैं। यदि उन्हें दूर करने की आप में ताकत हो तो मुझे वह मंजूर है। अभी से काम शुरू कर दीजिये।''

सनत मुनि की यह बात सुनकर देव तो उनके धैर्य पर आफ़रीन पुकार गए। अपना असली दैवी रूप प्रकट करके उनकी भावसभर वंदना करके सारी बात खुलकर कही। उसके बाद सब ने बिदा ली।

अगाध साधना करके मुनि सनत कालधर्म को पाकर तीसरे देवलोक के देव हुए।

92. कीर्तिधर और सुकोशल मुनि

धर्म करो भाई ! धर्म करो'' रास्ते पर से गुजरते, ऐसे चिल्लाते दरिद्र जाति के किसी आदमी की आवाज राजमहल के झरुखे में बैठे राजा कीर्तिधर ने सुनी और एक ही क्षण में चिंतन की अतल गहराई में गोता लगाया। उन्हें संसार की असारता का अहसास हुआ। अपने कौन से पूर्वजों ने संसार को असर समझकर किस प्रकार यकायक चढ़ती हुई जवानी में : गठबंधन की अवस्था में ही –दीक्षा ली थी। ये सारे दृश्य अपनी नजर के रुबरु होते हुए गुजर गए। अपने आप पर धिक्कारभाव अनुभव करने लगे।

उसी रात सारे स्वजनों को एकत्र कर के दीक्षा लेने का प्रस्ताव पेश किया। चाहे अनचाहे सबको सम्मति देनी ही पड़े ऐसी स्थिति में वृद्ध मंत्री ने प्रश्न किया कि महारानी

सगर्भा हैं। यदि वे पुत्र दें तो उसे उचित समय पर राज्यारूढ़ करने के बाद ही क्या महाराजा को दीक्षा नहीं लेनी चाहिए ? क्या कभी राज्य को राजा विहीन रखा जा सकता है ?''

राजा कीर्तिधर विचार में पड़ गए। बुजुर्ग मंत्री कि बात का उन्होंने स्वीकार किया।

समय बीतते महारानी सहदेवी ने पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम सुकोशल रखा गया। वह मात्र पंद्रह दिन का ही हुआ था कि राजा ने उसका राज्याभिषेक करके उन्होंने संयम के मार्ग पर प्रस्थान कर दिया।

सुकोशल बड़ा हुआ। उचित समय पर राजमाता सहदेवी ने अनेक राजकन्याओं के साथ उसका विवाह करवाया। राजमाता को एक बात का भय हमेशा लगा रहता था कि कहीं बेटा भी पिता की राह पर चला न जाए। इसलिए वह अविरत रूप से सतर्क एवं सजग रहती थीं।

एकबार महारानी सहदेवी और सुकोशल की धायमाँ झरोखे में बैठे बैठे राजमार्ग पर हो रही आवाजाही को देख रही थीं कि अचानक उन्होंने राजर्षि कीर्तिधर को किसी के घर से भिक्षा बहोरकर बाहर निकलते हुए देखा। वे अब जंगल के मार्ग पर आगे बढ़ रहे थे।

राजमाता के मन में आशंका हो गई और तुरंत उन्होने सेवकों द्वारा राजर्षि को धक्का देकर, अपमानित करके जंगल में धकेल दिया। राजर्षि मात्र राजर्षि नहीं थे ;ब्रह्मर्षि भी थे। उनका मान ब्रह्मलीन हो गया था। अत: वे मान–अपमान से वे पर थे। उन्हें ऐसे व्यवहार से जरा भी दु:ख नहीं हुआ।

इस घटना की खबर मिलते ही सुकोशल की धायमाँ को बहुत धक्का लगा। वह कोने में बैठकर रोने लगीं। अचानक वहाँ जा पहुंचे राजकुमार सुकोशल ने धायमाँ से रोने की वजह पुछी तो सारी बात स्पष्ट हो गई। सुकोशल माता सहदेवी से नफरत करने लगा। वह मन ही मन कहने लगा कि यह तो कैसी क्रूर पत्नी कि अपने महान पति–मुनि को ढक्के देकर नगर से बाहर करती है!''

सुकोशल माँ के पास गया। ऐसा करने की वजह पुछने पर उसने कहा कि तुम्हारे

पिता तुम्हें भी वैराग्य का बोध देकर दीक्षादान कर देंगे। इस भय से मैंने यह सब किया है। ''

तत्पश्चात सुकोशल रथ पर आरूढ़ होकर तुरंत पिता–मुनि के पास पहुंचा। रास्ते में उसे एक ही विचार आता रहा कि यह तो कैसा असार संसार! जहां एक माँ पुत्रमोह के कारण अपने पति के प्रति इतना क्रूरतापूर्ण आचरण कर सकती है! सुकोशल को इस स्वार्थी संसार से वैराग्य हो गया। पिता मुनि की वैराग्यगर्भित बातों से अधिक प्रभावित हुआ। पिता– मुनि की समता देखकर तो वह दंग रह गया।

माता सहदेवी के कल्पांत की जरा भी दरकार किए बिना सुकोशल ने संयम मार्ग का स्वीकार किया।

दोनों पिता–पुत्र मुनि घोर और उग्र तप की राह पर बढ़ गए। इस तरफ राजमाता को भी भारी ठेस लगी। जैसा चाहा था वैसा नहीं हुआ। बेटे ने उसकी इच्छा विरुद्ध संयम का मार्ग अपनाया। इससे अधिक तीव्र दुर्ध्यान का प्रत्याघात पैदा हुआ। उसी में राजमाता ने अपना आयुष्य समाप्त कर लिया। मरकर वह बाघिन हुई।

एकबार महीने के उपवास के पारने के दिन दोनों पिता–पुत्र गुफा से बाहर आकर नगर की ओर बढ़ रहे थे। तब रास्ते में जंगल का जो मार्ग पड़ा वहाँ से आगे बढ़ते हुए वह बाघिन सामने आ गई। दोनों मुनियों ने परिस्थिति की गंभीरता को समझ लिया और तत्क्षण ध्यानस्थ मुद्रा में खड़े हो गए। समाधिभाव में लीन हो गए।

पूर्वभव में उत्पन्न किया हुआ बैरभाव बाघिन के अंग अंग में व्याप्त हो गया। उसने सबसे पहले तो सुकोशल मुनि को पछाड़ दिया और पिता कीर्तिधर मुनि के सामने ही उन्हें जीते जी पैर से खाने लगी। कुछ ही घंटों में पुत्र मुनि को खा जाने के बाद वही दशा उस बाघिन ने पिता मुनि की की।

दोनों आत्माएँ समाधिलीन रहीं। देह की क्षणिकता और उसका आत्मा से नितांत भिन्नत्व– इन दो विचारों से उनकी समाधि अवस्था अत्यंत पुष्ट हुई। उन्होंने वीतराग दशा और कैवल्य को प्राप्त किया।(मतांतर से सुकोशल मुनि के दांत देखकर बाघिन को जातिस्मरण हुआ है। उसे अपनी भूल समझ में आ गई है। उसने खूब पश्चात्ताप करके आत्मकल्याण किया है।)

93. विष्णुकमार मुनि का आवश्यक क्रोध

उस नगरी का नाम हस्तीनापुर था। उसके राजा का नाम पद्मोत्तर था। उसके दो पुत्र थे: विष्णुकुमार और महापद्म। नमुचि नामक जैनधर्म के कट्टर द्वेषी ने महापद्मकुमार के कट्टर शत्रु सिंहबल राजा को भारी पराजय दिलाने में सहायता की होने के कारण वह (नमुचि) महापद्मकुमार का जिगरी दोस्त हुआ था। उस वक्त उसने उस जिगरी और भीतर से जैनधर्म द्वेषी नमुचि को अपना महामंत्री बनाया।

इस तरफ महापद्म राजा के सगे बड़े भाई विष्णुकुमार मुनि बनकर घोर तपस्या की राह पर चल दिये। इससे उन्हें बहुत लब्धियाँ प्राप्त हुई। उसमें उन्हें आकाश गामिनी लब्धि भी प्राप्त हुई थी। इस लब्धि के बल पर वे मेरु पर्वत पर जाते थे और वहाँ के परमात्माओं के दर्शन वंदन आदि करके मुनिजीवन को धन्यता प्रदान करते थे।

एकबार सुव्रत नामक जैनाचार्य हस्तीनपुर पधारे। यहाँ के राजा महापद्म बहुत जैन

धर्मानुरागी है ऐसी ख्याति से ही यह जैनचार्य उसकी नगरी में पधारे थे।

दुर्भाग्यवश नमुचि को भूतकाल में इस जैनाचार्य से वाद हुआ था। इस वाद में वह पराजित हो गया था। यही जैनाचार्य अपने नगर में आए होने की खबर मिलते ही अपनी पराजय का बदला लेने का उसने निर्णय किया।

नगर की प्रजा के साथ साथ राजा महापद्म भी नमुचि मंत्री के वश में थे। राजा महापद्म उसकी विरुद्ध कुछ कर सकते नहीं थे।

हस्तीनापुर में चातुर्मास करने के लिए पधारे जैनाचार्य को तत्काल नगर छोड़ देने का हुक्म फरमाया। जैनाचार्य ने वर्तमान चातुर्मास में विहार करने में असमर्थता दिखाई। अत: नमुचि और उत्तेजित हुआ और उसने बताया कि सात दिन में नगर त्याग करो या प्राणत्याग के लिए तैयार हो जाओ।' समस्या में कोई रास्ता निकालने के लिए सुव्रताचार्य ने लब्धिसम्पन्न मुनि को मेरु पर्वत ऊपर साधना कर रहे विष्णुकुमार के पास भेजा।

वर्तमान चातुर्मास में दूर से मुनि को आते देखकर विष्णुकुमार मुनि की समझ में आ गया कि जैनसंघ या उसका श्रमणसंघ ऊपर कोई बड़ा संकट आया होगा तभी इस प्रकार प्रवर्तमान चातुर्मास में किसी मुनि को मेरे पास भेजने के लिए विवश होना पड़ा होगा।

मुनि आए। सारी बात जान–समझकर विष्णुकुमार फौरन हस्तिनापुर जाने केलिए तैयार हो गए। स्व की साधना से संघरक्षा बहुत बड़ी साधना है, ऐसे शास्त्र वचन का उन्होंने आदर किया। आकाशगति की लब्धि द्वारा हस्तिनापुर पहुँचकर वे नमुचि से मिले और नमुचि से पूछा,इन सारे महात्माओं से तुमने सात दिन में नगरत्याग कर देने के लिए कहा है पर वे कहाँ जाएँ?

क्या तुम मुझे तीन कदम जितनी जगह दोगे या नहीं?'' नमुचि ने कहा– हाँ आप तो महाराजा महापद्म के भाई

हैं, अत: मैं आपको तीन कदम जमीन दूंगा लेकिन यदि आपने तीन कदम से ज्यादा जमीन ली तो धड़ से मस्तक कलम कर दूंगा।''

समता के सरोवर में सदैव स्नान करनेवाले इस मुनिराज को नमुचि पर क्रोधित होने के लिए बहुत प्रयत्न करना पड़ा। अंतत: सफलता मिली। उन्होने तुरंत महाकाय शरीर बनाया। इससे हाहाकार हो गया। जंबुद्वीप के दो छोर पर उन्होने दो पैर रखकर नमुचि को जमीन पर पटक कर मुनि ने उससे कहा कि तुम ही बताओ कि अब मैं तीसरा पैर कहाँ रखूँ ? तुम्हारी छाती पर ही रखूँ ना?''

मुनिवर की भयानक हुई आवाज सुनकर महापद्म राजा वहाँ दौड़ा चला आया। सारी बात जानकर उसने मुनिराज के चरण पकड़कर क्षमा याचना की। अति अयोग्य ऐसे मंत्री के हाथ में सारी सत्ता सौंपकर वह स्वयं अपराधी हैं –इस बात का स्वीकार किया।

मुनि का क्रोध अब भी शांत नहीं हो रहा। आखिरकार मुनि के मस्तक के समक्ष स्वर्ग के देवों ने क्षमा की महानता के गीत गाये: रास लिए। इसे सुनकर मुनिराज शांत हुए। शरीर को उसके मूल स्वरूप में ले आए।

दुष्टों का दमन करने के लिए,धर्म की रक्षा करने के लिए अंततोगत्वा संसारत्यागी मुनि को भी अपना चमत्कार दिखाना पडे। इसमें कोई पाप नहीं है ,कुछ अनुचित नहीं है बल्कि न्यायोचित ही है।

94. शान्तुमंत्री की सुधार की रीति

महामंत्री शान्तु पाटण के महामंत्री थे। उनकी वृद्धावस्था में घटी हुई यह एक घटना है।

उन्होंने स्वद्रव्य से शान्तु–वसही नामक गगनचुम्बी जिनालय का निर्माण करवाया था। घर से हाथी पर सवार होकर अत्यंत आडंबरपूर्वक मध्यावेला में वे जिनालय में जिनेश्वरदेव की पूजा करने के लिए जाते थे।

एक दिन की बात है। इस प्रकार वे राजमार्ग से हाथी पर जा रहे थे। वहाँ किसी तंग गली में उनकी नजर गई।

उन्होंने देखा कि किसी युवा वेश्या के गले में हाथ डालकर किसी साधु को पान चबाते और हास्य–विनोद करते हुए देखा। जैन साधु की यह हालत देखकर मंत्री क्षणभर के लिए तो अस्वस्थ हो गये। वे आगबबूला हो ऊठे लेकिन दूसरे ही क्षण उन्होंने स्वस्थता घारण कर ली। हाथी को खड़ा रखवाकर नीचे उतरकर वे जैनसाधु की दिशा में चलने लगे।

साधु और वेश्या ने देखा कि मंत्री उनकी ओर बढ़ रहे हैं। अत: वे कांपने लगे। साधु समझ गये कि उनकी कुचेष्टा मंत्री की नजर में बराबर आ गई है। मंत्री को कितना गुस्सा आएगा? क्या करेंगे? साधुवेष खींच लेंगे ; यह तो ठीक है पर बहुत मार मरवाएंगे। ऐसे सारे विकल्पों से साधु तो घबड़ा गया।

पर कमाल हो गया। मंत्री ने साधु के निकट विधिपूर्वक वंदन करना शुरू किया। वेश्या तो कहीं दूर जाकर खड़ी हो गई थी। जैसे उन्होंने कुछ देखा–जाना ही नहीं। ऐसा भाव दिखाते हुए शान्तु मंत्री ने वंदना करके बाद में मुनि की सुखशाता पूछी, बाद में मस्तक झुकाकर, हाथ जोड़कर वहाँ से लौट गये और हाथी पर आरूढ़ होकर जिनालय गये।

वह साधु तो इतना ठंडा पड गया कि काटने पर खून न निकले।

शान्तु ने यदि उसके कुकर्म के बदले में दो थप्पड़ भी मारे होते तो उससे जो वेदना होती उससे ज्यादा वेदना उनके मौन से उन्हें हुई। अपनी नीचता पर साधु को नफरत हो गई। उन्होंने तुरंत अपने गुरु के पास जाकर सारे कातिल पापों का शुद्ध भाव से प्रायश्चित किया और गुरु की आज्ञा लेकर परम पवित्र शत्रुंजय तीर्थ की भूमि पर घोर तपस्या करने के लिए चल दिया।

पहाड़ के एकांत स्थल पर वे ज्यादा से ज्यादा वक्त ध्यानस्थ रहने लगे। यथा संभव उपवास करके अपने दिन बिताने लगे। उनकी अंतरात्मा रोती रहती थी। पूर्व जीवन में कृत काले पापों के लिए,....उन पापों को जला देने के लिए उन्होंने ध्यान और तप का कठोर मार्ग अपनाया था।

कुछ ही बरसों की घोर साधना में तो उनके शरीर का मांस और रक्त सूख गया था और शरीर सूखकर कांटा हो गया था। ऐसे महात्मा के दर्शनार्थ भला कौन नहीं जाएगा? जितने भी यात्री पहाड़ की यात्रा करने के लिए जाते थे, वे सारे उनकी वंदना अचूक करते थे।

एकबार शान्तु मंत्री यात्रार्थ गये। वे भी मुनिराज की वंदना करने के लिए गये। बरसों पूर्व की वही आवाज; वंदन–विधि की वही खनक...कान पर पडते ही परिचित आवाज की कल्पना से उस ध्यानस्थ मुनि ने अपनी आँखें खोलीं।

मंत्री को देखा और ध्यान से मुक्त हुए। मंत्री ने मुनिवर की शाता पुछी और बाद में कहा 'आप धन्य हैं : आपके गुरुदेव को भी धन्य है कि जिन्होंने आपको ऐसा कर्मक्षय का मार्ग प्रशस्त किया...''

तुरंत मुनि ने कहा: मेरे गुरु कौन हैं ? यह आप जानते हैं ?''

शान्तु मंत्री ने अपना अज्ञान बताते हुए मुनि ने कहा,ऋऋउनका नाम है ;शान्तु मंत्रीश्वर । जिसने भयंकर असाधुता की स्थिति में मुझे देखकर मौन की जिस ताकत का उपयोग किया है, उसीने मेरे जीवन को ऐसे उत्तम परिवर्तन तक लाकर रख दिया है।''

शान्तु मंत्री ने मात्र इतना ही कहा ;ऐसा भी हो सकता है..... कर्मवश जीव कुछ भी कर सकता है। पर वह पुन: खड़ा होकर दौड़ने लग जाए ,यही बहुत बड़ी बात है !

95. खानेवाला उपवासी!

भोग भोगनेवाला ब्रह्मचारी !

श्रावस्ती नगरी के दो राजवंशी भाई: क्रमश: सूर और सोम। सूर राजा था,सोम युवराज था।

धर्मवृद्धि नामक जैनाचार्य की वाणी सुनकर लघुबंधु सोम को संसार से वैराग हुआ। उसने दीक्षा ली। कुछ ही समय में वह बहुत ज्ञानी हुए। बड़े तपस्वी हुए। ज्ञानबल के कारण मन एकदम निर्मल हुआ पर तपोबल से शरीर एकदम निर्बल हुआ ।

इस तरफ राजा सोम राज्य का पालन करते थे; रानी के साथ संसार सेवन करते थे पर वे संसार से बहुत

विरक्त थे। उन्हें किसी वस्तु में रुचि नहीं थी। अपने लघु बंधु ने आत्मकल्याण की साधना कर ली, उस बात की वे बारम्बार खूब खूब अनुमोदना करते थे। साथ ही साथ स्वयं ऐसा जीवन साफल्य प्राप्त नहीं कर सके, इस बात को लेकर बहुत पश्चात्ताप कर रहे थे।

एकबार नगर के बाहर उद्यान में भाई मुनि के आगमन के समाचार राजा को प्राप्त हुए। राजा सपरिवार भाई मुनि की देशना सुनने के लिए गए।

जितने दिन सोम मुनि ने देशना प्रदान की ,उन सभी दिन वे सब देशना सुनने के लिए जाते रहे।

'देवर मुनि जब तक उद्यान में रहें तब तक नियमित देशना सुनने के लिए जाना है ,ऐसी प्रतिज्ञा रानी ने ली। जिस दिन उनके वंदन न हो उस दिन उपवास करने का अभिग्रह रानी ने लिया।

एक दिन बहुत बरसात होने के कारण गाँव के बाहर आई नदी दोनों किनारों पर बहने लगी। रानी के लिए उद्यान पहुंचाना असंभव था। उसने राजा के समक्ष अपनी परेशानी व्यक्त की। राजा ने बताया कि तुम ऐसा करो कि नदी के तट पर ही नदी कि अधिष्ठाईका देवी हैं, उन्हें प्रणाम करते हुए कहना कि हे देवी! यदि मेरे पति ने देवर के दीक्षा दिवस से लेकर आज तक अखंड ब्रह्मचर्य का पालन किया हो तो मुझे मार्ग प्रदान करो।''

रानी तो ये शब्द सुनकर मन ही मन हंसने लगीं। अपने पति को,खुद से कितने पुत्र हुए हैं? वह सब जानती है। फिरभी स्वयं को अखंड ब्रह्मचारी कहलाने की पति की हिम्मत पर उसे हँसी आई परंतु जब नदी ने सचमुच रास्ता दे दिया तब तो वह एकदम दंग रह गई।

उद्यान में जाकर उसने देशना सुनी। अपने लिए लाये गए आहार में से देवर मुनि को बोहराया। बाद में उसने अपने मन की उलझन को प्रकट करते हुए खुलासा मांगा तब मुनि ने कहा कि तुम्हारा पति तो मन से बहुत अनासक्त हैं। भोग भोगने के क्षण में भी वह हृदय से संसार–निवास के लिए तीव्र पश्चात्ताप करता है। अत: वह भोग भोगता है फिरभी वह पूर्ण ब्रह्मचारी अवश्य कहलाता है। ''

रानी को यह समाधान पसंद आ गया। जब वह शाम को घर जाने के लिए तैयार हुई तब उसने देखा कि मुशलाधार बारिश होने के कारण नदी में पुन: भारी बाढ़ आई है है। उसने मुनिराज को सहायता करने के लिए कहा।

मुनि ने कहा कि नदी देवी से कहो कि यदि मेरे देवर मुनि के दीक्षा लेने के दिन से आज तक सदैव उपवासी रहे हों तो मुझे रास्ता दीजिए्। '

ये शब्द सुनकर रानी के मन में विचार आया कि देवर मुनि ने तो आज मेरे हाथों से बोहरा है तो वे नित्य उपवासी कैसे हो सकते हैं?

पर नदी –देवी ने तो रानी के उन शब्दों पर रास्ता दे दिया! रानी को भारी अचंभा हुआ्। इस बात की स्पष्टता उसने अपने पति से चाही तो पति ने उसे कहा कि, तुम्हारे देवर–महाराज खाने के बारे में एकदम अनासक्त हैं। अत: वे खाते हैं फिरभी उपवासी ही कहलाएंगे। ''

रानी को इस बात की बड़ी खुशी हुई कि अपने पति और देवर महाराज अत्यंत अनासक्त जीव हैं्।

ऐसे पति की पत्नी होना और ऐसे देवर की भाभी होने का दोहरा सौभाग्य उसे प्राप्त हुआ है। अत: वह अति प्रसन्नता अनुभव करने लगी। पति का मन सदैव संयम में ही लगा रहता है, यह जानकार उसने भी अपने पति के साथ संयम लेने का निर्णय किया।

थोड़े समय के बाद राजा और रानी ने दीक्षा ली। दोनों अनासक्त मुनियों ने उत्तम कोटि का संयम पालन किया और मोक्ष प्राप्त किया।

96. वह मैं ही हूँ

एक नगर था। उस नगर के राजा का नाम यशवंतराव था। एक दिन उन्हें विचार आया कि नगर के बाहर जो टेकरी है वहाँ लोकनाथ श्रीकृष्ण के भव्य मंदिर का निर्माण कराना चाहिए्। उसके आसपास मनोहर उद्यान की रचना करवानी चाहिए। जिससे कि लोगों को आनंद–प्रमोद का स्थान प्राप्त हो सके और प्रभु भक्ति का आनंद भी उठा सके।

देखते ही देखते भव्य मंदिर निर्मित हो गया। सुंदर उद्यान भी बना। छुट्टी के दिन सैकड़ो लोग सपरिवार वहाँ आने लगे।

मंदिर में भगवान श्रीकृष्ण की भव्य मूर्ति की प्रतिष्ठा हुई। उसकी विराट दीवारों पर श्रीकृष्ण के जीवन का आलेखन करनेवाले प्रसंगों की चित्रकारी करने का विचार राजा यशवंतराव के मन में आया। यह कार्य बहुत उत्कृष्ट ढंग से किया जाना था। अत: पर्याप्त खोजबीन के बाद उत्कृष्ट प्रकार का चित्रकार राजा को प्राप्त हुआ।

चित्रकार सचमुच बहुत महान कलाकार था। चित्रकारी की उसकी अपनी अनोखी शैली थी। उसने राजा के समक्ष शर्त रखी कि चित्रकारी के कितने घंटे हुए? कब पूरा होगा? इतना खर्च क्यों हुआ? आदि कोई भी सवाल पूछा नहीं जा सकेगा। वह जो भी करे, जैसे भी करे, जब भी करे, काम ना भी करे, जो कुछ भी मांगा जाए वह सब काबुल रखना होगा। राजा ने चित्रकार की सारी शर्तें स्वीकार कर ली।

काम शुरू हुआ। दीवारों की साफसफ़ाई हुई। बॉर्डर आदि तैयार हो गई। जब बालकृष्ण का चित्र चित्रित करने का समय आया तब चित्रकार के मन में विचार आया कि, मुझे यदि हूबहू बालकृष्ण बनाने हैं तो ऐसे ही किसी जीवित बालक का सहारा लेना पड़ेगा। मैं उसे अपने समक्ष खड़ा रखकर ही हूबहू चित्र तैयार कर सकूँगा।

उसने यह बात राजा से कही। उसकी सम्मति से वह ऐसे बालक की खोज में एक गाँव से दूसरे गाँव निकाला पड़ा। दो वर्ष बाद एक नगर से उसे हूबहू बालकृष्ण सा लगनेवाला एक बालक मिल ही गया। सदभाग्य से उसका नाम भी कन्हैया ही था। मातापिता से आवश्यक सम्मति लेकर –राजा यशवंतराय द्वारा उसके मातापिता को उचित पुरस्कार दिलवाकर चित्रकार उस बालक को मंदिर में ले आया। चित्रकार उसे राजा की रसोई में स्वादिष्ट व्यंजन खिलाकर उसे बहुत प्रसन्न रखता था। सदैव मुस्कुराते रहते उस बालक का सहारा लेकर चित्रकार ने हूबहू बालकृष्ण का चित्रा तैयार कर दिया। तत्पश्चात बालक को बिदा किया गया।

कुछ बरसों तक चित्रकाम आगे चलता रहा। बाद में कंस का चित्र बनाने का समय आया। चित्रकार हुबहू कंस बनाना चाहता था। अत: पुन: किसी क्रूर मुखाकृतिवाले व्यक्ति की खोज में निकल पड़ा।

काफी समय बीत जाने के बाद एक नगर में उसने दिखने में अत्यंत भयानक मुखाकृतिवाले डरावने इंसान को बांधकर ले जाते हुए चार पुलिसों को देखा।

उस आदमी के चेहरे की भीषणता, उसकी बढ़ी हुई दाढ़ी और मूंछ के कारण वह और जीवंत लगने से इस आदमी के सहारे कंस का हूबहू चित्र खींचा जा सकेगा, ऐसा मन ही मन निर्णय करके चित्रकार ने पुलिस से कहा कि

भयानक दिखनेवाला यह इंसान मुझे सौंप दीजिये। मैं राजा से उसे और आप सब को तगड़ा पुरस्कार दिलवाऊंगा। मुझे इस के सहारे कंस का चित्र रचना करनी है।''

पुलिस ने कहा, इस आदमी ने तो कल एक ही परिवार के छ: लोगों का बड़ी क्रूरता के साथ कत्ल कर दिया है। उसे तो एक क्षण के लिए भी मुक्त किया गया तो भारी परेशानी हो सकती है। हम ऐसी मूर्खता कभी नहीं करेंगे।''

चित्रकार ने राजा के समक्ष निवेदन किया। उनकी पहुँच के द्वारा वह उस हत्यारे को लोकनाथ कृष्ण के मंदिर ले गया। मंदिर तक पहुँचने के रास्ते में तो वह इतना उत्तेजित था और इतना चीखता था कि यह देखकर वह चितेरा बहुत खुश हो गया क्योंकि उसे जैसा चाहिये था वैसा ही कंस के चित्र के लिए सहारा मिल गया था पर कैसा कमाल हो गया कि जैसे ही उस हत्यारे को मंदिर में ला खड़ा किया कि वह एकदम ज़ोर से रोने लगा। मुझे माफ करो। मुझे माफ करो।'' ऐसा बोलने लगा।

यह देखकर उस चितेरे ने उससे कहा, भाई ! इस मंदिर के अति पवित्र वायुमंडल के प्रभाव में तुम आ गए हो और इसलिए तुम अपने पापों का जोरदार पश्चात्ताप करने लगे हो पर तुम यह सब बाद में करना। अभी तो तुम अपने चेहरे पर भारी से भारी क्रूरता दिखाओ। दांत किटकिटाओ;आँख में खुन्नस लाओ; जिससे कि मैं तुम्हारे जैसा ही हूबहू चित्र बना दूँ। ''

पर उस चितेरे के सारे प्रयत्न व्यर्थ हुए।

वह कातिल पश्चात्ताप की पावक ज्वालाओं से पूरी तरह प्रभाव में आ गया था।

चित्रकार हाथ में तूलिका लेकर, निराश के भाव के साथ कुछ देर खड़ा रह गया कि वह हत्यारे ने चीखते हुए कहा ,अरे ओ भाई! वह भी मैं ही हूँ। वह भी मैं ही हूँ। ''

चित्रकार को उस वाक्य का अर्थ समझ में नहीं आने के कारण उसने स्पष्टता करते हुए रोते हुए कहा कि बालकृष्ण के स्वरूप के लिए तुम जिस बालक को लेकर यहाँ इस मंदिर में लाये थे ,वह मैं ही था। हाय! कुसंग वश मैं आज सारे पाप करने में पूरा और शूरवीर ,क्रूर और घातकी हो गया! इस मंदिर की पवित्रता के तरंग मेरे पापों को हिला गए हैं! मुझे अपने पापमय जीवन के प्रति धिक्कार भाव का अनुभव हो रहा है।''

हत्यारे की यह बात सुनते ही चितेरे के दिमाग से विचारों का अंतहीन कारवां चलने लगा। अरे ! एक समय का कृष्ण वह खुद आज कंस हो गया है ! अरे ! इतना घोर कलिकाल चल रहा है !''

और तुरंत चित्रकार ने तूलिका को अपने हाथ से फेंक दिया। हमेशा के लिए चित्रकार के व्यवसाय का त्याग कर दिया।

अभी कल का निर्दोष बालक! जवान होते न होते तो वह कितना बरबाद हो जाता है ! काम से, क्रोध से, व्यसनों से .....

किसी सदगुरु का सत्संग हो तभी कोई ऐसे चीखता है.....

वह भी मैं ही हूँ। वह भी मैं ही हूँ।' एक समय का नितांत निर्दोष !

अन्य समय में नितांत दूषित ! यदि कनैया ही कंस बननेवाला हो तो ? तो क्या धर्म का प्रसार करनेवालों को क्या धर्म प्रसार का काम छोड़ देना चाहिए? कुछ समझ में नहीं आता।

97. बेचारे दासकाका!

ऋऋसुपरिण्टेन्डंट ! क्या आप मुझे आपके वृद्धाश्रम में भर्ती करोगे ? मेरे पास फीस के नाम पर फूटी बादाम भी नहीं है। यदि आप मुझे भर्ती करेंगे तो बहुत अच्छा होगा। मेरा बेटे ने उसकी पत्नी की बातों में आकर मुझे यकायक ही घर से निकाल बाहर कर दिया है! अरे! कितने अरमानों के साथ मैंने अपने एकमेव बेटे को पाल–पोषकर बड़ा किया था! जब वह पाँच साल का था तब उसकी माँ का देहावसान हो गया था; अत: मैं ही उसकी माँ और उसका बाप बना! दोनों लाभ मुझे मिले। कोई बात नहीं। इसमें उसका क्या दोष? ओ नियति ! तुझे मेरा लाख लाख सलाम !''

वह भाई एक ही सांस में सबकुछ बोल गए। उनका नाम था नरोत्तमदास।

पैसों की तीव्र तंगहाली अनुभव कर रहे इस वृद्धाश्रम में मात्र बारह वृद्ध स्त्री–पुरुष थे। धन के अभाव में यह संस्था बंद होने के कगार पर थी। सुप्रिण्टेन्डंट भी बहुत त्रस्त था। वह भी इसकी ज़िम्मेदारी किसी पर डालकर घर चले जाने का मौका तलाश रहे थे। नरोत्तमदास को देखकर उनके मन में एक विचार कौंध गया। उन्होंने काफी सोच–विचार के बाद नरोत्तमदास से कहा कि, अरे भाई! यदि वे बारह हैं तो आप तेरहवें्। इसमें कोई परेशानीवाली बात नहीं है पर इस संस्था में खाने–पीने से लेकर किसी बात का ठिकाना नहीं है। इस बात को ठीक से समझकर आप फैसला कीजिये। यदि आप यहाँ रहेंगे तो यह सारी संस्था आपके हवाले कर दूँगा क्योंकि अब मैं भी अपने घर चले जाना चाहता हूँ।''

नरोत्तमदास ने कहा,ऋऋ भाई! मेरे लिए तो ऊपर आभ और नीचे धरती है। चाहे जैसा सहारा मिले और रोटी मिले तो मेरे लिए तो स्वर्ग को पाने बराबर है और अभी तो मैं पचास का ही हुआ हूँ। सशक्त शरीर है। यदि आप छोड़ना चाहते हैं तो ठीक है ,मैं आपके स्थान पर काम करूंगा। इस प्रकार मुझे ऋणमुक्त होने का लाभ भी मिलेगा। उपरांत मेरी समझ और शक्ति का भी उपयोग होगा।''

और ...दूसरे ही दिन संस्था की ज़िम्मेदारी नरोत्तमदास को सौंपकर, अश्रुपूरित नयनों से सुप्रिण्टेन्डंट ने बारह वृद्धों से मिलकर बिदाई ली। नरोत्तमदास ने अति उत्साह के साथ संस्था का उत्तरदायित्व सम्हाल लिया। अनाथाश्रम के वृद्ध उन्हें दासकाका कहने लगे। उन्होंने इस संस्था को एक ही दशक में संस्था को इतना सुगठित किया कि संख्या बढ़ती चली, एकसौ वृद्ध वहाँ रहने लगे।

दिन बिर्तीं कहाँ देर लगती है? देखते ही देखते तीन दशक बीत गए। दासकाका ने अस्सी वर्ष पूर्ण किए्।

अपने उत्तराधिकारी के रूप में उन्होंने एक व्यक्ति को तैयार किया था। उसका नाम भाईलाल था। भाईलालभाई भी बहुत अच्छी तरह से तैयार हो गए थे। फिरभी आश्रमबासियों का दासकाका के प्रति अनोखा स्नेहभाव था।

दासकाका अब कमजोर हुए थे। एक आराम कुर्सी पर लेते लेते भाईलालभाई के कामकाज पर नजर रखते थे और यथोचित सुझाव देते रहते थे।

भाईलाल भी दासकाका को पितातुल्य समझकर उनका गौरव करते थे। एक सांझ की बात है। उस समय एक दंपति ने आश्रम में प्रवेश किया। वह इस आश्रम में रहने के लिए आया था। उनकी अवस्था मात्र चालीस–पैतालीस

की लग रही थी। दासकाका ने उन्हें देखा और बहुत प्यार भरे शब्दों से उनका सत्कार किया। भाईलाल ने बातचीत का प्रारंभ किया। वे इस आश्रम में जुड़ना चाहते थे। अत: दासकाका ने वजह जानना चाही । उस भाई ने कहा :

ऋऋदासकाका! हम दो पति–पत्नी हैं। हमारे दो बच्चे हैं। वैसे तो हम खुशहाल हैं। बडा पुत्र बी.एस.सी. है। एक महीने पूर्व ही उसकी शादी अमीर परिवार की ग्रेज्युएट कन्या से करवायी है।

बीच में ही दासकाका ने सवाल किया, पर भाई ! आपके माता–पिता कहाँ हैं ?''

इस सवाल पर गहरा निश्वास छोड़ते हुए बहन ने कहा :ऋऋ दासकाका उनकी माता का तो मेरी शादी से पूर्व ही देहावसान हो गया था और मैंने घर में आते ही उनके पिताजी को घर से निकलवा दिया था। उस बात को तीस साल बीत गए हैं। उनका कोई आता–पता नहीं है। हमने उसके लिए कोई यत्न किया भी नहीं है। वे बहुत भले और अच्छे व्यक्ति थे पर आधुनिक शिक्षा से होश भूली मैंने अपने इस पति के कान भर–भरकर उनको घर से बाहर निकलवा दिया। हाय!

शायद उनकी बददुआ हमें ऐसी लगी कि हमारे बड़े लड़के ने उसकी पत्नी के उकसाने के कारण हम दोनों को घर से बाहर निकालकर हमारे कृत कर्मों का दण्ड दिया। ''

शांत चित्त से दासकाका सारी बातें सुन रहे थे। उन्होंने कहा,ऋऋ बहन! अब मैं उन सारी बातों को याद कराना नहीं चाहता। उन बातों से आपको बहुत तकलीफ हो रही है ,ऐसा मुझे लग रहा है।''

बाद में भाईलाल से दासकाका ने कहा ,फार्म आदि भरवाने की औपचारिकता पूर्ण करके दोनों को आश्रम में भर्ती कर दो। भोजन इत्यादि कराओ। नवागंतुकों के स्वागत के लिए आश्रम के सभी भाई–बहनों की बैठक बुलाओ। ''

भाईलाल सारी औपचारिकताएँ निबटाने में लगे। दासकाका ऊठकर अपने शयनकक्ष में गए। एक घंटे के बाद भी जब वे बाहर नहीं आए तो भाईलाल उनके पास गए। देखा कि दासकाका निश्चेष्ट होकर अपनी शैय्या में पड़े हुए थे। उनका प्राण पखेरू अनंत का यात्री हो गया था। उनकी बगल में एक पत्र पड़ा हुआ था। भाईलाल ने उसे पढ़ा। वह तो एकदम सन्न रह गए। हे भगवान !'

इतना ही बोलकर उन्होंने आश्रमवासियों को खबर दी कि दासकाका का आकस्मिक निधन हो गया है! सारे आश्रम में शोक छा गया। सब रोने –बिलखने लगे। आगंतुक पति–पत्नी ने भी रोते हुए कहा कि हमारे ये कैसे अशुभ कदम कि दासकाका बिदा हो गए !''

स्मशानयात्रा निकली। अग्निदाह देने का समय हुआ्। भाईलाल ने आगंतुक से कहा,भाई! आप दासकाका को मुखाग्नि दीजिए्। दासकाका की यह आखिरी इच्छा है। वे पत्र में लिखकर गए हैं।''

इस रहस्य को वह भाई समझ नहीं पाया परंतु जब दासकाका की शोकसभा हुई तब भाईलाल ने उस अंतिम पत्र को सबके सामने पढ़ा। उसमें लिखा था– भाईलाल ! मेरी संतान ने मुझे घर से बाहर निकाल दिया है, इस बात का मुझे कुछ दु:ख नहीं हुआ पर आज उसे उसकी पत्नी के साथ, उसके बड़े बेटे ने घर से बाहर निकाल दिया है। उन्हें असहाय यहाँ आना पड़ा है, यह जानकर मुझे गहरी ठेस पहुंची है। मैं अब जी नहीं सकता। मेरे उसी बेटे के हाथों मुझे मुखाग्नि देना। सभी प्यारे आश्रमवासियों को मेरी ओर से लाख लाख प्रणाम।''

यह सुनते ही उनका बेटा बेहोश होकर पछड़ खाकर जमीन पर गिरा!

98. राजकुमार अनंग

काकन्दी नामक एक नगरी थी। उसके राजा का नाम कंचनरथ था। उसकी रानी का नाम इंदीवर था और उनके पुत्र का नाम मणिरथ था।

एकबार काकन्दी के बाहर परमात्मा महावीरदेव पधारे। देवों ने उनके समोवसरण की रचना की। राजा कंचनरथ प्रभु की देशना सुनने के लिए गये। उन्होने युवराज मणिरथ को भी देशना सुनने हेतु साथ चलने के लिए प्रेरणा की। मणिरथ ने कहा,पिताजी! मैं तो अपने मित्रों के साथ हिरणों का आखेट करने के लिए घोड़े पर सवार होने जा रहा हूँ। कोसम्ब नामक बन में निकठ्स्थ बन से बहुत सारे हिरण आए हैं। यह खबर पाकर मैं अपने मित्रों के साथ शिकार करने के लिए जा रहा हूँ तो शिकार खेलने में बड़ा मजा आएगा। अत: मैं परमात्मा महावीर की देशना में आ नहीं सकता।

उपरांत मुझे ऐसे धार्मिक उपदेश में कोई रुचि भी नहीं है। पिताजी! आप धर्मध्यान कीजिये। हमारे जैसे युवाओं के लिए अभी इसके लिए समय हुआ नहीं है।''

ये शब्द धर्मात्मा पिता के माथे पर मानों बिजली के कौंधने जैसे थे। उन्हें गहरी ठेस पहुंची। अपना बेटा क्या ऐसे व्यसनों के कारण क्या दुर्गति को प्राप्त करेगा! क्या वह अपना अमूल्य मानवभव गँवा बैठेगा? ऐसे विचारों में वे उलझ गये।

महारानी इंदीवर के साथ कंचनरथ परमात्मा की देशना सुनने के लिए रथारूढ़ होकर चल पड़े। युवराज अपने मित्रों के साथ शिकार के लिए घोड़े पर आरूढ़ होकर चल दिया। मणिरथ कोसम्ब बन में पहुँच गया। शिकारियों की टोली को देखकर हिरण समूह जान बचाने के लिए यहाँ–वहाँ भागने लगा। शिकारियों ने एडी मार मारकर हिरणों के पीछे घोड़ों को तेज गति से दौड़ाया। वे शर संधान करके तीर छोड़ने लगे। कई मृग जख्मी होकर जमीन पर आ गिरे। लोग आनंद वश चीख़ने लगे।

ऐसे में एक विस्मयप्रेरक घटना घटी। किसी मृगी का आखेट करने के लिए युवराज मणिरथ ने पीछा किया। वह जान बचाने के लिए भागी पर कुछ दूर जाने के बाद उसने युवराज की ओर मुड़कर देखा। वह तुरंत रुक गई और मणिरथ की तरफ उल्टे कदम बढ़ने लगी। यह देखकर मणिरथ ने घोड़े को रोक दिया। घोड़े पर से नीचे उतरकर वह मृगी की ओर गया। उसे देखकर मणिरथ के दिल में भी स्नेह का झरना फूट पड़ा !

दोनों मिले। युवराज एक शिला पर बैठा। हिरनी भी उसके पास गई। उसे अपना स्नेहभाव दिखाने लगी। उसकी गोद में अपना माथा रखकर माथा घिसने लगी।

युवराज मणिरथ को भी न जाने क्यों! उसकी ओर मोहजनित आकर्षण हुआ। वह भी उसे सहलाने लगा! उसके मन में विचार आया कि यदि पशु इतने निर्दोष हैं तो हम उनका संहार कैसे कर सकते हैं !'' इस मुद्दे पर उसी वक्त उसने अपने तरकस में रहे सारे तीर निकालकर दो टुकड़े कर के फेक दिये ! काफी समय तक प्यार भरा वातावरण जमा रहा। बाद में मणिरथ ने सोचा कि मुझे इस हिरनी के प्रति प्यार आने तथा उसे मेरे प्रति स्नेह होने का कारण क्या है? हम दोनों के बीच ,अवश्य पूर्वजन्म का कोई नाता होना चाहिए।

यह रहस्य तो सर्वज्ञ ऐसे परमात्मा महावीरदेव के अतिरिक्त और कौन बता सकता है ! कोई बात नहीं। मैं अभी

उनकी दिशा में अपना घोड़ा दौड़ाकर वहाँ पहुँचकर पूछता हूँ कि वह कौन है ?''

और देखते ही देखते.....युवराज का अश्व तीव्र गति से दौड़ने लगा। उसी त्वरा से हिरनी भी पीछे पीछे दौड़ने लगी।

जब मणिरथ और हिरनी समवसरण के सोपान फटाफट चढ रहे थे तब प्रभु की देशना पूर्ण हुई थी। उस देशना में सात व्यसनों का सेवन करनेवाली आत्माओं की कैसी दुर्दशा परलोक में होती है ? उसका निरूपण प्रभु ने किया था। यह सुनकर राजा कंचनरथ उस विचार से अत्यंत गमगीन हो गए थे कि शिकार के व्यसन में पगलाया बेटा मणिरथ मरने के बाद कहाँ जाएगा ? उस बेचारे का क्या होगा ?'

देशना पूर्ण होने के बाद राजा ने खड़े होकर सवाल किया कि हे देवाधिदेव ! मेरा लाड़ला बेटा मणिरथ मरकर कहाँ जाएगा ?''

प्रभु ने कहा,राजन! यह मणिरथ इसी भव में दीक्षा लेकर केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष गमन करनेवाला है। उसके जीवन में परिवर्तन शुरू हो गया है। शिकार के व्यसन का हमेशा के लिए त्याग करके वह इस तरफ आया है। समवसरण के सोपान चढ़ रहा है। वह कुछ ही समय में यहाँ आ पहुंचेगा।

और....मानों' प्रभु के शब्द उनके मुख में ही रह गए ! युवराज मणिरथ ने दूर से जैसे ही प्रभु के दर्शन किए कि मानो उत्तर पाने के लिए अधीर होकर दूर से ही उसने प्रभु से पूछा कि हे भगवंत ! वह हिरनी कौन है? '

प्रभु ने कहा,मणिरथ! मेरे पास आओ। उसका जवाब देने के लिए मुझे तुम्हारे दोनों भवों के बारे में बताना है। उपरांत उसमें मेरा भी संबंध आता है।''

देवाधिदेव के वात्सल्यपूरित शब्द सुनकर मणिरथ प्रभु के पास आकर बैठ गया।

प्रभु ने खुलकर बात की शुरुआत की।

साकेत नामक एक नगर था। उस नगर में मदन नामक राजा थे। मैं (परमात्मा महावीर देव स्वयं कहते हैं।) अपने उस जन्म में उस राजा का धनवान अनंग नामक बेटा था। उस नगर में वैश्रमण नामक धनवान सेठ रहता था। उसके बेटे का नाम प्रियंकर था। पड़ोस में सुंदरी नामक स्वरूपवती कन्या थी। वह वैश्रमण सेठ के जिगरी दोस्त की

पुत्री थी।

उचित समय पर उस सुंदरी के साथ अपने पुत्र प्रियंकर का वैश्रमण सेठ ने विवाह रचाया। (सुंदरी :भविष्य के मणिरथ का जीव और प्रियंकर: हिरनी का जीव)

इन दोनों पति–पत्नी के बीच गाढ़ स्नेह हुआ। दोनों प्रियंकर और सुंदरी एक पल के लिए भी अलग होने में परेशानी का अनुभव करते थे। अपनी पत्नी सुंदरी के प्रति प्रियंकर अति कामासक्त हो गया। उसका परिणाम यह आया कि वैवाहिक जीवन के बहुत ही कम बरसों में वह असाध्य बीमारियों का शिकार हो गया।

सुंदरी कैसे भी करके अपने पति प्रियंकर को मृत: मानने के लिए तैयार नहीं थी। प्रियंकर के मृत:देह का अग्निसंस्कर करने की बात कर रहे ससुर आदि का कड़े शब्दों में तिरस्कार करते हुए कहा ,''मेरे स्वामीनाथ का जब अवसान ही हुआ नहीं है तो अग्निसंस्कार का सवाल ही कहाँ ऊठता है ? आप तो उसके कैसे बाप हैं कि ऐसी बात कर रहे हैं ?''

जब एक ही स्वर में सभी स्वजनों और स्नेहीजनों ने सुंदरी से उसके पति की मृत्यु की बात की तो वह अर्द्ध विक्षिप्त सी हो गई। बिफरी हुई बाघिन की तरह वह सबके प्रति गुर्राने लगी ,आक्रामक होकर कहने लगी कि आप सब मर गए हैं, खबरदार कि मेरे पति को मृत कहा है तो। हाँ यह बात मुझे मंजूर है कि किसी भी वजह से वे बहुत रूठे हुए हैं कि वे बोल नहीं रहे, कुछ खा–पी भी नहीं रहे लेकिन मैं समझा–बूझकर उन्हें रोष मुक्त कर दूँगी। आप सब यहाँ से हट जाइए।''

सुंदरी की ऐसी मानसिक दशा को देख सारे स्वजन उस कमरे से हट गए। सबको उसके प्रति बहुत सहानुभूति हुई पर कुछ कर सकने में वे विवश थे।

तीन,चार ही दिन में तो प्रियंकर की देह से गंध आने लगी, उसमें कीड़े पड गए, देह एकदम फूल गई लेकिन उन बातों की जरा भी दरकार किए बिना सुंदरी उस शव से बातें करती रही। रूठ जाने की वजह पूछी। जवाब नहीं मिला तो रिझाने के लिए स्वादीष्ठ मिठाइयाँ मुख पर रखी। रोज सुबह स्नानादि कराने लगी। उसे अंक में भरने लगी तथा चुंबन आदि करने लगी। पर शव तो आखिर शव ही होता है ! वह क्या प्रतिसाद देता!

शव से ऊठनेवाली दुर्गंध चारोंओर, दूर दूर तक फैलने पर पड़ोसी प्रियंकर के पिता से मिले। यथाशीघ्र शव को स्मशान ले जाकर अग्निसंस्कार करने के लिए आग्रह किया।

सभी जानते थे कि सुंदरी के ससुर उसकी पत्नी की मानसिक बीमारी के कारण ऐसा कोई कदम उठाने में बिलकुल विवश थे। सुंदरी ने ही शव से बिदा ली। उसे लगा कि सारे तथाकथित स्वजन और स्नेहीजन अपने पति को मृत' ही समझते हैं और उसका तिरस्कार करते हैं। युवक और युवतियाँ उसका मज़ाक उडाते हैं ऐसे में उस घर में अपमानित होकर रहना उचित नहीं है। उसने शव रूप अपने पति से कहा कि स्वामीनाथ ! अब हमारा यहाँ रहना ठीक नहीं है। आइए ,मैं ही स्वयं आपको कंधे पर उठाकर अन्यत्र ले चलती हूँ।'' ऐसा कहकर पति के शव को कंधे पर उठाकर सुंदरी घर से चल पड़ी। सभी गंभीरतापूर्वक उसकी पीठ की ओर देखते रहे। उपस्थित सब लोगों के मन में उसके प्रति दयार्द्रता (अनुकंपा) का भाव था। बेचारी सुंदरी! कहाँ जाएगी? उसका क्या होगा? यही समस्या सब के मन को उलझाए हुए थी।

नगर से थोड़ी दूर आए स्मशान में जाकर उसने अपना डेरा डाला। शव को रेती में सुला दिया। पूर्ववत अनेक आलाप–प्रलाप वह करने लगी। वह ऐसी ही कामचेष्टाएँ भी करती रही।

इस तरफ प्रतिफल ज्यादा से ज्यादा विषाद होने पर सुंदरी के पिता,किसी बड़े बुद्धिमान व्यक्ति से सलाह मशविरा हो इसलिए नगर के राजा मदन के पास गए। लोकमुख से फैली हुई सारी कहानी राजा के कान तक पहुँच गई थी। राजा ने सेठ से कहा कि मैं भी आपके दु:ख से बहुत व्यथित हूँ।

तत्पश्चात पंडित–सभा के पंडितों को इस समस्या का हल खोजने के लिए कहा गया। काफी समय व्यतीत हो गया पर कोई हल निकला नहीं।

उस समय राजसभा में युवराज अनंगकुमार (देवाधिदेव परमात्मा महावीर का अपना पूर्वभव) उपस्थित थे। उनका जीवन अति करुणार्त्त था। किसी के दु:ख में वे दु:खी थे। उन्होंने उस समस्या का हल मन ही मन खोज निकाला। पिताजी से कहा :यदि आप आज्ञा दें तो सेठ के घर की इस गंभीर परिस्थिति का मैं समाधान ला दूँ।''

राजा ने क्षण का भी विलंब किए बिना कहा, बेटा ! हमारी प्रजा दु:खी हो तो हमें तो खाने की भी सुध न रहे। यदि तुमने समाधान खोज लिया है तो राज्य के सारे सुख–वैभवों का कुछ समय के लिए त्यागकर तुम भी उस काम में

लग जाओ। तुम्हें इस कार्य में पूर्ण सफलता मिले ऐसे मेरे हार्दिक आशीर्वाद हैं।''

अनंगकुमार को पिताजी के आशीर्वाद मिलने से बहुत खुशी हुई। उसी रात उसने विशाल नगर में किसी युवती की मृत्यु की तलाश करवाई। भाग्य योग से किसी साधारण परिवार में युवा स्त्री का अवसान हुआ था। येन केन प्रकारेण अनंगकुमार ने उसका शव प्राप्त कर लिया। सुबह होने पर शव को कंधे पर रखकर जहां सुंदरी ने अपना डेरा डाल रखा था, उसी स्मशान में पहुँच गया।

सुंदरी के पड़ाव से सौ कदम दूर अनंगकुमार ने अपना डेरा डाला। उस स्त्री के शव को रेती में सुला दिया। जैसा भी आलाप–प्रलाप सुंदरी उसके पति के शव के साथ करे वैसा ही सबकुछ उस युवती के शव के साथ करना शुरू कर दिया। बारबार सुंदरी का ध्यान उसकी ओर जाने लगा। उसे लगा कि मेरी ही तरह आफत का शिकार हुआ कोई समदुखिया आया हो ऐसा लगता है। वह उससे मिलने के लिए गई। दोनों ने परस्पर एकदूसरे की बातें की। कुमार ने शव को अपनी जिंदा पर रूठी हुई जिंदा स्त्री के रूप में परिचय कराया। कुमार ने सुंदरी के संबंध की घटना जैसी ही हुबहू –तनिक भी रद्दोबदल किए बिना अपनी घटना के बारे में बताया।

दोनों समदुखिया होने के कारण सगे भाई–बहन जैसे हो गए। दोनोने अपने अपने शव एकदम निकट लाकर रख दिये। एक तरफ सुंदरी और दूसरी तरफ अनंगकुमार और बीच में दो मुर्दे। दोनों अपने प्रियजन को लगातार समझाते रहे, गुस्सा थूक देने के लिए बहुत आजिजी करते रहे।

एक दूसरे पर पूरा विश्वास हो जाने के बाद जब सुंदरी या अनंगकुमार शौचादि कर्म के लिए जाते थे तब अपना प्रियजन एक दूसरे को सौंपकर जाते थे।

इस प्रकार सब चल रहा था कि एकबार मध्यरात्रि वेला में यकायक अनंगकुमार ने ज़ोर ज़ोर से चिल्लाते हुए कहा :ऋऋबहन !ओ बहन ! फटाफट जग जाओ। यह तो असह्य हो गया!''

और ....यह सुनते ही सुंदरी तो हक्का–बक्का होकर जग गई। क्या हुआ ?क्या हुआ ?''उसने पूछा।

कुमार ने कहा,ऋऋ अभी अभी मैं आकस्मिक रूप से जग गया। मैंने इन दोनों को पास जाकर कान में बात करते हुए देखा। अत: मैंने आपको आवाज दी कि वे यथावत सो गए।'

सुंदरी ने कहा,ऋऋ हाय,हाय ! मेरा पति ऐसा गंदा है ? ऋऋ मेरी भाभी के प्रेम में पड गया! मैंने उसके पीछे अपनी जिंदगी बर्बाद की ! घर छोड़ा, सबके व्यंग्यबाण सुने–सहे,लोगों की फटकार सुनी फिर भी मेरे प्रति गुस्सा कम नहीं हो रहा और मेरी भाभी के साथ प्यार से बातें करने लगा है !'' ऐसा कहकर सुंदरी ने अपने पति के बदबूदार सड़े हुए शव को दो चांटे जड़ दिये।

यही नाटक अनंगकुमार ने उस स्त्री के शव के साथ किया। ऐसा नाटक अनंगकुमार ने दो तीन रात बार बार किया। ऐसा होने से सुंदरी के हृदय में रहे पतिप्रेम को जोरदार धक्का लग ही गया।

एक दिन यहाँ तक तो पराकाष्ठा पर पहुँच गया। सुंदरी मुंहअंधेरे शौचकर्म के लिए बाहर गई थी। तब अनंगकुमार ने उन दोनों शवों को नजदीक के कोटर में रहे गहरे कुएं में फेंक दिया। बाद में अपनी मूल जगह पर आकर चिल्लाने लगा।

ओ बहन ! ओ बहन ! जल्दी आना ।ये दोनों तो भाग गए। ये जा रहे हैं, ये बड़ी दूर चले जा रहे हैं...जल्दी जल्दी आ जाओ।'' ऐसा बोलकर मानो उन दोनों को पकड़ लेने के लिए एक दिशा में दौड़ने लगा। सुंदरी भी फटाफट फारिग होकर अनंगकुमार के पीछे दौड़ने लगी। ये जा रहे हैं ! देखो वे जा रहे हैं !....जल्दी आ जाओ ! अरे वे दोनों तो उन कोटरों में उतर गए हैं ! बहन जल्दी जल्दी आओ...मेरे पीछे दौड़ती हुई आ जाओ ।'' अनंगकुमार ऐसा बोलता जा रहा है और अंगुली संकेत द्वारा ,आगे ही आगे दौड़ा चला जा रहा है। वैसे सुंदरी को तो उस दिशा में कुछ भी नजर नहीं आ रहा था ;पर भाई के प्रति अटल विश्वास के कारण वह दौड़ रही थी ! ऐसा करते करते तीन घण्टे पर्यंत दौड़–दौड़कर सुंदरी थक गई। वह बेहोश होकर एक स्थान पर लुढ़क गई। यह देखकर अनंगकुमार रुक गया। सुंदरी के पास गया, उपचार करके उसे स्वस्थ किया।

अनंगकुमार ने उन दोनों के भाग जाने की बात कहकर उनके प्रति धिक्कार भाव व्यक्त करनेवाली तीखी टिप्पणी की। बाद में सुंदरी ने अनंगकुमार से पूछ कित्रऋ ऐसा क्यों हुआ? जिसे हम दोनों बहुत चाहते थे वे दोनों इस प्रकार प्रेम में पड़कर क्यों पलायन हो गए।''

उस समय अनुकूल मौका पाकर कुमार ने संसार के धोखेबाज स्वरूप का हूबहू दर्शन कराया। संसार की असारता को बोध कराया। यह सुनकर सुंदरी ने संसार से वैराग्य प्राप्त किया। अनंगकुमार द्वारा उसे अरिहंतों द्वारा

प्रबोधित भगवती प्रवज्या का स्वीकार करके आत्मकल्याण कर लेने का उपदेश पाकर सुंदरी उसके लिए तैयार हुई। अनंगकुमार उसे ससुराल लेकर आए। सारी बातें कही। बहू संसार त्याग करके दीक्षा के कल्याणकारी मार्ग पर गमन करने के लिए सज्ज हुई है। यह जानकर सब बहुत खुश हुए।

मंगल दिवस पर सुंदरी ने संयमधर्म का स्वीकार किया। बहन को भाई के रूप में अंतिम तिलक राजकुमार अनंगकुमार ने किया।

देवाधिदेव परमात्मा महावीर प्रभु ने यह सारी कथा कहकर राजकुमार मणिरथ से कहा :वह अनंगकुमार मैं स्वयं हूँ। वह प्रियंकर हिरनी बनी है। तुम सुंदरी का जीव हो। पूर्वभव के प्रियंकार के प्रति सुंदरी के रूप में तुम्हारे प्रति अतिशय प्यार था। अत: अब तुम्हें हिरनी के प्रति बहुत प्रेम हुआ है।''

यह सुनकर संसार की भयानक विचित्रताओं का अनुभव करके मणिरथ ने वैराग्य प्राप्त किया। तत्क्षण उसने दीक्षा ग्रहण की,घोर साधना की। उसी भव में मणिरथ मुनि कैवल्य प्राप्त करके मोक्ष को प्राप्त हुए।

(कुवलयमाला के संदर्भ से)

99. अन्निकापुत्र आचार्य

माता पिता ने वैसे तो उनका नाम संधीरण रखा था पर वे अन्निका नामक स्त्री के पुत्र होने के कारण लोगों में वह अन्निकापुत्र के रूप में ख्यात हुए थे। उनके पिता का नाम देवदत्त था। वह वणिकपुत्र थे।

यौवन की दहलीज पर पाँव धरे हुए अन्निकापुत्र ने एकबार नगर में पधारे हुए धर्मगुरु की देशना सुनी। वैराग्य हुआ। जयसिंहसूरिजी से दीक्षा ग्रहण कर कुछ बरसों के बाद वे आचार्यपदारूढ़ हुए।

अनेक शिष्यों से सम्पन्न आचार्यश्री ने अपनी असह्य वृद्धावस्था आने पर शिष्यों को विहार करवाकर खुद अकेले गंगा तट पर स्थित पुण्यभद्र नगर में स्थिरवास करने लगे। उत्तम कोटि क संयमपालन करके वे अपना शेष जीवन व्यतीत करने लगे।

इस नगर के राजा का नाम पुष्पकेतु था। उसकी रानी का नाम पुष्पवती था। उनकी दो सन्तानें थीं। एक का नाम पुष्पचूल था और दूसरी संतान का नाम पुष्पचूला था। लगभग समान अवस्थावाले इन दोनों भाई–बहन को परस्पर के लिए तीव्र स्नेहभाव था। वे एकदूसरे के बिना एक घंटा भी रह नहीं सकते थे। राजा को भी अपनी उन दोनों संतानों के प्रति इतना स्नेह था कि वह भी उन्हें खुद से कभी दूर भेजता नहीं था।

इस लिए राजा के मन में एकबार विचार आया कि 'यदि मैं अपनी बेटी की शादी रचाकर बिदा करूंगा तो उसका भाई उसकी जुदाई की व्यथा में तड़प तड़पकर मर जाएगा। इससे अच्छा यह होगा कि उन दोनों भाई–बहन की शादी करवा दूँ तो कितना अच्छा रहेगा?

राजा ने रानी से सलाह मांगी तो रानी ने खूब आक्रोश के साथ इस सुझाव का अस्वीकार कर दिया। आर्यावर्त की मर्यादा का इस निर्लज्ज और सत्ता का घमंडपूर्ण खुलेआम दुरुपयोग नहीं करने के लिए उसने राजा को बहुत बिनती की पर कमनसीबी से राजा ने उसकी बात को नहीं माना और अपनी मनमानी ही की।

दोनों सगे भाई बहन पतिपत्नी हुए।

उनका विलासी जीवन तेज गति से आगे बढ़ने लगा।

यह परिस्थिति असह्य हो जाने पर रानी पुष्पवती को संसार के प्रति वैराग्य हुआ। उसने दीक्षा अंगीकार की। उत्तम साधना करके वह देवलोक में देवी हो गई।

इसी समय राजा का देहावसान हुआ। पुष्पचूल राजा और पुष्पचूला रानी हुई।

अवधिज्ञान के बल से देवी माता ने अपने बेटे–बिटिया को पति–पत्नी का जीवन जीते देखा। उसे बहुत दुःख हुआ। उसने उन्हें किसी भी कीमत पर इस पाप से मुक्त करने का निर्णय किया।

बेटी (रानी) पुष्पचूला का जीव उत्तम कोटि का होने के कारण देवी उसे सपने में नित्यप्रति के नर्क के भीषण और भयानक दृश्य दीखाने लगी। कई दिनों तक अविरत ऐसा होने से बहुत अधीर हुई रानी पुष्पचूला ने राजा पुष्पचूल को सारी बातें बताई। राजा ने सभी धर्मों के विद्वान और संतों से एक ही प्रश्न पूछा कि नरक की दुनिया कैसी होती है?'' किसी से भी संतोषप्रद उत्तर नहीं मिलने पर किसी की सलाह से उस नगर में स्थिरवास कर रहे जैनाचार्य

अन्निकापुत्र से राजा ने यह सवाल किया। आचार्यश्री ने नरक का वही वर्णन किया जिसे रानी रात के सपनों में देखती थी।

रानी ने ऐसे भयानक नरक में जाने के हेतु पुछे तो आचार्यश्री ने बताया कि शराब,शिकार,परपुरुषगमन,सगे भाई के साथ दुर्व्यवहार आदि बताने पर रानी खूब चिंतित और व्यथित हो गई। अब उस देवी ने स्वर्ग के दृश्य दिखाना शुरू किया। जैनाचार्य ने स्वर्ग का उसी प्रकार हुबहू वर्णन किया। उसके कारण के रूप में देवपूजा,ब्रह्मचर्यपालन,दान,दीक्षा,आदि बताया।

यह सुनकर रानी को अपने अतीतकालीन जीवन के प्रति भारी नफरत हुई। उसने पति (सगे भाई) से दीक्षा लेने के लिए इजाजत मांगी। जब वह इसके लिए जिद पर उतर आई तो राजा ने एक शर्त पर दीक्षा दी कि उसका मुख नित्य प्रति देखने को मिले इस लिए दीक्षा लेकर साध्वी होकर राजा द्वारा दिये गए स्वतंत्र निवास में वह रहेगी।''

अन्निकापुत्र आचार्य की इस विषय में अपवाद के रूप में सम्मति मिलने पर रानी ने दीक्षा अंगीकार की। वह उत्तम कोटि का संयमजीवन जीने लगी। पापों का फटाफट निरसन हो गया।

इस तरफ अन्निकापुत्र आचार्य अति वृद्ध हो जाने के कारण गोचरी–पानी लेने जाना असंभव हो गया। पुष्पचूला साध्वी ने उसका लाभ उसे देने के लिए आचार्यश्री से बिनती की; जिसमें उन्होंने अपवाद मार्ग से सम्मति प्रदान की।

साध्वीजी रोज एकबार भिक्षा ले आती थी। सारी मर्यादाओं का पालन ठीक से करते हुए दूर से गोचरी रखकर चली जाती थी। कुछ समय तक ऐसा ठीकठाक चलता रहा। एक बार अपने उपाश्रय में ध्यानस्थ साध्वीजी को अपने जीवन की भूलों को लेकर तीव्र पश्चात्ताप हुआ, उसमें उन्होंने क्षपक श्रेणी से लेकर घातिकर्मों का क्षय करके केवलज्ञान को प्राप्त हुईं।

आचार्यश्री जी को तो इस बात की खबर नहीं थी और केवलज्ञानी आत्मा सामने से अपने कैवल्य की बात कभी करे नहीं। अत: आचार्यश्री के लिए गोचरी लाने का व्यवहार तो पूर्ववत चलता रहा। उसमें फर्क यह पड़ा कि आरोग्य के कारण आचार्यश्री को जो पथ्य कभी खाने का मन करे वह साध्वीजी लाकर रखती थी। आचार्यश्री को आश्चर्य

होने लगा कि मेरे मन के भावानुकूल ही गोचरी कैसे आ जाती होगी.''

ऐसे में एकबार बारिश हो रही थी। साध्वीजी बरसात में जाकर गोचरी ले आयीं। आचार्यश्री ने उन्हें ऊलाहना देते हुए कहा कि ,भगवान की आज्ञा है कि बरसात में भिक्षा नहीं लायी जाती ,क्योंकि ऐसे पानी के जीवों की विराधना होती है। आप उस मर्यादा को तोड़कर मेरी भक्ति करो, यह उचित नहीं।''

साध्वीजी ने कहा,ऋऋमें सचित्त जल में जाकर यह भिक्षा नहीं लायी हूँ। कुदरती रूपसे आकाश में ही अचित्त हुए पानी में होकर यह लाई हूँ।''

आचार्यश्री ने पूछा कि''आपको इस बात का पता कैसे चला कि अमुक हिस्से में बरस रहा पानी अचित्त हो गया है। इस बात का पता तो उसे ही चलता है जिसे केवलज्ञान हुआ हो। क्या आपको केवलज्ञान हुआ है?''

व्यंग्य में पुछे गए प्रश्न का उत्तर हाँ में देते ही आचार्यश्री तो एकदम चौंक गए। केवलज्ञानी आत्मा को ऊलाहना देने के कारण पुन: पुन: क्षमायाचना की।

तत्पश्चात उन्होंने पूछा कि अब आप हमें यह बताइये कि मुझे केवलज्ञान कब प्राप्त होगा? इस भव में या आनेवाले भवों में ? कब?''

केवली परमात्मा ने कहा इसी भव में होगा। इस गंगा नदी पार उतरते ही होगा।''

तो मैं अभी ही गंगा पार कर लूँ। अब मुझे इस भिक्षा से काम तमाम हुआ! ऐसा बोलकर वे कुछ लोगों को लेकर जा रही नाव पर सवार हो गए। किसी वजह से नाव के डूबने के कारण लोगों को लगा कि यही आचार्य इस नाव के डूबने के लिए जिम्मेदार हैं। उन सबने मिलकर उस आचार्य को ऊठाकर पानी में फेंक दिया !

उसी वक्त; उनकी पूर्व जन्म की अप्रिय पत्नी जो मरकर व्यंतरी–देवी हुई थी। वह उनकी हत्या करने के लिए विकराल त्रिशूल लेकर आवेगपूर्वक आ गई। नाव से गंगा की धार में गिरते ही उसने आचार्यश्री के पेट में त्रिशूल उतार दिया। आचार्यश्री उल्टे देह त्रिशूल पर अधर में लटक गए।

उस समय उनको दृष्टि गंगा की तेज बहती कच्चे पानी की धार पर लगी हुई थी। अपने देह से निकल रहे लहू की गरम धार और त्रिशूल द्वारा चीरकर अलग होकर गिर रहे मांस के टुकड़ों को देखकर वे कांप ऊठे। उन्हें कच्चे पानी

में रहे असंख्य जीवों की उस लहू–मांस से हो रही हिंसा जरा भी सह्य नहीं थी। वे मन ही मन बोले अरेरे ! मैं तो मर रहा हूँ पर मरते–मरते भी असंख्य जीवों को मारता जा रहा हूँ। कितना बदनसीब जीव!''

उन्हें अपनी मरणान्त वेदना की भी सुध न रही, वे अन्य की हिंसा के दु:ख से अत्यंत दु:खी थे। उस स्थिति में उन्होंने क्षपकश्रेणी शुरू कर दी और घातीकर्म का नाश किया और आयुष्य भी पूर्ण किया। अंतकृत केवली हुए और मोक्षगमन कर लिया।

100. जीवानंद वैद्य की अपार करूणा

क्षितिप्रतिष्ठित नगर में सुविधि वैद्य के जीवानंद नामक एक पुत्र था। उसने पिता के वैदकज्ञान को आत्मसात किया। वह महान वैद्य हुआ। वे छ: मित्र थे। प्रतिदिन वे एकबार मिलकर विविध प्रकार की बातें करते थे।

एकबार सारे मित्र जीवानंद के घर इकट्ठा हुए। अनेक प्रकार की बातें हो रही थीं कि एक जैन साधू भिक्षार्थ पधारे। यह साधु संसारी संबंध से पृथ्वीपाल नामक राजा के गुणाकर नामक राजपुत्र थे। साधु होते ही उन्होंने घोर तपस्या शुरू कर दी थी। एकबार किसी बड़ी तपश्चर्या के पारने में ऐसा अपथ्य भोजन आ गया कि उसकी वजह से सारा शरीर संक्रामक कोढ़ से प्रभावित हो गया। शरीर का एक इंच भाग भी ऐसा नहीं था जहां से मवाद न निकलता हो। इस मवाद भी जंतुयुक्त था। ये जन्तु सातों धातुओं तक पहुँच गए थे।

इतनी असह्य यातना के रहते हुए भी उस महामुनि ने उसके उपचार तक के लिए सोचा नहीं था। आज वे जीवनन्द के घर पधारे, उनकी शारीरिक दशा को देखकर छ: मित्रों में महीधर नामक जो मित्र था, उसने जीवानन्द से कहा कि तुम अपनी विद्या का उपयोग करके इस मुनि को निरोग बना दो। तुम्हारा यह कर्तव्य है। इस विषय में यदि तू उपेक्षा करेगा तो तुम्हारे वैदकत्व को धिक्कार है। ''

जीवनन्द ने शिघ्रता से मुनि को नख–शिख देखकर कहा कि रोग तो बड़ी मुश्किल से काबू में आ सके ऐसा है। मैं अपनी सारी शक्ति को काम में लगा दूंगा।'' इस मुनि को रोग मुक्त करके मैं अपना जीवन धन्य बनाऊँगा लेकिन

मैं ऐसा धनिक भी नहीं हूँ कि औषधि के लिए आवश्यक धन राशि का खर्च कर सकूँ। आपको अत्यंत महंगी तीन वस्तुएँ खरीदकर मुझे देनी होगी। इन तीन वस्तुओं का मुल्य लाखों सोनामुहरें होगा। एक है लक्षपाक तेल, दूसरी गोशीर्षचन्दन और तीसरी है रत्नकम्बल इसमें मेरे पिताजी द्वारा तैयार किया गया अत्यंत महंगा लक्षपाक तेल तो मेरे पास है। शेष दो वस्तुओं की व्यवस्था आप करो।

पाँच मित्र किसी वृद्ध व्यापारी से मिले। इन दो चीजों का मुँहमाँगा दाम देने की तत्परता दिखाकर चीजें मांगी। उस व्यापारी के पास दोनों चीजें तैयार थी। उसने अलमारी से चीजें निकली। प्रत्येक की कीमत एकलाख सोनामुहर थी। व्यापारी ने सहज भाव से ही पूछा कि इन चीजों को ले जाने की वजह क्या है !''मित्रों ने मुनिराज की चिकित्सा का कारण बताया तो उस व्यापारी ने तुरंत कहा :ऋऋअब मुझे पैसे नहीं चाहिए। यह लाभ आप मुझे ही दीजिये। यदि आप मुझे आपके इस सेवकार्य में मुझे सहभागी बनाएँगे तो मुझ पर आपका बड़ा उपकार रहेगा। ''

मित्र तो चकित रह गए। व्यापारी को चीजों का दाम स्वीकार कर लेने के लिए समझाने में निष्फलता मिली।

दोनों वस्तुएँ लेकर छ: मित्र उस बन में पहुँच गए जहां तपस्वी मुनि कायोत्सर्ग में खड़े हो गए थे। उनकी वंदना करके चिकित्सा करने की आज्ञा लेकर जीवानन्द वैद्य ने अपना सारा बुद्धि कौशल लगाकर चिकित्सा प्रारम्भ की।

मुनि को लक्षपाक तेल का अच्छी तरह से मर्दन करने से मुनिराज गहरी नींद सो गए। त्वचा के कोने–कोने में वह तेल फैल गया। उसके बाद उसके ऊपर अति शीतलता प्रदान करनेवाली रत्नकंबल डाली। अत: तेल की उष्णता से बाहर निकले हुए असंख्य कृमि रत्नकम्बल की शीतलता में राहत पाने के लिए उसमें उतर गए।

उस समय अन्य मित्र ताजा मरी हुई गाय का शव लेकर आए, बैद्य का संकल्प था कि जिस प्रकार मुनिराज को रोगमुक्त करना है उसी प्रकार उनको बचाने के कार्य में एक भी जीव की हिंसा होनी नहीं चाहिए। ऐसी अपार करुणावश उन्होंने रत्नकम्बल गाय के शव पर फैला दी। भूखे कृमियों को गाय के शव से भजन मिले ऐसा था। अत: ये सारे जीव रत्नकम्बल में से निकलकर मृत:देह में उतर गए।

इस प्रकार त्वचा में व्याप्त सारे कृमियों को खींच लिया। तत्पश्चाद मुनि की सारी देह पर गोशीर्षचंदन का लेपन करके उन्हें परम शाता प्रदान की।

उसके बाद पुन: तेल मर्दन किया। अब मांस में व्याप्त अगणित जीव,तेल की उष्णता से व्याकुल होकर बाहर निकाल आए। उसी प्रकार उन्हें रत्नकम्बल में लेकर गाय के शव में उतार दिया गया। इस प्रकार सातों धातुओं में से सारे जीवों को बाहर निकाल लिए जाने के बाद गाय के शव में रख दिया गया।

मुनि को परम आरोग्य लाभ प्राप्त हुआ और एक भी कृमि मरा भी नहीं।

उचित समय पर मुनि ने वहाँ से विहार कर लिया।

अब जो गोशीर्षचंदन तथा जो रत्नकम्बल बचा था वह सब उन मित्रों को बेच दिया। उसे बेचने से जो धन प्राप्त हुआ उसमें अपनी धनराशि जोड़कर एक आकाशचुंबी शिखरबन्द जिनालय का निर्माण करवाया। उस जिनालय के अग्र भाग में एक तकती लगाई गई। जिसमें लिखा था इस जिनालय के निर्माण का सम्पूर्ण लाभ हमारे स्वद्रव्य का नहीं है। इतनी धनराशि अमुक व्यापारी द्वारा दी गई वस्तु के विक्रय से जो प्राप्त हुआ ,उसीका व्यय हुआ है। अत: उतना लाभ उस व्यापारी को प्राप्त होता है। ''

यह जीवानन्द बैद्य का जीव तदनंतर परमात्मा आदिनाथ हुआ। उनके तेरह भवों में उनका यह नौवाँ भव था।

तीर्थंकर देवों की तारक आत्मा जिस भव में हों, वहाँ प्राय: परार्थव्यसनी होते हैं।''–यह शास्त्र वचन इस प्रसंग में कितना सार्थक एवं यथार्थ हुआ अनुभव होता है।

101. संगठन के लिये पीछे हठ

उस जैनाचार्य का नाम आचार्य कक्कसूरि था !

वे पार्श्वनाथ भगवंत की परंपरा के आचार्य थे !

आंध्र की भूमि ! उनकी कर्मभूमि। वहाँ के लोग उन्हें भगवान तुल्य मानते थे।

पर एकबार उन्होंने गुजरात राज्य में पदार्पण किया। विशाल शिष्य परिवार सहित उन्होंने पाटण में चातुर्मास किया।

एकबार कलिकालसर्वज्ञ भगवंत हेमचंद्रसूरिश्वरजी महाराज का भी पारणा में किसी अन्य उपाश्रय में चातुर्मास हुआ। ये दोनों महात्मों में वडील थे कक्कसूरिजी। गुर्जरेश्वर कुमारपाल को गुरुके रूप में बहुमान्य थे हेमचंद्रसूरिजी।

उस समय हेमचंद्रसूरिजी ने योगशास्त्र नामक महाकाय ग्रंथ की रचना की निर्विघ्न पूर्णाहुति की। इस ग्रंथ के प्रारंभ में नव पद रूप जो नवकारमंत्र उन्होंने अपने हाथों से लिखा था ,उसके नवम् पद में "हवई" के स्थान पर "होई" पद रखा।

ऐसा करने के पीछे कदाचित ऐसे मातांतर के प्रति अपनी उदारता व्यक्त करने का आशय लगता है क्योंकि उस समय "होई" पाठ के कई समर्थक थे।

हेमचंद्रसूरिजी के एक शिष्य थे। नाम था गुणचंद्रविजय।

कर्मदोष से उनका जीवन प्रपंचों से युक्त था। बिना प्रपंच के मानों उन्हें चैन पडता नही था।

कक्कसूरिजी के प्रति भी कुछ कारणवशात् उनका मनोभाव दूषित हुआ था। अपने गुरुदेव के प्रति उनका बहुमान भाव बेशक उत्तम था पर अन्य के प्रति हीनभाव तो अत्यंत अनुचित था।

जब तब अन्य को हीन मानने की, तुच्छतापूर्ण ढंग से बेपर्द कर देने का प्रपंच यह मुनि करते ही रहते थे।

योगशास्त्र के मंगल रूप प्रारम्भ के नमस्कारमंत्र में गुरुदेव द्वारा रखा गया "होई" पाठ कक्कसूरिजी आदि को मान्य है या नही यह जानने के लिये और यदि यह पाठ मान्य न हो तो उन्हें गुरुविरोधी घोषितकर बदनाम करने के लिये इस साधु ने एक फरेब रचाया। गुर्जरेश्वरके राज्य की मुद्रावाले कागज पर गुर्जरेश्वर की ओर से पत्र लिखवाया गया। जिसमें सारे जैनाचार्यों से पूछा गया कि "इस पत्र के साथ योगशास्त्र की एक प्रति आपको प्रेषित की जा रही है ,आपको वह अक्षरसः मान्य है या नही? यह अवश्य सूचित करें।"

यह पत्र गुणचंद्रविजयजी ने कक्कसूरिजी को भेजा। "होई" पाठ देखकर वे उदास हो गये। परंपरा से चले आ रहे "हवई" पाठ में तपागच्छीय साधु इस प्रकार परिवर्तन कर दे ,यह कैसे उचित कहलाये ?उनका मन इस बात का बार बार रटण करने लगा। अपने शिष्यों से विचार विमर्श किया तो

उन्हें भी यह पाठ परिवर्तन पसंद नही आया। सब ने सोचा कि इस बात का विरोध करना मतलब राज्य का विरोध करना। उपरांत हेमचंद्रसूरिजी तो गुर्जरेश्वर के अत्यंत आदरणीय गुरू हैं। अतः उनका अधिक विरोध करना भी उचित नही।

कुछ ही समय में उन्होंने विहार करके गुजरात छोड देने का निर्णय किया और गुर्जरेश्वर के तथाकथित उस पत्र के दो टुकडे करके आये हुए पत्रवाहक को वह वापस लौटा दिया।

इस घटना से साधु गुणचंद्र मन ही मन बहुत गुस्साये। कक्कसूरि को बडे संकट में डाल देने का संकल्प किया परंतु उनकी गंदी चाल (मुराद) नाकाम रही। हुआ ऐसा कि विहार करके अन्य गाँव जा रहे कक्कसूरिजी को अपना किसी कार्य निपटाकर वापस लौट रहे गुर्जेरेश्वर ने देखा। एकाएक विहार जानकर वे बहुत दुःख अनुभव करने लगे। उन्होंने वंदनादि आदि करके आचार्यश्री से हकीकत जानना चाहा। आचार्यश्री ने उनकी ओर से लिखे गये पत्र के बारे में बताया। अंत में यह बताया कि "यदि इस प्रकार हमें आपके जुल्म के नीचे रहना है तो बेहतर यह होगा कि हम इस राज्य का त्याग ही कर दें।"

गुर्जरेश्वर ने तो ऐसा पत्र लिखा ही नही था। अतः यह सब सुनकर उन्हें दाल में कुछ काला नजर आया। इस मामले की जाँच-पडताल होने तक अन्य गाँव में स्थिरता करने की उन्होंने बिनति की। सूरिजी ने उनकी इस बिनति को ग्राह्य रखा।

गुर्जरेश्वर ने जाँच-पडताल करवाई तो गुणचंद्र साधु का यह उपद्रव समझ में आ गया। आचार्य हेमचंद्रजी से सारी बात कही जाने पर उन्होंने गुणचंद्र साधु को बहुत कोसा।

दूसरे दिन आचार्यश्री स्वयं कक्कसूरिजी के पास गये। हुई घटना को लेकर उनके पैरों में झूककर माफी मांगी और पुनः पारणा में प्रवेश करने की आग्रहपूर्ण बिनति की।

कक्कसूरिजी ने कहा "ठीक है ,ऐसा करने में मुझे कोई परेशानी नही है परंतु "हवई" के स्थान पर मतमतान्तर स्वरूप "होई" पाठ आपने ग्रंथ के प्रारम्भ में रखा है ,वह मुझे उचित नही लग रहा। तुरंत ही हेमचंद्रसूरिजी ने उनकी बात का स्वीकार कर लिया। "हवई" पाठ वहाँ पुनः रखना स्वीकार किया।

दूसरे दिन गुर्जरेश्वर ने दोनों आचार्य भगवंतो का भव्यातिभव्य नगर प्रवेश कराया। "संगठन को बनाये रखने की कलिकालसर्वज्ञ की कैसी लगन !

102. कभी भी गुरूद्रोह नहीं करना।

उस गुरूदेव के अनेक शिष्य थे।

एकदा किसी गाँव में गुरू अपने प्रधान शिष्य को लेकर शौच के लिए जंगल में गये। काम पूरा करके शिष्य वापस लौटा। महादेवजी के मंदिर में वह गुरूदेव की प्रतीक्षा करता हुआ बैठा। मंदिर में पुस्तकों से भरी अलमारी कीओर उसकी नजर गई। एक पुस्तक निकाली। मंत्रशास्त्र की उस पुस्तक को देखते हुए उसकी नजर में निरी काली चमडी को स्वर्ण जैसी बनाने का प्रयोग आ गया। इस विधि में एक जगह लिखा हुआ था कि आरणक (उपलों की राख) लेकर शरीर पर घिसा जाये। इसमें उसे आरणक शब्द का अर्थ समझ में नहीं आया। आरणक अर्थात् "उपले की राख।"

गुरू ने पूछा कि "यह सवाल पूछने की जरूरत क्यों पडी ?" शिष्य ने सारी सच्चाई गुरू के समक्ष व्यक्त कर दी। गुरू ने कहा-"वत्स ! ऐसे प्रयोगों से हमें बचना चाहिए। यह हमारा विषय नही है। तुम उस प्रयोग को शिघ्रातिशिघ्र भूल जाना।" पर गुरू की आज्ञा का शिष्य ने अनादर किया। उसने रोज उस प्रयोग को रटकर बराबर कण्ठस्थ कर लिया।

समय बीतते गुरू मरणशैय्या पर लेटे। उनकी आँख बंद होने का वह आखिरी दिवस था। अंतिम घण्टा था। उस प्रधान शिष्य को उन्होंने एकान्त में बुलाकर अनेक सिखावनें दी और अंत में कहा कि "उस आरणक(उपले की राख) वाले प्रयोग के चक्कर में तुम कभी पडना नही। उसमें तुम्हारा कल्याण नही है।"पर शिष्य ने गुरू को आशास्पद प्रतिभाव नही दिया। उसी समय गुरू की आँखें हमेशा के लिए बंद हो गई। बंद दरवाजा खोलकर शिष्य ने उपस्थित भक्तगण से कहा ,"गुरूजी ने मुझे आचार्य पद पर आरूढ किया है। मुझे सारी जिम्मेदारी का भार सौंपा है।" भक्तजनों ने नूतन आचार्य के नाम को भावविभोर होकर जय जयकारा बुलाया।

कुछ वर्ष बाद नूतन आचार्यश्रीजी किसी गाँव में गये। वहाँ का राजा अपने युवराज के साथ वंदना करने के लिये गया। राजा जितना रूपवान था ,उतना ही युवराज कुरूप और काला था। उसे देखते ही आचार्यश्री को वह प्रयोग इस युवराज पर करने की इच्छा हुई। उसने राजा के समक्ष अपनी बात रखी। अपना बेटा काले से गोराचिट्टा हो जाये ऐसा कौन बाप नही चाहेगा ! राजा ने फौरन इस

बात को स्वीकृति प्रदान की।

आचार्यश्री ने पहले से ही एक बात बता दी थी कि प्रयोग में एक ऐसी स्थिति आयेगी कि जब युवराज करुण कल्पांत करेगा। दाह की वेदना से चीखेगा। उस समय उस पर रहम दिखाये बिना उस प्रयोग को पूरा करना पडेगा। राजा ने इस बात का स्वीकार किया।

आचार्यश्री ने अभिमंत्रित करके उपलों की राख का डिब्बा दिया। आचार्यश्री ने समझाया कि "युवराज के अंग पर खूब मल-मलकर ,मंत्रित ठण्डे जल के कुण्ड में युवराज को रखा जाये। बाद में वह जल क्रमशः गर्म होता जायेगा। आखिर में वह अतिशय गर्म हो जायेगा। उस समय उसकी दाहकता असह्य होती जायेगी। बाद में वह जल ठण्डा होते जाकर एकदम ठण्डा हो जायेगा। तत्पश्चात् राजकुमार को कुण्ड से बाहर निकाल लें। उसका रूपपरिवर्तित हो जायेगा। हे राजन्! उस समय आप वहाँ नजदीक में खडे नहीं रहें। अन्यथा आपकी करुणा प्रयोग को नाकाम कर देगी।"

ऐसा कहकर आचार्यश्री ने रुखसत ली। इस तरफ प्रयोग शुरू हुआ। राजा सौ कदम दूर खडे रहकर यह दृश्य देखने लगे। तीव्र चीखों का क्षण आ गया। "पिताजी! पिताजी! मुझ से यह गरमी सही नही जा रही। मैं जलकर मर जाऊँगा। आप मुझे बचा लिजिए। मुझे रूपवान नही होना है। मुझे जल्दी से बाहर निकालिए। शुरूआत में तो राजा ने निकट जाकर बेटे को बर्दाश्त करने के लिए समझाया पर आखिरकार उसकी असह्य होती जा रही वेदना देखते हुए राजा पर क्रोध आया। उसे लगा कि यह उसके बेटे की जान लेने का कोई षडयंत्र है। राजा ने दो चौकी करनेवाले घुडसवारों को उस आचार्य का शिरच्छेद कर देने का आदेश दिया।

घुडसवार तो फटाफट रवाना हो गये। उस समय आचार्यश्री अपने शिष्य के साथ शौच के लिए जंगल में गये थे। यह खबर पाकर घुडसवारों ने जंगल में उनका पीछा किया।

आचार्यश्री के पास जाकर उनको आगे बढने से रोकते हुए राजा का आदेश सुनाया।

आचार्यश्री को को तो मालूम ही था कि वेदना असह्य होगी पर बाद में पानी ठंडा होता जाकर उस वेदना का शमन होता जायेगा। अतः कुछ समय बीता देने के लिए आचार्यश्री बडी सतर्कता के साथ बातों का सिलसिला बढाने लगे।

सच में , इस तरफ पानी ठण्डा होता गया । कुमार ने भी वेदना कम होते जाने की बात राजा से कही । कुछ ही पल में कुण्ड में रहे राजकुमार की काया का रूप सोने सदृश होता हुआ राजा ने देखा। आचार्यश्री जैसे महान परोपकारी की जान लेने के लिए दौडाये गये घुडसवारों के पीछे अपनी भूल को सुधार लेने के आशय से और दो घुडसवारों को दौडाया ।

उन घुडसवारों को जब उन्होंने आचार्यश्री के साथ बतियाते हुए देखा कि उन्होंने उन्हें ऊँची आवाज में कहा कि , "रूक जाइए । हम महत्वपूर्ण बात करने के लिए आ रहे हैं ।"

कमनसीबी से उन घुडसवारों ने उन शब्दों को सुना नही परंतु अब तक राजा के आदेश को तामील नही करके वापस नहीं लौटने के कारण इन दो घुडसवारों को हुक्म के पालन के लिए भेजा है । शायद पहले तो वे हम दोनों का ही वध कर देंगे ।" ऐसी कल्पना करके उन घुडसवारों ने एक ही सेकंड में आचार्यश्री का शिरच्छेद कर दिया ।

बाद में सत्य हकीकत ज्ञात हुई पर अब तो बहुत देर हो चुकी थी ।

गुरुद्रोह की तलवार से आचार्यश्री की जान गई । राजा तो निमित्तमात्र हो गया ।

103. बड़े लोगों की सहिष्णुता

आखिरी अवस्था में परमहंस को कैंसर हुआ । उसकी पीडा क्रमशः बढती चली । परमहंस अर्थात् देह और आत्मा के भेद-ज्ञान का स्वामी ! देह की पीडाओं को आत्मा से अलग करके द्दष्टाभाव से देखते रहनेवाला ।

अंतिम दर्शन के लिए लोग बडी तादाद में आ रहे थे । उनके चरण स्पर्श से लाभित होने के लिए लोगों का उमड पडना अभूतपूर्व घटना थी । एकबार तो उकताकर परमहंस ने माँ से शिकायत की कि "तुम मेरे पास हजारों लोगों को क्यों भेज रही हो ? यह तो पांच शेर (लीटर) पानी में पावशेर (सौ ग्राम) दूध तुल्य है । उनका पानी जला देना मेरे बश की बात नही । तुम जगदंबा हो ! यह काम तो तुम्हें ही

करना है।"

एकबार काशी के शकधर पण्डित परमहंस के पास गये। उन्होंने कहा :"आप तभी परमहंस कहलायेंगे जब आप मन से ऐसा आदेश गले की गांठ को देते रहें कि हे कैंसर! तुम अब रोगमुक्ति दे दो। तुम अब ठीक हो जाओ।"और कैंसर से रोगमुक्ति मिल जाये। यदि यह सम्भव न हो तो हम आपको परमहंस कैसे कह सकेंगे ?"

यह सुनकर खुलकर हंसते हुए रामकृष्ण ने पण्डित से कहा ,"पण्डितजी ! आप खूब पढे हो फिर भी अपरिपक्व हैं। मैंने तो कब से अपना मन ईश्वर के चरणों में विलिन कर दिया है। इस सडी हुई देह पर उसे वापस बुलाना जरा भी उचित नही है।"

यह सुनकर शकधर पण्डित परमहंस के चरणों में झूक गये। यह सब जानकर विवेकानंद ने जिद की कि "आप माँ से कहिए कि आपको दर्द मुक्त कर दे। कम से कम आपको खाने की तो अनुकूलता हो। इतना तो वह अवश्य कर दे। यदि आप कहेंगे तो उसे मानना पडेगा। हम आपकी भूखमरी की दशा देख नही पा रहे।"

विवेकानंद आदि शिष्यों से परमहंस ने कहा ,"क्या मैं जानबूझकर इस वेदना को झेल रहा हूँ। क्या मेरे मन में यह चाह नही होगी कि मैं जल्दी से रोगमुक्त हो जाऊँ ? पर यह सब तो जगदंबा की इच्छा पर अवलम्बित है। आप मुझ पर इतना दबाव डाल रहे हैं तो ठीक है,आज रात को बात चलाता हूँ। दूसरे दिन स्वामीजी ने पूछा ,"गुरुदेव ! क्या माँ से प्रार्थना की ? उसने क्या कहा?"

परमहंस ने कहा :"मैंने माँ का ध्यान धरा। माँ ने दर्शन दिये। माँ ने मेरे भावों को जाना-समझा। मुझे कहा ,"राम !

क्या अब भी तुम्हें और खाते रहने की इच्छा है ?आज दिन तक तुमने अपने मुख से कितना कुछ खाया है ? आज भी तुम विवेकानंद आदि हजारों के मुख से क्या नहीं खा रहे ? क्या ये सब तुम्हारे मुख नहीं हैं ?

आज भी तुम इतना ज्यादा खा रहा है ,फिरभी ऐसी मांग क्यों करता है ?"

"प्रिय शिष्यो ! यह सुनकर मैं माँ को कोई जवाब नहीं दे सका। मैं शर्मिंदा हो गया।"

सब की समझ में आ गया कि इन्हें अब और कुछ खाने की चाह नही है। वह असह्य वेदना सहन करने के लिए एकदम तैयार है।

किसीने उन से पूछा :"वेदना में क्या अनुभव होता है?"

परमहंस ने जवाब दिया कि "बहुत आनंद आता है। गांठ के भितर रहे कीडों को गांठ के लहू,मांस,मवाद आदि की जियाफत उडाते देख मुझे बहुत आनंद होता है।

इसे आध्यात्मिक आनंद की बहुत उन्नत भूमिका कही जा सकती है।

ऐसा ही कुछ रमण महर्षि के जीवन में घटा है। उन्हें बायें हाथ की हड्डी में कैंसर हुआ था। उसकी तीखी वेदना का वे परम प्रसन्नता के साथ अनुभव करते थे। किसी भक्त ने उनसे पूछा कि "आपको क्या लगता है? यह देह ही नही रही तो ?"

रमण महर्षि ने कहा ,"भाई ! बैल की शिंगों में फूलों की माला लटक रही हो। वह माला शिंग से नीचे गिर जाये या शिंगों में ही झूलती रह जाये तो उससे बैल को क्या फर्क पडेगा ?" यह देह रहे या देहपात हो जाये,मुझे इससे कोई फर्क नही पडनेवाला।

मणिउद्योत नामक जैन मुनि को पीठ में बडा फोडा हुआ था। उसमें बहुत मवाद हो गया था। ढेर सारे कीडे उसमें उभरे हुए थे। उन्होंने उसके निवारण के लिए कभी इलाज नहीं करवाया।

एकबार कोई देव आकाश मार्ग से विचरण कर रहा था। मुनि कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यानस्थ थे। उनके प्रभाव से वह देव नीचे उतर आया।

मुनि से नमन करके बिनति की कि "यदि आप स्वीकृति प्रदान करें तो आपका पीडादायी फोडा एक ही क्षण में ठीक कर दूँ। मैं देवात्मा हूँ।"

और मुस्कुराते हुए महात्मा ने इन्कार कर दिया। उनसे कहा कि "तुम मेरे दोस्त हो या दुश्मन? दिखावा दोस्ती का और काम दुश्मनी का ?

यह ठीक नही है। इस फोडे से मुझे जो वेदना है,उसके बल से मैं तारक परमेष्ठिओं की अनंतानंत वंदना कर सकता हूँ। वेदना बिना वंदना नही।

वंदना बिना पाप निकंदन नही। अतः अपनी राह ले ले। जरा भी इधर-उधर नही करना।"

ऐसे ते सनत् मुनि,चक्रवर्ती राजा ! संसार के रंग से खूब रंगा होने के कारण सब उसे रंगीला राना कहते थे। यौवनावस्था में उसकी देह को सोलह महाबीमारियों ने घेर लिया था। कर्मसत्ता की इस अनपेक्षित तीखी थप्पड से वह रंगीला राना सतर्क हो गया। संसार को उसने धोखेबाज के रूप में देखा। तत्क्षण संसार का त्याग किया।

घोर साधना की ,शरीर का मूत,थूक,श्लेष्म आदि औषध रूप सिद्ध हो गये। पर कभी भी उन्होंने उनका उपयोग करके रोगशमन नही किया। अगणित कर्मों का रोगदशा में नाश करके आपत्ति रूप कही जानेवाली बीमारियों को सम्पत्ति सदृश बनाया।

बडे लोगों की बातें भी बडी होती हैं। उनमें हमारा कोई बश नही।

104. मित्र के लिए कैसा त्याग किया!

अंग्रेजों के विरुद्ध जिन्होंने लाठियाँ खाकर जान दे दी ,ऐसे लाला लजपतराय के बाल्यकाल की यह घटना है। जिस शाला में लाला लजपतराय पढते थे,उस शाला की उसी कक्षा में गौरीप्रसाद भी पढता था। दोनों जीगरी दोस्त थे।

प्रत्येक निबंध स्पर्द्धा में गौरी का ही प्रथम नंबर आता था पर एकबार माँ के बीमार होने की वजह से उसकी दिन-रात सेवा-चाकरी करने के कारण निबंध ठीक से लिखा नही गया। अब उसके स्थान पर लाला का ही नम्बर आना तय था। हरकोई इसी सम्भावना को व्यक्त करता था।

पर कमाल !

गौरी का ही पहला क्रम आया। परीक्षक भी इस बात को लेकर दंग रह गये।

परीक्षक ने लाला को कार्यालय में बुलाकर पूछा कि,"तुमने पर्चा ठीक से क्यों नही लिखा है ? गौरी के खराब लिखे गये पर्चे के कारण तुम्हारा ही पहला नम्बर आना चाहिए था।"

लाला ने उत्तर दिया कि "मैने जान-बूझकर पेपर खराब लिखा है। यदि मैं अच्छा लिखता तो गौरी दूसरे क्रम पर चला जाता।

यह ठीक नही हो रहा था। जिसने रात-दिन माँ की सेवा की हो क्या उसे दूसरे क्रम पर आने की सजा मिलनी चाहिए ? ना,उसे तो प्रथम क्रम ही मिलना चाहिए। मैंने अपनी समझ के साथ खराब पर्चा लिखकर गौरी का प्रथम नम्बर कायम रखा।"

परीक्षक ने लाला को बहुत शाबाशी दी !

105. तोतारटंन ज्ञान किस काम का?

एक सेठ थे। तोता पालने का भारी शौक। अनेक तोते पिंजडे में रखे थे।

रोज सुबह एक घण्टे के लिए पिंजडे खोल दिये जाते थे। तोते जंगल की सैर करके अपने आप पिंजडे में आकर बंद हो जाते थे।

उस समय एक पारधि जंगल में जाल बिछाकर उसमें अमरूद के टूकडे रखता था। रोज चार-पांच तोते तो पिंजडे में आ ही जाते थे। सेठ के घर के पास साधु का एक आश्रम था। रोज इस प्रकार तोतों को जाल में फंसते देखकर दु:ख अनुभव किया।

एकबार सारे तोतों को इकट्ठा किया और स्वयं बोलकर इस प्रकार रटवा दिया:

"पारधि आये,जाल बिछाये,दाना डाले,नहीं फँसूँगा,

पारधि आये,जाल बिछाये,दाना डाले,नहीं फँसूँगा,"

सारे तोतों ने इस वाक्य को रट लिया। वे बारबार इस वाक्य को बोलते गये। दूसरे दिन प्रथानुसार तोते पिंजडे से निकलकर सैर पर निकले। सारे तोते उपरोक्त वाक्य लगातार बोलते रहे और उडते रहे।

पारधि मन ही मन मुस्कुरा रहा था। उसने तो पूर्ववत् जाल बिछाकर अमरूद की फांकें डालीा चार-पांच तोते वह वाक्य बोलते रहे और जाल में पहुँच गये। अमरूद खाने में लीन हो गये।

बेचारे फंस गये। तोतारटंत ज्ञान से क्या लाभ ?

धर्मो रक्षति रक्षितः

जीवन जागृति ट्रस्ट संचालित

प्रेरक : युगप्रधान आचार्यसम
पं.प्रवरश्री चन्द्रशेखरविजयजी म.सा.

ADMISSIONS OPEN

धर्म संस्कृति राष्ट्र

तपोवन संस्कारपीठ

गुजराती माध्यम
निवासीशाला
धो.५ थी १२ (कोमर्स)

उज्जवल भविष्य

शत प्रतिशत परिणाम हाईस्कूल
और उच्चतर हाईस्कूल बोर्ड की परीक्षाओं में
टोपटेन में स्थान
भार विना की शिक्षा, निष्णात विषय शिक्षक
विशाल कम्प्यूटर हॉल, स्पोकन इंग्लिश क्लास

Religion Culture Nationality

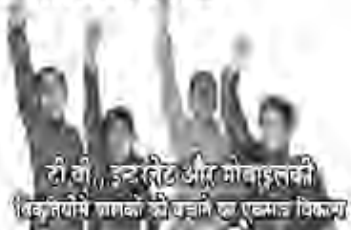

TAPOVAN VATSALYADHAM

English Medium
(G.S.E.B.)
Boys' Residential School
Std. 5 to 12 (Commerce)

विशेष प्रवृत्तियाँ

प्राणायाम, योगासन, संगीत, कराटे, स्केटिंग, नृत्यों, नाटकों,
पर्सनैलिटी डेवलपमेन्ट क्लासेज़, संगीतसभर अष्टप्रकारी पूजा, क्विज, विविध स्पर्धाओं
साथ ही साथ अनेक इनामों का अनेक खजाना भी.....

गुजराती माध्यम संपर्कसूत्र : मंगलजीभाई शाह : ९४२१२ २०८०९
दिपकभाई पटेल : ९८२५५ ३५८२०, हिमांशुभाई शाह : ९८२४० ०६२६६
अनंतभाई धामी : ९८७९५ ५८१५७, अल्पेशभाई शाह : ९३७६१ ३२५७५

-: Contact for English Medium :-
Rajubhai Shah : 94265 05882, Suryakantbhai Mehta (IAS Retired) : 93288 88621
Chandranarayan Vyas : 95745 23601, Bhagyeshbhai Shah : 84014 21943

प्रवेशफोर्म मेळववा संपर्क

तपोवन संस्कारपीठ
मु.अमियापुर, पो.सुघड, जि.गांधीनगर
फोन : (०७९) २३२७६९०१-२-३
E-mail ID : contact@tapovansanskarpith.org

अहमदाबाद
अखिल भारतीय संस्कृति रक्षकदल
धारशीभवन, चंदनबाला कोम्प्लेक्ष,
पालडी, भट्ठा, अहमदाबाद.
फोन : (०७९) २६६४१५५८

सुरत
अखिल भारतीय संस्कृति रक्षकदल
सुभाष चोक, गोपीपुरा,
लक्ष्मीनिवासनी बाजुमां, सुरत
फोन : (०२६१) २५९९३३७

मुंबई
वर्धमान संस्कारधाम
११२, पहेला माला, भवानीकृपा बिल्डींग,
ओपेरा हाउस, जे.अेस.अेस. रोड,
जगन्नाथ शंकर पेठ रोड, गीरगाँव चर्चके सामने,
मुंबई-४००००४. फोन : (०२२) २३६७०९७४

प्रवेशफोर्म तथा माहितीपत्र डाउनलोड करवा माटे... Log on : www.tapovansanskarpith.org

फोर्म मुंबईके तमाम केन्द्र परसे मिलेगा

युगप्रधान आचार्यसम पंन्यास प्रवर श्री चन्द्रशेखर विजय जी म. सा. प्रेरित, वर्धमान संस्कृतिधाम संचालित सेठ श्री कांतिभाई लल्लुभाई झवेरी

तपोवन संस्कार धाम - नवसारी

धारागिरि, पो. कबीलपोर, ता. जि. नवसारी–396424

शिक्षण, संस्कार और सबलतो का संगम (English Medium)

जैन सी. बी. एस. ई. (C.B.S.E.) बोयस् रेसीडेन्सीयल स्कूल (Std. 5th to 10th)

✤ कुदरती और प्रदूषण रहित वातावरण
सात्विक और पौष्टिक आहार
✤ व्यवहारिक, धार्मिक और बौद्धिक विकास
✤ स्टेज प्रोग्राम की शिक्षा ✤ In Door Games

✤ Std. 10th C.B.S.E.
बोर्ड का 100% रिजल्ट
✤ स्पेशल क्रिसमस और समर केम्प

प्रत्येक बच्चों को MID BRAIN ACTIVATION करवाया जाता है।

✤ हर एक क्लास रूम में E-Board द्वारा प्रशिक्षण
✤ सुविधाओं से युक्त कम्प्यूटर लेब
✤ संगीत, नृत्य, ड्रामा, बेन्ड आदि का स्पेशल कोचिंग

क्रिकेट, स्केटिंग, वॉलीबॉल, फुटबॉल, कराटे, टेबल–टेनिस आदि स्पोर्ट्स एक्टीविटीज के स्पेशल कोचिंग

✤ देश–विदेश में पर्युषण की आराधना करवाने की शिक्षा
✤ मानव प्रेम, पशु प्रेम और श्रम प्रेम के पाठ
✤ सी.पी. गोइन्का इन्टरनेशनल द्वारा तपोवन विद्यालय का संचालन

प्रवेश के लिए सम्पर्क करें-

मुंबई :
अंधेरी ऑफिस – 022-65762530/31
निमेषभाई – 93242 46348
विनोदभाई – 93210 41323

नवसारी : भाविनभाई – 93777 70006
पूजा : राजेशभाई – 98220 20685

सूरत
हेमेन्द्रभाई – 97238 21688
धर्मेशभाई – 93747 08503

सौजन्य

प्रभु भक्त

'मीरा'

जरा सोचिएगा!

विज्ञान क्षेत्र (advertisement field) का एक अति सफल नियम ये रहा है ... एक ही चीज को बार-बार दोहराने से वह चीज-बात-विचार (भले झूठ हो या अर्ध सत्य) वह सुनने-देखने-पढने-जानने वालो के दिमाग पर हावी हो जाता है। धीरे-धीरे करके मन उसका संपूर्ण स्वीकार करने मजबूर हो जाता है।

उसी तरह Film industry या Sports world या Politics line के जो कोई भी celebrity बनते है ...बनाये जाते है....वे लोग अपने-अपने विचार-वाणी -वर्तन का गहरा प्रभाव आम जनता के उपर जरूर डालते है और (हम) लोग उन्ही के पीछे चलने लगते है। यह है मानवीय मनोवैज्ञानिक महासत्य !

तो उसी को लेकर अगर हम महापुरुषों के, गुणीजनों के, नेकदिल व्यक्तियों के परिचय में आना चाहेंगे तो उनके उन्नत जीवन के छोटे-बडे प्रसंगो से काफी प्रेरणादि प्राप्त कर सकते है । उसी को हमारे idol, Role model, mentor बनाकर आगे जाकर खुद भी महान बन सकते है ।

सिर्फ आधा घंटा प्रतिदिन बडे लोग खुद पढे, छोटे बच्चो को सुनाए, बच्चे खुद पढकर ही जीवन निर्माण की ओर आगे बढे ...

Firsst Look
IMPRESSION GUARANTEED....
9597511135